भारत का इतिहास 1757 ईस्वी से 1857 ईस्वी तक

इतिहास विभाग

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय मार्ग, तीनपानी बाईपास

हल्द्वानी-263139

ई-मेल info@uou.ac.in, http@//uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम
प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक, दूरस्थ शिक्षा केन्द्र , जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय,दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास, एस.एस.जीना विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा
डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं संपादन - डॉ. मदन मोहन जोशी

ब्लाक एक
इकाई एक- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई दो– उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई तीन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
ब्लाक दो
इकाई चार - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई पाँच –उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई छह - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
ब्लाक तीन
इकाई सात - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई आठ – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई नौ - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
ब्लाक चार
इकाई दस - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई ग्यारह – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई बारह - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
ब्लाक पांच
इकाई तेरह - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई चौदह – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई पन्द्रह - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार
इकाई सोलह उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-201 से साभार

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक

आंग्ल-फ्रांसीसी स्पर्धा और कर्नाटक युद्ध

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 कर्नाटक युद्ध
1 .3.1 दोनों कम्पनियों का स्वरुप एवं स्थिति
1.3.2 युद्ध से पूर्व हैदराबाद एवं कर्नाटक की स्थिति
1.4 प्रथम कर्नाटक युद्ध
1.4.1 अडियार का युद्ध
1.4.2 युद्ध का महत्व एवं परिणाम
1.5 द्वितीय कर्नाटक युद्ध 1749-1754
1.5.1 दूसरे कर्नाटक युद्ध के परिणाम
1.6 तीसरा कर्नाटक युद्ध- 1758-63
1.7 अंग्रेजों की सफलता के कारण
1.8 सारांश
1.9 पारिभाषिक शब्दावली
1.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वाणिज्यवाद आधारित साम्राज्यवाद का सबसे उत्तम उदाहरण अंग्रेज और फ्रांसीसी कम्पनी के बीच 19 वीं शताब्दी में चलने वाला कर्नाटक युद्ध है। यह युद्ध अन्य यूरोपीय कम्पनियों के बीच होने वाले युद्धों से कई सन्दर्भ में भिन्न है। युद्ध के कारण और परिणाम से सम्बन्धित घटनाएं अपने आप में युगान्तकारी थी। वैश्विक साम्राज्यवाद और भारत में चलने वाले वाणिज्यवादी एकाधिकार के बीच का जो सम्बन्ध है, उसे कर्नाटक युद्ध बहुत स्पष्ट रुप से सामने रखता है। प्रथम और तृतीय कर्नाटक युद्ध का सीधा सम्बन्ध यूरोप में चलने वाली साम्राज्यवादी लड़ाई और भारत में अंग्रेज और फ्रांसीसी कम्पनी के बीच वाणिज्यिक एकाधिकार के संघर्ष से था। वही दूसरी तरफ दूसरे कर्नाटक युद्ध में इन दोनों कम्पनियों ने अधिक से अधिक व्यापारिक लाभ प्राप्त करने के लिए पहली

बार भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कर भारतीय राजनीति के स्वरुप को बदलने की कोशिश की, जिसमें स्थानीय शासक इन विदेशी कम्पनियों पर पहली बार पूर्णरुप से निर्भर दिखें। इस युद्ध ने स्पष्ट कर दिया था कि बगैर प्रत्यक्ष राजनीतिक हस्तक्षेप के अथवा बगैर राजनीतिक शक्ति प्राप्त किए व्यापारिक एकाधिकार सम्भव नहीं है। इस युद्ध के परिणाम ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से न केवल विदेशी कम्पनियों को बल्कि भारतीय शासकों को भी ब्रिटिश प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी स्पर्धा और कर्नाटक युद्ध से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित सकेंगे :

1. अंग्रेजी एवं फ्रैंच कम्पनियों का स्वरुप एवं स्थिति
2. युद्ध से पूर्व हैदराबाद एवं कर्नाटक की स्थिति
3. प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय कर्नाटक युद्ध
4. अंग्रेजों की सफलता के कारण

1.3 कर्नाटक युद्ध

अंग्रेज और फ्रांसीसी कम्पनियों के बीच लड़े गए तीनों युद्ध कर्नाटक में हुए थे। कर्नाटक समुद्र के पूर्वी किनारे संकरे क्षेत्र की एक पट्टी थी, जो मैसूर के पश्चिमी पहाड़ी माला द्वारा अलग होती थी, इसकी उत्तरी सीमा गंडलकम्पा नदी थी वही तंजौर उसका दक्षिणी क्षेत्र था, जो 17 वीं शताब्दी में कर्नाटक में आगे बढ़कर मराठों द्वारा स्थापित जागीर थी। कर्नाटक का नबाब दक्षिण के सूबेदार निजामुलमुल्क का सहायक था, जिस पर निजाममुल्क ने मुगल साम्राज्य से अलग होकर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, ठीक उसी प्रकार कर्नाटक का नबाब भी हैदराबाद से अलग होकर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करने की कोशिश करने लगा। कर्नाटक का संतानहीन नबाब सादुल्ला खॉ ने मुगल सम्राट मुहम्मद शाह से आज्ञा प्राप्त कर निजाममुल्क की स्वीकृति बिना अपने भतीजे दोस्त अली को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

1.3.1 दोनों कम्पनियों का स्वरुप एवं स्थिति

एक तरफ जहॉ फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना फ्रांसीसी सरकार के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का परिणाम थी, जिसमें कम्पनी न केवल अपने वित्तीय सहायता के लिए सीधे तौर पर सरकार पर निर्भर थी, बल्कि कम्पनी के अधिकारियों के चुनाव से लेकर अन्य सभी निर्णय फ्रांसीसी सत्ता ही लेती थी। 1723 के बाद से फ्रांसीसी कम्पनी के निदेशकों की नियुक्ति प्रत्यक्ष रुप से फ्रांसीसी ताज द्वारा ही होती थी। राजा एवं उसके अधिकारियों के सीधे हस्तक्षेप ने कम्पनी द्वारा निर्णय लेने की शक्ति को बहुत कम कर दिया था। इस हस्तक्षेप की नीति ने निःसंदेह रुप से फ्रांसीसी कम्पनी को अन्दर से कमजोर कर दिया, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने वित्त के लिए सरकार पर निर्भर नहीं थी।

इसकी स्थापना ब्रिटेन के कोर्पोरेट द्वारा हुई थी। यह एक स्वतन्त्र कोर्पोरेशन था, जो फ्रांसीसी कम्पनी के विपरीत सरकारी अधिकारियों की सहायता पर निर्भर नहीं था। कम्पनी अपने कार्यो का निर्णय लेने में स्वतन्त्र थी। इनके अधिकारियों की नियुक्ति ब्रिटिश ताज के द्वारा नहीं, बल्कि कम्पनी के बोंड के द्वारा होती थी, वहीं एक ओर फ्रांसीसी सरकार ने स्वंय को इतना अधिक यूरोपीय राजनीति में उलझा रक्खा था कि यह कम्पनी के कार्यो में बहुत अधिक ध्यान नहीं देती थी, वही दूसरी और ब्रिटिश पार्लियामेंट एवं ताज दोनों ही कम्पनी के माध्यम से व्यापारिक लाभ प्राप्त करने के लिए कम्पनी के कार्यो में अपनी पूरी दिलचस्पी रखते थे। रॉबर्ट के अनुसार- ‘‘हालांकि युद्ध शुरु होने से पहले दोनों कम्पनियों की शक्ति बिल्कुल बराबर दिख रही थी, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि जहॉ तक वित्तीय शक्ति एवं संसाधन का प्रश्न है अंग्रेज कम्पनी फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना में कहीं अधिक मजबूत थी।‘‘ इस प्रकार युद्ध के पहले की स्थिति पर यदि हम ध्यान दे तो देखते है कि ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना में काफी मजबूत स्थिति में थी। कम्पनी का व्यापारिक लाभ न केवल कम्पनी की आर्थिक स्थिति भी इस पर प्रत्यक्ष रुप से निर्भर होती है। ब्रिटिश कम्पनी ने अपनी इस मजबूत आर्थिक स्थिति का फायदा न केवल व्यापार के विकास में किया, बल्कि इसके द्वारा अपने सैन्य शक्ति को भी मजबूत किया। खासकर ब्रिटिश नौ सैनिक शक्ति फ्रांसीसी कम्पनी के नौसैनिक शक्ति की तुलना में कही अधिक श्रेष्ठ थी। अल्फ्रेड लायल के अनुसार जिस देश की समुद्री शक्ति अधिक श्रेष्ठ होगी वही विश्व पर शासन करेगा।

1.3.2 युद्ध से पूर्व हैदराबाद एवं कर्नाटक की स्थिति

चूंकि यह युद्ध कर्नाटक में लड़ा गया, इसलिए इन तीनों कर्नाटक युद्धों से पूर्व कर्नाटक तथा हैदराबाद की स्थिति से अवगत होना आवश्यक है। हैदराबाद की राजनैतिक स्थिति जानना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि कर्नाटक हैदराबाद के अन्दर ही आता था, जो बाद में हैदराबाद से अलग होकर एक स्वतन्त्र राज्य के रुप में सामने आया। यह भी जानना आवश्यक है कि हैदराबाद एवं कर्नाटक दोनों ही सूबों में ऐसी क्या राजनैतिक स्थिति उत्पन्न हुई, जिसने इन दोनों विदेशी कम्पनियों के लिए राजनैतिक हस्तक्षेप की जमीन तैयार की। इसकी भी जानकारी आवश्यक है कि पतोन्मुख मुगल साम्राज्य एवं लड़खड़ाती दक्षिण की राजनीति में अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्थापित करने में हितकारी सिद्ध हुई। यहॉ पर मुझे 1904 में कर्जन का लंदन में दिया गया भाषण याद आता है, जिसमें उसने पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा था, ‘‘भारत के लोगों का भाग्य ईश्वर द्वारा अंग्रेजों को ही सौंपा गया है।‘‘ साथ ही साथ उसने यह भी कहा था कि ‘‘मेरे लिए यह संदेश ग्रेनाइड पर खुदा है कि हमारा काम उचित है और स्थाई बना रहेगा। ‘‘ कर्जन के इस आत्मविश्वास ने यह साफ कर दिया था कि भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना नैतिकता की कसौटी पर पूरी तरह से उतरता है। अल्फ्रेड मार्टिनों का मत है कि दक्षिण भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विकास अंग्रेजों के उत्साह एवं प्रयासों

से उतना नहीं हुआ, बल्कि "अशुभ शक्तियों द्वारा हुआ, जिन्हें हम संयोग या दैवयोग और कभी-कभी भाग्य का नाम देते है।" अतः अल्फ्रेड मार्टिनों भी यह साफ करते है कि दक्षिण में ब्रिटिश प्रभुसत्ता की स्थापना वहॉ की लड़खड़ाती राजनीति का ही परिणाम थी।

औरंगजेब की मुत्यु के बाद मुगल साम्राज्य तेजी से अपने पतन की ओर बढ़ रहा था, इस स्थिति का लाभ उठाते हुए कई मुगल सूबेदारों ने अपने राज्यों की स्वतन्त्रता की घोषणा की, जिनमें चिनकुलिच खॉ, जो बाद में निजाममुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ, भी एक था। निजाममुल्क की बढ़ती शक्ति ने मराठों को आशंकित किया, जिसकी परिणती 1727 के मंगीशेव गॉव के युद्ध में हुई, जिसमें निजाममुल्क की पराजय है। नादिरशाह के आक्रमण के परिपेक्ष्य में निजाममुल्क ने दिल्ली की ओर रवाना होने से पूर्व अपने पुत्र नासिरगंज को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। नासिरगंज ने स्वंय बेहतर उत्तराधिकारी सिद्ध किया एवं बाजीराव के विरुद्ध एक युद्ध में उसने मराठों के विरुद्ध अच्छी सफलता प्राप्त की।

1732 में कर्नाटक के नबाब सादुल्ला खॉ की मृत्यु हो गई। दोस्त अली उसका उत्तराधिकारी बना, परन्तु नए नबाब ने स्वंय को गद्दी के लिए उचित सिद्ध नहीं किया। शासन का सारा भार उसने अपने पुत्र सफदर अली एवं दिवान चंदा साहब पर छोड़ दिया, इसी बीच त्रिचनापल्ली के राजा की मृत्यु हो गई। इस अवसर का लाभ उठाकर त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया। विधवा रानी ने भी चंदा साहब से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए। त्रिचनापल्ली पर यह आक्रमण कर्नाटक को बहुत भारी पड़ा। मराठे, जो त्रिचनापल्ली के हिन्दू राज्य की समाप्ति से क्रोधित थे, ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में दोस्त अली मारा गया तथा सफदर अली को पीछे हटना पड़ा। आगे बढ़ते हुए मराठों ने अर्काट पर अधिकार कर लिया तथा बाध्य होकर सफदर अली को मराठों से सन्धि करनी पड़ी। सफदर अली अर्काट से निकलकर अपने बहनोई मुर्तजा अली के पास वेलोर पहुंचा। पर वहॉ मुर्तजा अली ने षडयंत्र कर सफदर अली को मार डाला एवं स्वंय को नबाब घोषित किया, परन्तु मुर्तजा अली के भाग्य में शासन बहुत अधिक दिन तक नहीं था और उसके स्थान पर सफदर अली के पुत्र मुहम्मद खॉ को नबाब घोषित किया गया निःसदेह रुप से निजामुल मुल्क, जिसकी नजर कर्नाटक पर थी, उसने इस परिस्थिति का लाभ उठाया तथा मराठों को पराजित कर न केवल त्रिचनापल्ली पर, बल्कि समस्त कर्नाटक पर अपना अधिकार कर लिया। निजामुल मुल्क ने अवयस्क सैययद मुहम्मद को, जो कि सफदर अली का पुत्र था, नबाब घोषित किया तथा अनवरूद्दीन को उसका संरक्षक नियुक्त किया सैय्यद मुहम्मद की हत्या कर दी गई, जिसके बाद अनवरुद्दीन वहॉ का नबाब बना। इसी बीच फ्रांसीसी दक्षिण में अपनी शक्ति को बढ़ाने में लगे हुए थे। पांडिचेरी में उन्होंने अत्यधिक मजबूत किले का निर्माण कराया था, इस मजबूत किले को इतनी अधिक प्रसिद्धी मिल चुकी थी कि मराठों के डर से चंदा साहब ने अपने परिवार के सदस्यों को वहॉ रखा था। मराठों ने जब फ्रांसीसियों से चंदा साहब के परिवार तथा 60 लाख रुपये की मॉग की, तब फ्रांसीसियों ने इस अनैतिक मॉग को ठुकराते हुए जबाब दिया "हमारे देश फ्रांस में

न तो सोना पैदा होता है और न चॉदी। हम जो भी व्यापारिक माल खरीदने के लिए लाते है, वह हमें विदेशों से मिलता है। हमारे देश में तो लोग और सैनिक ही पैदा होते है, जिन्हें हम अन्यायपूर्ण छेड़छाड़ के विरुद्ध इस्तेमाल करना जानते है। भारतीय शासकों की फ्रांसीसियों पर निर्भरता तथा इनके द्वारा दिए गए मराठों को दो टुक जबाब से फ्रांसीसियों की बढ़ती शक्ति तथा उनका आत्मविश्वास साफ दिखाई देता है।

1.4 प्रथम कर्नाटक युद्ध

इतिहासकारों का मानना है कि प्रथम एवं तृतीय कर्नाटक युद्ध का कारण भारतीय राजनीति एवं यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों द्वारा व्यापारिक लाभ कमाना नहीं था, बल्कि इसका कारण यूरोप में होने वाली घटनाएं थी, परन्तु यह समझना जरुरी है कि यूरोपीय राजनीति कर्नाटक में होने वाले मुद्दों का कारण नहीं, बल्कि एक तात्कालिक बहाना थी, क्योंकि युद्ध का मुख्य कारण यूरोपीय कम्पनियों द्वारा व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त करना था, ताकि व्यापार से अधिक से अधिक लाभ मिल सके और यह तभी सम्भव था, जब अन्य व्यापारिक कम्पनियॉ इस व्यापारिक लाभ की प्रतिस्पर्धा से बाहर हो जाए। आस्ट्रियन उत्तराधिकार के युद्ध की खबर भारत में 1744 में पहुंची, परन्तु दोनों कम्पनियों के बीच युद्ध का वातावरण काफी पहले बन चुका था, जिसमें बदलती राजनीतिक घटनाओं को लेकर 1740 से तेजी आई।

कर्नाटक युद्ध का तात्कालिक बहाना आस्ट्रिया का उत्तराधिकार युद्ध था। यह युद्ध यूरोप में आस्ट्रिया की राजगद्दी पर मोरिया थेरेसा के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में हुआ। इस युद्ध ने इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों को युद्ध में उलझा दिया। इस आपातकालीन स्थिति में डुप्ले को 1741 में पांडिचेरी का गवर्नर नियुक्त किया गया। डुप्ले नहीं चाहता था कि यूरोप में जलने वाली आग की चिंगारी कर्नाटक पहुंचे। उसका यह मानना था कि यह दोनों कम्पनियों के व्यापारिक हित के विरुद्ध होगा। उसने मद्रास के ब्रिटिश गवर्नर से अपील की कि भारत को यूरोप में चलने वाले युद्ध से बाहर रखा जाए, लेकिन अंग्रेजों ने तटस्थ बने रहने की कोई गारंटी नहीं है, क्योंकि वे जाने थे कि समुद्र में जो अंग्रेजी नावें थी उस पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं है। मद्रास के गर्वनर मोर्स ने डूप्ले का उत्तर देते हुए कहा था कि यदि इंग्लैण्ड से युद्धपोत आ जाते हैं, तो उसका उन पर नियन्त्रण नहीं रहेगा। अंग्रेजों की ओर से निश्चित आश्वासन मिलने के बाद डूप्ले ने कर्नाटक के नबाब अनवरुद्दीन से वार्तालाप किया। देश की शांति भंग न हो इसके लिए नबाब ने अंग्रेज तथा फ्रांसीसी दोनों कम्पनियों को युद्ध न लड़ने की सलाह दी। दोनों कम्पनियों ने अपनी-अपनी सरकारों से यह अपील की कि वह भारत में युद्ध करना नहीं चाहती। फ्रांस की सरकार ने डूप्ले के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, परन्तु इंग्लैण्ड की सरकार ने ऐसा नहीं किया। इंग्लैण्ड की सरकार ने बार्नेट के नेतृत्व में एक बेड़ा फ्रांसीसी कम्पनी पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया, इस जहाजी बेड़े ने कई फ्रांसीसी जहाजों को डूबो दिया। ऐसी

स्थिति में डूप्ले ने मॉरिशस के फ्रांसीसी गवर्नर ला-बार्डिगो से सहायता मांगी, इसी समय बार्नेट की मृत्यु हो गई तथा उसके स्थान पर कर्नल पैटन आया। कोरामंडल कोस्ट पर दोनों सेनाओं के बीच कुछ झड़पें हुई, लेकिन कुछ समय बाद ही अंग्रेजी फौज लंका के लिए रवाना हो गई। स्थिति का लाभ उठाकर डुप्ले ने ला-बार्डिपसें ये मद्रास पर आक्रमण करने के लिए कहा। घबराकर अंग्रेज नबाब अनवारुद्दीन के पास पहुंचे और उनसे अपील की कि वे फ्रांसीसी सेना को मद्रास पर अधिकार करने से रोकें। जब नबाब ने हस्तक्षेप किया तब डुप्ले ने यह कह कर नबाब को समझा दिया कि वह मद्रास पर इसलिए आक्रमण कर रहा है ताकि जीत कर वह इसे नबाब को सौंप दे। फ्रांसीसी आक्रमण के सामने मोर्स बहुत अधिक समय तक नहीं टिक सका और अन्त में उसने आक्रमण कर दिया। 1746 की मद्रास की विजय ने जहां एक ओर फ्रांसीसी सेना के अन्दर उत्साह बढ़ाया, तो वहीं दूसरी ओर अन्दरुनी कलह की भी वजह बनी।

ला-बार्डिनों ने अंग्रेजों के साथ एक सन्धि की, जिसके अनुसार 40,000 पौण्ड लेकर मद्रास अंग्रेजों को दे दिया। यह भी कहा जाता है कि उसने 1,00000 की रिश्वत भी ली थी। डॉडवेल के अनुसार "डुप्ले और ला-बर्डिनों के बीच के विवाद का सम्बन्ध राष्ट्रीय हित से नहीं था। प्रश्न यह था कि मद्रास से कौन धन अर्जित करेगा, लेकिन वहीं दूसरी ओर डुप्ले ने इसे राष्ट्रीय मुद्दा बनाने की कोशिश की। उसने कहा "ईश्वर के नाम पर अपने सम्राट की प्रतिष्ठा में वृद्धि के लिए और अपने राष्ट्र के सामान्य हित के लिए जो आपको भारत में पुनः स्थापक मानेगा उन्हें हम इस अवसर का लाभ उठाएं । लॉ-बार्डिनों के मॉरिशस जाने के बाद मद्रास की सन्धि को ठुकरा दिया। उसने महल पर आक्रमण कर अंग्रेज अधिकारियों को बंदी बना लिया।

1.4.1 अडियार का युद्ध

मद्रास पर आक्रमण के समय नबाब का अपनी ओर पक्ष लेने के लिए डुप्ले ने उससे वादा किया था कि वह मद्रास इसलिए जीतना चाहता है ताकि अंग्रेजों से लेकर इसे नबाब को दे दे। जब नबाब ने मद्रास की मांग की तो डुप्ले ने इसे देने से इनकार कर दिया तथा मद्रास से लूटा गया माल भी वह अपने पास रखना चाहता था। क्रोधित होकर नबाब ने अपने पुत्र महफज खॉ के नेतृत्व में 10,000 घुड़सवार सेना को फ्रांसीसियों पर आक्रमण करने के लिए भेजां संख्या बल में बहुत छोटी सेना होने के बावजूद फांसीसियों ने विशाल नबाब की सेना को बुरी तरह पराजित किया। इतिहास में यह युद्ध सेंट थाम का युद्ध कहलाता है।

एक्स ला शैपल की सन्धि के द्वारा भारत में भी दोनों कम्पनियों के बीच युद्ध बन्द हो गया। युद्ध की सन्धि के अनुसार मद्रास अंग्रेजों को लौटा दिया गया था तथा इसके बदले फ्रांसीसियों को अमेरिका में लुईसकी प्राप्त हुआ।

1.4.2 युद्ध का महत्व एवं परिणाम

हालांकि प्रथम कर्नाटक युद्ध ने कोई बुनियादी क्षेत्रीय परिवर्तन नहीं किया फिर भी यह युद्ध भारतीय इतिहास में अलग महत्व रखता है। डा. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार "इस सन्धि के साथ हम एक ऐसे

काल में प्रवेश करते हैं, जिसमें कि भारत में बसने वाले यूरोप के लोग शांत व्यापारियों का जाया उतारकर प्रबल राजनीतिक शक्तियॉ बन गए। इसने पूर्वी जगत की सैनिक शक्ति का जो मिथ्य था, उसे ध्वस्त कर दिया तथा यह तय कर दिया कि संख्या बल में कम होने के बावजूद अनुशासित प्रश्चिमी सेनाएं भारतीय सेनाओं को आसानी से पराजित कर सकती है, इस युद्ध के परिणाम ने पश्चिमी शक्तियों के मस्तिष्क में यह बात डाल दी कि वह भारत में राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर सकते है। इस युद्ध ने एक शक्तिशाली नौसेना के महत्व को पूरी तरह से स्थापित कर दिया। डॉडवेल कहते हैं कि,‘‘इससे समुद्री शक्ति के अत्यधिक प्रभाव का प्रदर्शन हुआ‘‘। एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि भले ही युद्ध के बाद फ्रांसीसियों ने जीता हुआ क्षेत्र अंग्रेजों को वापस कर दिया, परन्तु इस युद्ध ने उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि अवश्य की।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. अंग्रेज और फ्रांसीसी कम्पनियों के बीच लड़े गए तीनों युद्ध कर्नाटक में हुए थे।
2. कर्नाटक समुद्र के पश्चिमी किनारे संकरे क्षेत्र की एक पट्टी थी, जो मैसूर के पूर्वी पहाड़ी माला द्वारा अलग होती थी।
3. ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने वित्त के लिए सरकार पर निर्भर नहीं थी।
4. ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना में कमजोर स्थिति में थी।
5. प्रथम कर्नाटक युद्ध का तात्कालिक बहाना आस्ट्रिया का उत्तराधिकार युद्ध था।
6. डुप्ले 1841 में पांडिचेरी का गवर्नर नियुक्त हुआ था ।

1.5 द्वितीय कर्नाटक युद्ध 1749-1754

प्रथम कर्नाटक युद्ध की सन्धि ने केवल युद्ध विराम की तरह कार्य किया और वह भी बहुत अल्प समय के लिए। यह युद्ध भारतीय राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से जल-विभाजक माना जा सकता है। इस युद्ध के कारण दोनों कम्पनियों द्वारा भारतीय उत्तराधिकार की लड़ाई में हस्तक्षेप था। इस युद्ध ने भारतीय शक्तियों की निर्बलता का यूरोपीय शक्तियों पर उनकी निर्भरता को सिद्ध कर दिया। ऐसा पहली बार देखा गया कि भारतीय उत्तराधिकार के संघर्ष में यूरोपीय शक्तियों ने सीधा हस्तक्षेप किया। निःसदेह रुप से इसने यूरोपियन कम्पनियों को राजनैतिक सत्ता स्थापित करने में सहायता पहुंचाई। इस प्रकार की पहली पहल अंग्रेजों द्वारा हुई, जब उन्होंने तंजौर के शासक प्रताप सिंह के विरुद्ध शाहजी का साथ दिया। अंग्रेजी तथा शाहजी की सेनाओं ने देवकोराई पर अधिकार कर लिया, इससे बाध्य होकर प्रताप सिंह अंग्रेजों के साथ सन्धि करने पर मजबूर हुआ। सन्धि के अनुसार प्रताप सिंह ने अंग्रेजों के देवकोटाई एवं उसके आस-पास का क्षेत्र देने को तैयार हो गया, जिसकी वार्षिक आय 36,000 रुपए थी। इस आय ने अंग्रेजों की सैनिक शक्ति को संगठित करने

एवं उसे मजबूत करने में निःसदेह रुप से सहायता पहुंचाई। अंग्रेजों की इस पहल ने फ्रासीसियों के लिए भी भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने का द्वार खोल दिया। फ्रांसीसियों को जल्द ही ऐसा अवसर प्राप्त हुआ, जब निजाममुल्क की मृत्यु के बाद हैदराबाद में उत्तराधिकार की लड़ाई तेज हो गई। नासिरगंज जो निजाममुल्क का पुत्र था, जब गद्दी पर बैठा तो उसके विरुद्ध निजाममुल्क के पौत्र मुजफ्फरजंग ने इस आधार पर उत्तराधिकार का दावा पेश किया कि मुगल सम्राट ने उसे ही दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया था। इसी प्रकार की हलचल कर्नाटक में भी चल रही थी। चंदा साहब, जो मराठों की कैद में था कर्नाटक का नबाब बनना चाहता था। कर्नाटक की तत्कालीन स्थिति में फ्रांसीसियों को आकर्षित किया। मुजफ्फरजंग और चंदा साहब एक दूसरे के सम्पर्क में आए तथा गठबंधन का निर्माण किया। दोनों ने फ्रांसीसियों से सहायता की याचना की। डुप्ले ऐसी ही किसी परिस्थिति की तलाश में था, उसने तुरन्त मराठों को धन देकर चंदा साहब को आजाद करा लिया। इन तीनों की मिली-जुली 38400 की संयुक्त सेना ने अम्बुर नामक स्थान पर कर्नाटक नबाब अनवरुद्दीन को पराजित किया। 1749 में लड़े इस युद्ध में अनवरुद्दीन मारा गया। अनवरुद्दीन के पुत्र मुहम्मद अली ने भाग कर त्रिचनापल्ली में शरण ली और वहीं से कर्नाटक की गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। उधर चंदा साहब ने कर्नाटक के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार कर लिया तथा इनाम के तौर पर डूप्ले को पांडिचेरी के पास 30 गांच की जागीर प्रदान की।

एक अन्य घटनाक्रम में नासिरगंज ने अनवरुद्दीन के पुत्र, जो उस समय त्रिचनापल्ली में शरण लिए हुए था, को कर्नाटक का नबाब घोषित कर दिया। नासिरगंज तथा मुहम्मद अली ने अंग्रेजों से सहायता की याचना की। हैदराबाद तथा कर्नाटक में फ्रांसीसियों के बढ़ते प्रभाव ने अंग्रेजों को चिंता में डाल दिया। दक्षिण की राजनीति में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अंग्रेजों ने नासिरगंज तथा मुहम्मद अली का साथ देने का निश्चय किया। परस्पर विरोधी हित ने दोनों कम्पनियों के बीच युद्ध को अवश्यम्भावी बना दिया। डुप्ले की सलाह के बावजूद भी चंदा साहब ने त्रिचनापल्ली पर आक्रमण न कर के तंजौर पर आक्रमण किया। नासिरजंग ने अंग्रेजों की सहायता से कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। इससे विवश होकर चंदा साहब को पांडिचेरी जाना पड़ा। जिंजी नदी के तट पर दोनों पक्षों में युद्ध हुआ, जिसमें चंदा साहब तथा फ्रांसीसियों की हार हुई। दूसरी तरफ फ्रांसीसियों की सहायता के बावजूद मुजफ्फर जंग को नासिरजंग के सामने हार का मुंह देखना पड़ा तथा मुजफ्फरजंग ने आत्मसमर्पण कर दिया। इन पराजयों ने भी डुप्ले का हौसला नहीं तोड़ा और शीघ्र ही स्वंय को संग्रहित कर उसने मछलीपट्टम और जिंजी पर अधिकार कर लिया। 1750 में फ्रांसीसी सेना ने नासिरजंग पर आक्रमण पर उसकी हत्या कर दी। डुप्ले ने हैदराबाद में मुजफ्फरजंग को तथा कर्नाटक में चंदा साहब को नबाब की गद्दी पर बैठाया। इस सहायता के बदले मुजफ्फरजंग ने डुप्ले को कृष्णा नदी के दक्षिण की सम्पूर्ण भूमि की सूबेदारी तथा कर्नाटक में अपने सिक्के चलाने का अधिकार दिया। अब मुहम्मद अली डुप्ले से साथ करना चाहता था, लेकिन यह अंग्रेजों को मंजूर नहीं था, क्योंकि इस सन्धि का मतलब था दक्षिण में अंग्रेजों की एक व्यापारिक कम्पनी के रुप

में समाप्ति। अंग्रेजों ने मुहम्मद अली को कर्नाटक का नबाब बनाने का लालच दिया, इसी बीच रणनीतिक युद्ध में क्लाइव प्रकट होता है। क्लाइव ने अर्काट पर आक्रमण कर उसे अपने नियंत्रण में ले लिया। अर्काट को पुनः विजित करने के लिए चंदा साहब ने अपने पुत्र के नेतृत्व में अपनी आधी सेना भेज दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि त्रिचनापल्ली में उसकी स्थिति कमजोर हो गई। इसी बीच 1751 में मुजफ्फरजंग की मृत्यु हो गई। अपनी कमजोर स्थिति को देखते हुए चंदा साहब ने त्रिचनापल्ली से अपना घेरा उठा लिया। उधर क्लाइव बहादुरी से अर्काट की रक्षा करता रहा। 1752 में लारेंस के विरुद्ध लड़े गए एक युद्ध में चंदा साहब की पराजय हुई। शरण लेने के लिए वह तंजौर पहुंचा जहॉ उसकी हत्या कर दी गई। क्लार्ड की इस रणनीति ने युद्ध का चेहरा ही बदल दिया। मुजफ्फरजंग तथा चंदा साहब की मृत्यु ने डुप्ले की स्थिति को कमजोर कर दिया। इससे पहले कि वह अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः पा सके, फ्रांसीसी सरकार ने उसे वापस बुला लिया।

डुप्ले के उत्तराधिकारियों के रुप में गाडेहू भारत आया, उसने अंग्रेजों के साथ संधि करना उचित समझा। इस सन्धि का विरोध करते हुए डुप्ले ने कहा ,''देश के नाश तथा जाति से अपमान कर हस्ताक्षर किए गए ''। फ्रांसीसियों के अधिकार में जो कुछ आया था, उसे खो देना पड़ा। मैलसन का भी यह मानना था कि यह फ्रांसीसियों के लिए एक अपमानजनक सन्धि थी। मिल ने इस सन्धि को कुछ इस प्रकार से व्यक्त किया है। "अंग्रेजों ने इस सन्धि द्वारा वह सब कुछ प्राप्त कर लिया जिसके लिए वह युद्ध कर रहे थे। तथा फ्रांसीसियों ने वह सब कुछ छोड़ दिया जो वे अब तक प्राप्त कर चुके थे।" वहीं दूसरी ओर आधुनिक शोध ने गाडेहू को इस ऐतिहासिक पाप के लिए जिम्मेदार होने के कलंक से बचाने की कोशिश की है। आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि यदि गाडेहू सन्धि नहीं करता तो न केवल राजनैतिक, बल्कि व्यापारिक शक्ति के रुप में भी फ्रांसीसियों का नाम भारत से हमेशा के लिए मिट जाता सन्धि द्वारा फ्रांसीसी हितों की रक्षा इस प्रकार हुई कि अंग्रेजों को प्राप्त भूमि की वार्षिक आय एक लाख रुपए थी, जबकि वहीं दूसरी ओर फ्रांसीसियों के पास 3 लाख वार्षिक आय की भूमि अभी भी मौजूद थी। राबर्टस के अनुसार "इस सन्धि को किसी भी प्रकार से फ्रांसीसियों के लिए अपमानजनक मानना भूल है। गाडेहू की मुख्य जिम्मेदारी यह थी कि इस विपरीत परिस्थिति में फ्रांसीसियों के लिए जो कुछ भी बचा सके बचा लें और वहीं उसने किया भी।"

1.5.1 दूसरे कर्नाटक युद्ध के परिणाम

दूसरे कर्नाटक युद्ध ने अंग्रेजों को दक्षिण भारतीय राजनीति के निर्माता के रुप में स्थापित किया। देशी राजाओं की उन पर निर्भरता बढ़ी। इस युद्ध के दौरान डुप्ले को फ्रांसीसी सरकार द्वारा वापस बुलाने की घटना ने अंग्रेजों के लिए सत्ता स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस युद्ध के बाद हालांकि फ्रांसीसी एक शक्ति के रुप में पूरी तरह समाप्त नहीं हुए, परन्तु निःसदेह ही उनकी शक्ति

इतनी अधिक कमजोर हो गई कि वे अपने पतन की ओर तेजी से बढ़ने लगे। सुन्दरलाल के अनुसार "त्रिचनापल्ली वह चट्टान मानी जाती है, जिससे टकराकर इस देश के अन्दर डुप्ले और फ्रांसीसियों की समस्त आंकाक्षाएं चूर-चूर हो गई।"

1.6 तीसरा कर्नाटक युद्ध- 1758-63

1756 में यूरोप में शुरु होने वाला सप्तवर्षीय युद्ध तीसरे कर्नाटक युद्ध का तात्कालीक कारण बना। तात्कालीक कारण हम इस कारण से इसे कह रहे हैं, क्योंकि युद्ध के लिए जमीन तो पहले से तैयार थी। इस व्यवसाय के प्रारम्भ में इसके पहले अध्याय में हम चर्चा कर चुके है कि यूरोपीय शक्तियों के बीच संघर्ष का मुख्य कारण व्यापार कर एकाधिकार प्राप्त करना था और यह तभी सम्भव हो समता था, जब कोई एक शक्ति अन्य शक्तियों को पराजित कर न केवल अपने राजनैतिक बल्कि व्यापारिक प्रभुसत्ता को भी स्थापित करें। अतः इस व्यापारिक एकाधिकार के युद्ध ने शेष बची दोनों कम्पनियों के बीच अन्तिम निर्णय की लड़ाई को अवश्यम्भावी बना दिया था।

1756 में यूरोप में शुरु हुए सप्तवर्षीय युद्ध ने फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी कम्पनी के बीच भारत में तनाव को बढ़ा दिया था। कर्नाटक युद्ध के ठीक एक वर्ष पूर्व 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय ने क्लाईव को साम्राज्य निर्माता के रुप में स्थापित कर दिया था। प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों ने न केवल बंगाल का आर्थिक शोषण कर अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाया, बल्कि चन्द्रनगर से फ्रांसीसी फैक्ट्री समाप्त कर फ्रांसीसियों की डगमगाती आर्थिक स्थिति को और भी कमजोर कर दिया। उधर फ्रांसीसी भी अंग्रेजों को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए प्रतिबद्ध थें। अपनी इस प्रतिबद्धता को अमलीजामा पहनाने के लिए 1758 में लाली को भारत भेजा गया। उसे यह स्पष्ट निर्देश देकर भेजा गया कि वह भारत में अंगेजी व्यापार को समाप्त करने के लिए तटीय प्रदेशों में स्थिति अंगेजी बस्तियों पर आक्रमण करें। निर्देशन का पालन करते हुए लाली ने फोर्ट सेंट डेविड पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद लैली मद्रास पर आक्रमण करना चाह रहा था, जो कि रणनीतिक रुप से बहुत हद तक सही भी था, परन्तु कमजोर आर्थिक स्थिति एवं आन्तरिक मतभेद के कारण लाली ऐसा न कर सका। अब लाली ने धन प्राप्त करने के लिए तंजौर पर आक्रमण किया। जब तंजौर पर घेरा डाला गया तो वहॉ के राजा ने लाली को 5 लाख रुपए देने की पेशकस की, परन्तु लाली इससे सन्तुष्ट न हुआ और उसने 10 लाख की मॉग की। लाली की इस मॉग ने परिस्थिति को फ्रांसीसियों के प्रतिकूल बना दिया। फ्रांसीसियों द्वारा अधिक समय तक तंजौर की घेराबंदी ने अंग्रेजों को मद्रास में अपनी शक्ति संगठित करने का अवसर प्रदान कर दिया। अन्त में लाली ने जब मजबूर होकर तन्जौर की घेराबन्दी हटाई, उस समय उसे कुछ भी नहीं मिला। अब लाली ने मद्रास पर आक्रमण करने का विचार किया। इसी बीच फ्रांसीसी डी0 एचे को अंग्रेजी सेना के हाथों पराजय का मुंह देखना पड़ा। इसके परिणामस्वरुप वह अपने जहाजों को लेकर मारीशस भाग गया। इस प्रतिकूल स्थिति में भी लाली ने मद्रास का घेरा डाला। फ्रांसीसी शक्ति को संगठित करने के लिए उसने हैदराबाद से बुसी को भी मद्रास आने का आदेश दिया। बुसी का हैदराबाद

छोड़ना न केवल हैदराबाद में बल्कि पूरे दक्षिण भारत में फ्रांसीसी प्रभाव के लिए हानिकारक हो सकता था, इसलिए बुसी ने लाली को समझाने की कोशिश की कि कहीं ऐसा न हो कि मद्रास पर अधिकार करने की इच्छा के कारण न केवल मद्रास, बल्कि हैदराबाद भी हम गवॉ दें। पर लाली अपनी बात पर डटा रहा और मजबूर होकर बुसी को कानफलॉ के नेतृत्व में 500 फ्रांसीसी सेना की एक छोटी सी टुकड़ी छोड़कर मद्रास जाना पड़ा। लाली की इस भूल का परिणाम शीघ्र ही सामने आया, जब अंग्रेजों ने बुसी की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए मछल्लीपट्टनम पर अधिकार कर लिया। भयभीत होकर निजाम सलावतजंग ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली, इस प्रकार हैदराबाद से भी फ्रांसीसियों का प्रभाव समाप्त हो गया। उधर मद्रास का घेराव भी फ्रांसीसियों के लिए सन्तोषजनक नहीं था, क्योंकि बूसी और लाली दोनों के बीच रणनीति को लेकर एक मत दिखाई नहीं दे रहा था। उस बदलती हुई परिस्थिति ने लाली को मद्रास से अपना घेरा उठाने के लिए विवश किया। कुछ समय तक छिटपुट घटनाएं चलती रही और अन्त में 1760 ई0 में आयरकूट के हाथों लाली की अपमानजनक एवं निर्णायक पराजय हुई। वांडीवाश के इस युद्ध ने न केवल फ्रांसीसियों के राजनैतिक सत्ता स्थापित करने के मंसूबे को समाप्त कर दिया, बल्कि एक व्यापारिक कम्पनी के रुप में भी इनकी लगभग समाप्ति हो गई। 1760 में ही जिंजी पर भी अंग्रजों का अधिकार हो गया। 1761 में अंग्रेजों ने पांडिचेरी पर भी कब्जा कर लिया। बुसी वांडिवाश के युद्ध के समय ही बंदी बना लिया गया था। लाली को भी बंदी बनाकर यूरोप भेज दिया गया और फिर उसे फ्रांस की सरकार को सौंप दिया गया। अतंतः 1763 की पेरिस की सन्धि ने फ्रांसीसी महत्वाकांक्षा को पूरी तरह समाप्त कर दिया।

1.7 अंग्रेजों की सफलता के कारण

हांलाकि दूसरे कर्नाटक युद्ध की शुरुआत तक दोनों कम्पनियों की शक्ति एक समान दिख रही थी, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि बुनियादी तौर पर अंग्रेज मजबूत स्थिति में थी। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत थी और वे अपनी सरकार को ऋण भी देती थी, वहीं दूसरी ओर फ्रांसीसी कम्पनी एक सरकारी कम्पनी थी और धन के लिए अपनी सरकार पर निर्भर थी। मजबूत आर्थिक स्थिति ने एक संगठन के रुप में अंग्रेजी कम्पनी को फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना से कई बेहतर स्थिति में ला दिया था। अंग्रेजी कम्पनी के अधिकारियों को यह स्पष्ट रुप से पता था कि उनके आर्थिक हित सीधे तौर पर कम्पनी के आर्थिक हित से जुड़े हुए है। अतः वे अपना काम अधिक परिश्रम के साथ करते थे, लेकिन एक सरकारी कम्पनी होने के नाते फ्रांसीसी कम्पनी की संगठनात्मक स्थिति ऐसी नहीं थी। अंगेजों की सफलता का एक अन्य कारण उसके तीन महत्वपूर्ण केन्द्र कलकत्ता, मद्रास, एवं मुम्बई थे। अगर किसी एक केन्द्र पर संकट आता भी था, तो उसका प्रभाव दूसरे क्षेत्रों पर नहीं पड़ता था। तीनों केन्द्रों को एक ही समय में जीतना सम्भव नहीं था। वहीं

दूसरी ओर फ्रांसीसियों के पास पांडिचेरी के अलावा इस प्रकार का अन्य कोई दूसरा केन्द्र नहीं था, जिस पर निर्भर हुआ जा सके। यहीं कारण था कि जैसे ही पांडिचेरी का पतन हुआ फ्रांसीसी कम्पनी का सितारा हमेशा के लिए डूब गया। फ्रांसीसी कम्पनी के अधिकारियों की रणनीति में हमेशा मतभेद दिखता है, वहीं अंग्रेज अधिकारी अपने कार्यो को संगठित रुप से अंजाम देते थे। अतंतः अंग्रेजी कम्पनी की विजय का एक बड़ा कारण इनकी समुद्री शक्ति थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. मुजफ्फरजंग , चंदा साहब तथा .... की मिली-जुली 38400 की संयुक्त सेना ने अम्बुर नामक स्थान पर कर्नाटक नबाब अनवरुद्दीन को पराजित किया।
2. .... ने नासिरगंज तथा मुहम्मद अली का साथ था।
3. 1756 में यूरोप में शुरु होने वाला .... युद्ध तीसरे कर्नाटक युद्ध का तात्कालीक कारण बनाद।
4. 1760 ई0 में वांडीवाश के युद्ध में आयरकूट के हाथों ...... की अपमानजनक एवं निर्णायक पराजय हुई।

1.8 सारांश

अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बीच होने वाला कर्नाटक युद्ध कोई पृथक घटना नहीं थी। यह 18 वीं शताब्दी में चल रहा वाणिज्यवाद उद्देशित साम्राज्यवाद का ही एक रुप था, जिसकी शुरुआत भारत में वास्कोडिगामा के आगमन के साथ ही हो चुका था। कर्नाटक युद्ध तक पुर्तगाली एवं डच कम्पनी की एक व्यापारिक शक्ति के रुप में समाप्ति हो चुकी थी। व्यापार के एकाधिकार की लड़ाई में अब केवल यह दो कम्पनियॉ ही बची थी। व्यापारिक हित, जो राजनैतिक सत्ता की स्थापना के बिना सम्भव नहीं था, ने उन दोनों कम्पनियों के बीच युद्ध को अवश्यम्भावी बना दिया था। यह युद्ध इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसने अंग्रेजी सत्ता को दक्षिण भारतीय राजनीति में पूर्ण रुप से स्थापित कर दिया। अब ने केवल फ्रांसीसी कम्पनी को ही व्यापार से वंचित होना पड़ा, बल्कि इस युद्ध के परिणाम ने दक्षिण भारतीय राज्यों को भी उनकी प्रभुसत्ता से वंचित कर दिया। इस प्रकार कर्नाटक युद्ध की विजय ने भारत को ब्रिटिश उपनिवेश बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

साम्राज्यवाद- अन्य देशों पर सत्ता स्थापित करने की सोच

वाणिज्यवादी एकाधिकार- व्यापार के साधनों पर अपना पूर्ण नियंत्रण होना

व्यापारिक प्रभुसत्ता- व्यापार में अधिकार स्थापित करना

1.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.4.2 के स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. असत्य

इकाई 1.7 के स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रांसीसियों
2. अंग्रेजों
3. सप्तवर्षीय
4. लाली

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. E.H.NOLAN, THE BRITISH EMPIRE IN INDIA
2. K.K.AZIZ, BRITISH IN INDIA: A STUDY IN IMPERIALISM
3. P.J.GRIFFITHS, BRITISH IN INDIA
4. S.L.NAGAURI, AADHOONIK BHARAT KA VRAHT ITIHAAS
5. S.C.RAYCHOUDHARY, HISTORY OF MODERN INDIA
6. HENRY DODWELL, THE CAMBRIDGE HISTORY OF MODERN INDIA, VOL.V
7. P.E.ROBERT, HISTORY OF INDIA
8. ISHWARI PRASAD, HISTORY OF MODERN INDIA

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. F.C.DANVERS, PROTUGUESE IN INDIA: BEING A HISTORY OF THE RISE AND DECLINE OF THEIR EASTERN EMPIRE
2. S.L.NAGAURI: BHARAT KA RASHTRIYE AANDOLAN TATHA SANWAIDHANIK VIKAS
3. MUSHIRUL HASAN, KAMPANI RAJ SE GANTANTRA TAK
4. SEKHAR BANDYOPADHYAY, FROM PLASSEY TO PARTITION: A HISTORY OF MODERN INDIA

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में आंग्ल- फ्रांसीसी प्रतिस्पर्धा पर सविस्तार लिखिए। फ्रांसीसियों की पराजय पर चर्चा कीजिए।

इकाई दो

बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना और द्वैध शासन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 1756-57 से पूर्व बंगाल की राजनैतिक स्थिति
    2.3.1 बंगाल में अंग्रेजों का आगमन
        2.3.1.1 सिराजुद्दौला एवं अंग्रेजों के बीच टकराव
        2.3.1.2 काल कोठरी की घटना तथा उससे जुड़ी सच्चाई
2.4 प्लासी का युद्ध
    2.4.1 प्लासी के युद्ध के परिणाम
2.5 मीर जाफर, मीर कासिम तथा बक्सर युद्ध
    2.5.1 बक्सर युद्ध के बाद बंगाल की स्थिति
2.6 बंगाल का द्वैध शासन
2.7 सारांश
2.8 पारिभाषिक शब्दावली
2.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद घटित घटनाओं ने स्वायत्त राज्यों के उदय का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। अपने पतन की ओर बढ़ते हुए मुगल साम्राज्य के खण्डरों पर जिन राज्यों का जन्म हुआ, उनमें एक महत्वपूर्ण राज्य बंगाल था। बंगाल की समृद्धि तथा राजनैतिक कमजोरी ने अंग्रेजी को उसकी और आकर्षित किया। अंग्रेज, जो अभी तक एक व्यापारी के रुप में थे, उन्होंने साम्राज्य निर्माता के सपने देखने शुरु कर दिए। वह भलीभॉति यह जानते थे कि बगैर राजनैतिक सत्ता की स्थापना के अधिक व्यापारिक लाभ सम्भव नहीं है। 1757 में हुए प्लासी के युद्ध ने नाटकीय रुप से अंग्रेजों को बंगाल की सत्ता पर स्थापित किया और शीघ्र ही वह पूरे भारत के मालिक बन गए।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना और द्वैध शासन से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से परिचित सकेंगे :

- **1756-57** से पूर्व बंगाल की राजनैतिक स्थिति
- सिराजुद्दौला एवं अंग्रेजों के बीच टकराव, काल कोठरी की घटना तथा उससे जुड़ी सच्चाई
- प्लासी का युद्ध और युद्ध के परिणाम
- मीर जाफर**,** मीर कासिम तथा बक्सर युद्ध और युद्ध के बाद बंगाल की स्थिति
- बंगाल का द्वैध शासन

2.3 1756-57 से पूर्व बंगाल की राजनैतिक स्थिति

औरंगजेब की मृत्यु के बाद से ही बंगाल का सूबेदार मुर्शिद कुली खॉ ने अपनी स्वतन्त्रता के लक्षण दिखाने शुरु कर दिए, परन्तु वह मुगल सम्राट के प्रति अपनी निष्ठा का प्रदर्शन करता रहा तथा उन्हें वार्षिक कर राशि एवं नजराने देता रहा। इसका कारण यह था कि कुछ समय के लिए वह मुगलों के साथ अपने अच्छे सम्बन्ध तथा उनका विश्वास बनाए रखना चाहता था। बहादुर शाह प्रथम के सम्पूर्ण शासनकाल में मुर्शिद कुली खां बंगाल का शासन बना रहा। बाद के मुगलशासक फर्रुखसियर तथा जहॉदारशाह ने मुर्शिद कुली खॉ को हटाने की कोशिश की परन्तु वे असफल रहे। 1772 में कुली खॉ ने मुगल सेना को पराजित कर सेनानायक रशीद खॉ की हत्या कर दी। इस पराजय के बाद फर्रुखशियर ने मुर्शिद कुली खॉ की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी, लेकिन फिर भी मुर्शिद कुली खॉ मुगल साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा का प्रदर्शन करता रहा। उसकी मृत्यु के बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन की मृत्यु हुई तो उसके पुत्र सरफराज ने बंगाल की गद्दी सभाली, परन्तु वह स्वंय को इस गद्दी का उचित हकदार साबित नहीं कर सका। वह बहुत शक्तिहीन था। उसकी निष्क्रियता और अयोग्यता के कारण राज्य के अधिकारियों में सत्ता हथियानें के लिए होड़ मच गई, जिसके परिणामस्वरुप बंगाल में एक क्रांति हुई, जिसमें सरफराज को अपने गद्दी तथा जीवन दोनों से हाथ धोना पड़ा। सरफराज को गद्दी से हटाकर अलीवर्दी खॉ ने बंगाल की सत्ता संभाली। उसने 1740 से 1756 तक बंगाल पर शासन किया। बंगाल उसके शासन काल में आर्थिक दृष्टि से वैभवशाली तथा राजनैतिक दृष्टि से मजबूत था। उसके शासनकाल में मराठों के कई आक्रमण हुएा, जिसका उसने बड़ी वीरता से मुकाबला किया। 1751 में बंगाल के नबाब तथा मराठों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार नबाब मराठों का 12 लाख रुपए वार्षिक चौथ प्रदान करने के लिए इस शर्त पर सहमत हो गया कि भविष्य में मराठे उसके राज्य में कदम नहीं रखेंगे। अलीवर्दी खॉ ने बंगाल में अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों द्वारा क्रमशः कलकत्ता एवं चन्द्रनगर की अपनी-अपनी बस्तियों की किलेबन्दी करने का भी विरोध किया, क्योंकि वह उनकी शक्तियों में वृद्धि के प्रति आशंकित था। 1756 में अलीवर्दी खॉ की मृत्यु हो गई, जिसके उपरान्त उसका नाती सिराज-उद-दौला उसका

उत्तराधिकारी बना। सिराजुद्दौला के सिंहासन पर बैठते ही अंग्रेजों ने बंगाल की राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया । एक प्रबल और कार्याधिकारी शासक का बंगाल की गद्दी पर बैठना अंग्रेजों के हित में नही था। वह किसी दुर्बल व्यक्ति को नबाब बनाना चाहते थे, जो उनकी आर्थिक एवं राजनैतिक हितों की पूर्ती कर सके।

2.3.1 बंगाल में अंग्रेजों का आगमन

1633 से पूर्व अंग्रेजों का आगमन उस समय हुआ जब उड़िसा के मुगल सूबेदार ने उन्हें हरिहरपुर और बालासौर में अपनी फैक्ट्री खोलने की अनुमति दी। शुजा की सूबेदारी में अंग्रेजी व्यापार को बहुत अधिक लाभ हुआ। उन्होंने शोरे , रेशम तथा चीनी का व्यापार आरम्भ किया। 1657 में उन्होंने हुगली में भी एक फैक्ट्री खोली। 1658 में मीर जुमला बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसने अंग्रेजों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि 1658 से 1663 तक अंग्रेजों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। 1663 में मीर जुमला की मृत्यु के बाद शाइस्ता खॉ बंगाल का सूबेदार बना। इसके काल में एक बाद फिर से अंग्रेजों को व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त होने लगी। इस काल में बंगाल में स्थापित अंग्रेजों की तीन फैक्ट्रियॉ, हुगली, कासिम बाजार की फैक्टी के प्रमुख चारनॉक ने अंग्रेजी व्यापारिक केन्द्र के लिए हुगली के स्थान पर सुतनैति को चुना जिससे कलकत्ता की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। सुतनैति में आबादी के बढ़ने से अंग्रेजों ने इस बस्ती के क्षेत्रफल को बढ़ाने की दृष्टि से समीप के दो अन्य गॉव कालिकाता और गोविन्दपूर खरीद लिया। कलकत्ता का निर्माण इन तीनों गॉवों को मिलाकर ही हुआ। अंग्रेजी व्यापार को अधिक प्रोत्साहन मिला। 1791 के शाही आदेश से जिसके अनुसार कस्टम शुल्क तथा अन्य देय करों के स्थान पर अंग्रेज केवल 3000 रुपए अदा करने पर बंगाल में अपना कर मुक्त व्यापार कर सकते थे। मुर्शिद कुली खॉ ने जब बंगाल की सत्ता संभाली तो उसे अंग्रेजों को ही जाने वाली यह असाधारण रियायत से परेशानी होने लगी। अतः 1713 में उसने अंग्रेजों से सारी रियायतें छीन ली और यह आदेश जारी किया कि अब से उन्हें भी सामान्य व्यापारियों के समान ही कर और सीमा शुल्क अदा करने पड़ेंगे। इस पर अंग्रेजों ने तत्कालीन मुगल बादशाह फर्रुखसियर के पास जॉन सुरमन के नेतृत्व में एक शिष्टमण्डल भेजा। इस प्रयास के परिणामस्वरुप 1717 ई0 में एक फरमान जारी हुआ, जिसके अन्तर्गत सीमा-शुल्क से मुक्त व्यापार करने के लिए अंग्रेजों की फैक्ट्री के प्रमुख द्वारा दस्तक जारी किया जाता था। फरमान के अनुसार केवल कम्पनी ही अपने व्यापार के लिए दस्तक जारी कर सकती थी, परन्तु कम्पनी के अधिकारियों ने अपने व्यक्तिगत हित के लिए भी इसका दुरुपयोग किया। फरमान के अनुसार कम्पनी को यह विशेष छूट केवल आयात एवं निर्यात अर्थात विदेशी व्यापार पर ही मिल सकती थी, लेकिन कम्पनी एवं उसके अधिकारियों ने गलत तरीके से इसका इस्तेमाल देशी व्यापार के लिए भी किया। अतः हम देख सकते हैं कि अंग्रेजों को बंगाल से कितना अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त हो रहा था। 1740 में जब अलीवर्दी खॉ ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा की तब भी वह अपनी मनमानी करते रहे। अलीवर्दी खॉ ने जानबूझकर अंग्रेजों की मनमानी

के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया। उसका विचार था कि व्यापारियों को दबाना उसकी प्रतिष्ठा के खिलाफ है, परन्तु यह भी सत्य है कि अलीवर्दी खॉ अंग्रेजों की नौसैनिक शक्ति से भयभीत था। अलीवर्दी खॉ ने अंग्रेजों को कभी किलेबंदी की अनुमति नहीं दी। उसका कहना था "तुम लोग सौदागर हो, तुम्हें किलों की क्या जरुरत। जब तक तुम मेरी हिफाजत में हो तुम्हें किसी दुश्मन का डर नहीं हो सकता।

2.3.1.1 सिराजुद्दौला एवं अंग्रेजों के बीच टकराव

अलीवर्दी खॉ के शासन काल से ही नबाब तथा अंग्रेजों के बीच के सम्बन्ध काफी तनावपूर्ण रहे थे। 1752 में ओर्म ने अलीवर्दी के बारे में क्लाइव को लिखा था, "इस बूढ़े कुत्ते को अच्छी तरह से दंड देना ठीक रहेगा। मैं बगैर किसी कारण के यह नहीं कर रहा हूं। कम्पनी को गम्भीरतापूर्वक इस बात पर विचार करना होगा अन्यथा उसके लिए बंगाल का व्यापार निरर्थक हो जाएगा।" अलीवर्दी खॉ ने भी सिराजुद्दौला को अंग्रेजों के विरुद्ध सचेत किया था। हॉलवेल के अनुसार अलीवर्दी खॉ ने मरते समय सिराजुद्दौला से कहा था "देश में यूरोपियनों की शक्ति क्या है, इसका ध्यान रखो। तेलंगाना की भूमि में उनकी राजनीति एवं युद्धों को देखते हुए तुम्हें जाग्रत रहना चाहिए। अपने पारस्परिक झगड़ों के आधार पर उन्होंने राजा की भूमि और उसकी प्रजा की वस्तुओं को आपस में बॉध लिया है। अंग्रेज अधिक शक्तिशाली है, पहले उनकी शक्ति समाप्त करो। उन्हें कभी भी किले मत बनवाने देना।" इस प्रकार सिराजुद्दौला के नबाब बनने के पूर्व ही बंगाल के नबाब एवं अंग्रेजों के बीच युद्ध आवश्यम्भावी दिखने लगा था।

अलीवर्दी खॉ की मृत्यु के बाद जब सिराजुद्दौला नबाब बना तो अंग्रेज बंगाल में व्यापार के क्षेत्र में पूर्ण रुप से अपनी मनमानी कर रहे थे। यहॉ तक कि भारतीय व्यापारी भी अंगेंजों से दस्तक प्राप्त करके व्यापार करते थे। इसके अतिरिक्त अंग्रेंज जिन गॉवों के जमीदार थे उसकी पूरी आय अपने पास रख लेते थे। बंगाल के नबाब को उन्होंने लगान से बिल्कुल वंचित कर रखा था। सिराजुद्दौला ने जब इस तथ्य की छानबीन कराई तो ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों ने 1717 ई0 से 1756 ई0 तक बंगाल सरकार को 18 लाख, 75 हजार पौंड की आय से वंचित रखा था। इसलिए सबसे पहले सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों द्वारा दस्तक जारी करने के अधिकार को छीन लिया। अंग्रेजों ने नबाब की आज्ञा के बिना अपनी फैक्ट्रियों की किलेबंदी कराई था। इस पर भी सिराजुद्दौला ने प्रतिबन्ध लगाया। सिराजुद्दौला के राज्याभिषेक के समय नियमानुसार अंग्रेजों ने दरबार में अपनी हाजरी नहीं लगाई, बल्कि इतना ही नही वे नबाब के विरोधियों, यानी शोकतजंग तथा घसीटीबेगम के साथ षडयन्त्रों में लगे रहे ताकि सिराजुद्दौला की जगह किसी कमजोर व्यक्ति को नबाब बनाया जाए, जिससे उनके आर्थिक हितों की पूर्ति हो सके।

स्थिति तब और बिगड़ गई जब सिराजुद्दौला के एक सेवक किशनदास ने, जिसने 53 लाख कर गबन किया था, उसे अंग्रेजों ने शरण दी। जब नबाब ने ख्वाजा वाजिद तथा राम नारायण को अंग्रेजों से इस सन्दर्भ में बातचीत के लिए भेजा तो उनको बहुत अपमानित किया गया इससे स्पष्ट था कि अंग्रेजों को नबाब के आदेशों की कोई परवाह नहीं थी तथा वे सिराजुद्दौला को इसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उकसा रहे थे। इन परिस्थितियों में सिराजुद्दौला को अंग्रेज व्यापारियों के खिलाफ कदम उठाना पड़ा तथा उसने अंग्रेजों की कासिम बाजार की फैक्ट्री पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् नबाब ने फोर्ट विलियम पर आक्रमण किया। अंग्रेज अधिकारी वहॉ से भाग निकले तथा जिन्हें बन्दी बनाया गया, उन्हें एक कोठरी में बन्द कर दिया गया।

2.3.1.2 काल कोठरी की घटना तथा उससे जुड़ी सच्चाई

जिस कोठरी में अंग्रेजों को बन्दी बनाया गया , उस घटना को हॉलवेल ने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया , ताकि अंग्रेज भड़क उठे। इस घटना को हम इतिहास में काली कोठरी के नाम से जानते है। बी0के0 गुप्ता के अनुसार हॉलवेल ने, जो उन बन्दियों में से एक था एक कोठरी की घटना को झूठे ढंग से बढ़ा चढ़ा कर लिखा। हॉलवेल के बयानों में ही विभिन्नता है। पहले बयान के अनुसार बन्दियों की कुल संख्या 165 से 170 थी। दूसरे बयान में उसने बन्दियों की संख्या 146 बताई। इतिहासकार लिटिल इस बयान से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि बन्दियों में महिलाएं तथा बच्चे शामिल नहीं थे। जादुनाथ सरकार के अनुसार बन्दियों की संख्या 60 से अधिक नहीं थी। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि हॉलवेल ने यह कहानी अपनी इंग्लैण्ड की यात्रा के समय लिखी थी। इसलिए इस कहानी का बंगाल की तुरन्त घटनाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

2.4 प्लासी का युद्ध

बंगाल में अंग्रेजों की पराजय का समाचार जब मद्रास पहुंचा, उस समय तक अंग्रेज दूसरी कर्नाटक युद्ध जीत चुके थें। क्लाइव इस विजय का नायक बन कर उभरा। अरकाट के घिराव ने उसे प्रथम श्रेणी का राजनीतिज्ञ बना दिया था। इसलिए क्लाईव को बंगाल के लिए रवाना किया गया। उसकी सहायता के लिए वाट्सन को समुद्री बेड़े का इन्चार्ज नियुक्त किया गया । अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अंग्रेजों ने षडयन्त्रों का जाल बुनना शुरु कर दियां व्यक्तिगत स्वार्थो से प्रेरित कुछ व्यक्ति भी नबाब को हटाना चाहते थे। इनमें प्रमख थे, मीर जाफर राय, दुर्लभराय, अमीचंद तथा बंगाल के कुछ प्रमुख जगत सेठ। वाट्स उस समय मुर्शिदाबाद में था और उसने प्लासी के युद्ध से पूर्व की गई सौदेबाजी में सक्रिय भूमिका निभाई। अंग्रेजों ने नबाब पर आक्रमण करने में विलम्भ नही किया। दोनों पक्षों की सेनाएं प्लासी के मैदान में एक दूसरे के सामने आ खड़ी हुईं इस समय नबाब के पास 50,000 सैनिक थे, जबकि क्लाइव के पास मात्र 8000 यूरोपियन तथा 2,200 भारतीय सैनिक। मीर जाफर तथा अन्य सेनानायकों के षड़यन्त्र के कारण प्लासी के युद्ध में नबाब की पराजय हुई तथा उसकी हत्या कर दी गई।

कुछ इतिहासकार प्लासी के युद्ध को युद्ध ही नहीं मानते हैं। अंग्रेजों का पक्ष लेने वाले ब्रिटिश इतिहासकार पी0ई0 राबर्टस का भी मानना है कि प्लासी के युद्ध को युद्ध नहीं मानते हैं। अंग्रेजों का पक्ष लेने वाले ब्रिटिश इतिहासकार पी0ई0 राबर्टस का भी मानना है कि प्लासी के युद्ध को युद्ध की संज्ञा नही दी जा सकती। के0एम0 पनिक्कर के अनुसार ''प्लासी की घटना एक हुल्लड़ तथा भगदड़ थी, युद्ध नही।'' यद्यपि नबाब के पास एक विशाल सेना थी फिर भी अधिकांश सैनिकों ने इसमें भाग ही नहीं लिया। अंग्रेजों की फौज में मरने वालों की संख्या 23 थी, इसमें 7 यूरोपीय तथा 16 भारतीय सिपाही थे। 49 घायल हुए, जिसमें केवल 13 ही यूरोपीय सिपाही थे। दूसरी तरफ नबाब की सेना में 500 सिपाही मारे गए तथा मोहनलाल सहित काफी संख्या में लोग घायल हुए।

2.4.1 प्लासी के युद्ध के परिणाम

प्लासी के युद्ध का परिणाम बताते हुए जदुनाथ सरकार कहते है, 23 जून, 1757 को भारत में मध्यकालीन युग का अन्त हो गया तथा आधुनिक युग का शुभारम्भ हुआ। प्लासी के युद्ध के 20 वर्ष बाद ही देश धर्मतन्त्री शासन के अभिषाप से मुक्त होने लगा।'' प्लासी के युद्ध के परिणामों का यह बड़ा रुढ़िवादी एवं एकपक्षीय विवेचन है। ल्यूक स्क्राफटन जो नबाब के दरबार में प्लासी के युद्ध के बाद कम्पनी का रेजीडेण्ट था, का विचार है ''प्लासी के युद्ध से अंगेजों को वही स्थिति प्राप्त हो गई, जो उन्हें सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ता पर अधिकार से पूर्व थी।'' इस कथन में इस तथ्य को पूरी तरह से छुपा लिया गया है कि प्लासी के युद्ध से पूर्व मीर जाफर तथा अंग्रेजों के मध्य सन्धि हुई थी। इसमें अंग्रेजों ने नबाब की स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए थे। प्लासी के परिणामें की बक्सर युद्ध में अंग्रेजों की विजय द्वारा पुष्टी होती है। बीच के वर्षो में अंग्रेजों का वाणिज्यिक स्वरुप राजनैतिक हो गया। प्लासी के युद्ध ने अंग्रेजों को तात्कालिक सैनिक एवं वाणिज्यिक लाभ प्रदान किए। अगले दस वर्षो के घटनाक्रम ने एक नवीन शासन के प्रभुसत्तापूर्ण प्रभाव की स्थापना की।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. 1772 में मुर्शिद कुली खॉ ने मुगल सेना को पराजित कर सेनानायक .... की हत्या कर दी।
2. अलीवर्दी खॉ ने बंगाल में 1740 से .... तक बंगाल पर शासन किया।
3. 1663 में मीर जुमला की मृत्यु के बाद .... बंगाल का सूबेदार बना।
4. जादुनाथ सरकार के अनुसार काली कोठरी में बन्दियों की संख्या .... से अधिक नहीं थी।
5. प्लासी के युद्ध के समय नबाब के पास .... सैनिक थे, जबकि क्लाइव के पास मात्र 8000 यूरोपियन तथा 2,200 भारतीय सैनिक।

2.5 मीर जाफर, मीर कासिम तथा बक्सर युद्ध

सिराजुद्दौला की हत्या के बाद मीर जाफर को बंगाल का नबाब बनाया गया। वह एक दुर्बल एवं राजनैतिक तथा प्रशासनिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति था , अतः बंगाल की वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में ही रही। कम्पनी ने कलकत्ता में टकसाल की स्थापना की तथा पुराने भू-स्वामी तथा पट्टेदारों के विरोध कर बावजूद 24 परगना की जमीदारी को भू-अनुदान के रुप में प्राप्त कर लिया।
अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण के कारण नबाब की आर्थिक स्थिति चरमरा गई। कम्पनी द्वारा बार-बार किए जाने वाले धनराशि की मॉग को देने में असमर्थ हो गया, इसलिए उसने बर्द्धमान, मिदनापुर तथा चटगॉव कम्पनी को दे दिया। इसके बावजूद कम्पनी ने उसे नबाब के पद से हटाकर उसके स्थान पर मीर कासिम को नबाब घोषित किया। मीर कासिम ने राज्य की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए कई कदम उठाए , जैसे भू-राजस्व की दरें बढाई, राजस्व की वसूली के लिए कठोर कदम उठाए। सेना में भी सुधार किए तथा गुर्गिन खॉ में अधिक यूरोपीय सेना की भॉति बंगाल की सेना का पुनर्गठन किया। मुंगेर जहॉ मिर कासिम ने अपना एक प्रशासन केन्द्र स्थापित किया था, जिसमें हथियारों तथा गोला बारूद की फैक्ट्री स्थापित की। अंग्रेजी कम्पनी तथा अधिकारियों को ब्यापार मे विशेष छूट थी, इसके विरोध में मीर कासिम ने असाधारण कदम उठाते हुए दो वर्षो के लिए समस्त ब्यापारिक करों एंव चुंगियों को ही समाप्त कर दिया। इसे कम्पनी ने अपने विशेषाधिकारों की अवहेलना माना। परिणामस्वरूप पटना की अंग्रेजी फैक्ट्री के प्रमुख एलिस ने पटना पर आक्रमण करके सशस्त्र संघर्ष को बढ़ा दिया। जुलाई 1763 में मीर कासिम के विरूद्ध औपचारिक युद्ध की घोषणा कर दी गई तथा मीर जाफर को पुनः नबाव बनाया गया। लगातार पराजय के बाद मीर कासिम ने भाग कर अवध मे शरण ली। मीर कासिम अवध के नवाब शुजाउद्धौला तथा मुगल शासक शाह आलम के बीच समझौता हुआ। बक्सर के मैदान में 23 अक्टूबर 1964 ई0 को तीनो शासकों की संयुक्त सेनाओं का मुकाबला अंग्रेजों की सेना से हुआ। मुगल शासक ने युद्ध में बहुत अधिक हस्तक्षेप नही किया। इस युद्ध में अंग्रेजो के हॉथों तीनों संयुक्त सेनाओ की बुरी तरह पराजय हुई। इस युद्ध में शुजा के दो हजार तथा अंग्रेजो के 825 सैनिक मारे गए। मीर कासिम रणक्षेत्र से भाग निकला । शुजाउद्दौला भी भाग कर रुहेलखण्ड चला गया । मुगल शासक शाह आलम अंग्रेजों से मिल गया।

शुजाउद्दौला जनवरी, 1765 में बनारस के निकट पुनः अंग्रेजों से परास्त हुआ। इसके बाद अंग्रेजों ने चुनार तथा इलाहाबाद के दुर्गो पर अधिकार कर लिया। अंत में शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों के सामने आत्म समर्पण कर दिया। मीर कासिम काफी समय तक इधर-उधर भटकता रहा था। अंततः 1777 में उसकी मृत्यु हो गई।

2.5.1 बक्सर युद्ध के बाद बंगाल की स्थिति

बक्सर युद्ध की विजय के बाद अंग्रेजों ने मीर जाफर को बंगाल का नबाब बनाया। गद्दी का सुख वह अधिक दिनों तक नहीं देख पाया और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अंग्रेजों ने मीर जाफर

के पुत्र नजमुद्दौला को उसका उत्तराधिकारी चुना तथा उसे ऐसी सन्धि करने पर विवश कर दिया, जिससे बंगाल का शासन कम्पनी के नियंत्रण में आ गया। क्लाइव ने गवर्नर के रुप में अपनी पुनर्नियुक्ति के बाद नजमुद्दौला को 50 लाख रुपए सालाना पेंशन देकर बंगाल का सम्पूर्ण राजस्व कम्पनी को हस्तान्तरित करने पर सहमत कर लियां 1766 में नजमुद्दौला की मृत्यु के उपरान्त उसके अल्पायु भाई सैफुद्दौला नबाब बना। नए नबाब की पेंशन को घटाकर 10 लाख कर दी गई। 1775 में कलकत्ता की सुप्रीम कोर्ट ने यह निश्चय किया कि नबाब सार्वभौम शासक नहीं है। एक न्यायाधीश ने तो उसे ''भूसे से भरे एक बोतल'' के रुप में उल्लखित किया।

2.6 बंगाल का द्वैध शासन

1765 की इलाहाबाद की सन्धि एक युगान्तकारी घटना थी, क्योंकि इसने उन प्रशासकीय परिवर्तनों को जन्म दिया, जिन्होंने भारत में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था के प्रचलन की आधारभूमि तैयार की। इससे नबाब की सत्ता का अन्त हो गया तथा एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया, जिसमें अधिकारों को बड़ी चतुराई से मुक्त रखा गया। बंगाल में द्वैध शासन व्यवस्था के विवेचन से पूर्व दो शब्दों दीवानी और निजामत को स्पष्ट करना आवश्यक है। मुगल सूबेदार या गवर्नर, जो निजामत (सैनिक प्रतिरक्षा, पुलिस और न्याय प्रशासन) कार्यों का निष्पादन करते थे तथा दीवान प्रांतीय राजस्व एवं वित्त व्यवस्था का प्रभारी होता था। ये दानों अधिकारी मुगल केन्द्रिय शासन के प्रति उत्तरदायी होते थें और एक दूसरे पर नियन्त्रण का प्रयोग करते थे, परन्तु औरंगजेब की मृत्यु के समय मुर्शिद कुली खॉ इन दोनों पदों पर एक साथ कार्य कर रहा था।

अंग्रेजों ने शाह आलम द्वितीय के साथ इताहाबाद की सन्धि करके बंगाल के दीवानी अधिकार प्राप्त कर लिए और इसके बदले में मुगल सम्राट को 26 लाख रुपए वार्षिक देने का वचन दिया। 53 लाख रुपए का प्रावधान निजामत कार्यों के लिए रखा गया। इस सन्धि से पूर्व अंग्रेजों ने नबाब नजमुद्दौला के साथ एक सन्धि की, जिसने समस्त निजामत अधिकार अर्थात सैनिक प्रतिरक्षा एवं वैदेशिक सम्बन्ध कम्पनी को समर्पित कर दिए। इस प्रकार कम्पनी ने बंगाल के दीवानी अधिकार मुगल सम्राट से और निजामत शक्तियॉ नबाब से प्राप्त कर ली। कम्पनी दीवानी और निजामत कार्यों का निष्पादन अपने एजेन्टों, जो भारतीय होते थे, के माध्यम से करती थी, परन्तु सत्य तो यह है कि वास्तविक शक्तियॉ कम्पनी के हाथों में ही रही। कम्पनी और नबाब दानों के द्वारा प्रशासन की व्यवस्था को बंगाल का द्वैध शासन कहते हैं। सुन्दरलाल के अनुसार ''इसके बाद बंगाल का इतिहास केवल अंग्रेज गर्वनरों के कारनामों का इतिहास रह जाता है।'' स्मिथ कहते हैं, ''दोहरी व्यवस्था का सही नाम अप्रत्यक्ष व्यवस्था रखा गया, जो धीरे-धीरे प्रत्यक्ष व्यवस्था में बदल गई।'' डॉडवैल के अनुसार ''संक्षेप में दीवानी की स्वीकृति इस प्रकार तैयार की गई थी कि बगैर

औपचारिक सत्ता परिवर्तन के बंगाल का पूर्ण नियंत्रण कम्पनी के हितों को ध्यान में रखते हुए, कम्पनी के हाथ में आ गया।"

कम्पनी को शासन सम्बन्धित अधिकार प्राप्त हो गए, परन्तु अनुभवी कर्मचारियों की कमी के कारण क्लाईव ने कम्पनी को प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व से दूर रखना चाहा। इस संकट को निपटाने के लिए क्लाईव ने अधिकारों के विभाजन को ही उचित समझा। उसने भारतीय अधिकारियों के माध्यम से दीवानी कार्यों के लिए दो नायब दीवान नियुक्त किए। सिताबरॉय को बिहार में तथा मुहम्मद रजा खाँ को बंगाल में नियुक्त किया गया। इस प्रकार बड़ी चालाकी से कम्पनी ने अधिक से अधिक आय प्राप्त करने के लिए अपना उत्तरदायित्व इन दानों नायब दीवानों पर डाल दिया। अतः द्वैध शासन बगैर उत्तरदायित्व के निर्वहन के शासन चलाने की एक विधि थी, जिसकी शुरुआत कम्पनी ने अपना आर्थिक लाभ कमाने के लिए किया। चूंकि सैनिक शक्ति कम्पनी के हाथों में थी अतः आन्तरिक विद्रोह तथा बाहरी आक्रमण से निपटने के लिए नबाब कम्पनी पर निर्भर था। इस शासन व्यवस्था को द्वैध शासन इसलिए कहते है, क्योंकि सैद्धान्तिक रुप से तो शासन व्यवस्था का भार कम्पनी तथा नबाब के बीच विभाजित था, परन्तु व्यवहारिक रुप से कम्पनी ने शासन व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने हाथें में नही लियां उपरी रुप से शासन का भार अभी भी भारतीयों के हाथों में था, परन्तु वास्तविक शक्ति इस इस्तेमाल कम्पनी ही करती थी। इस प्रकार सूबों में दो सत्ताओं की स्थापना हुई, परन्तु विदेशी सत्ता वास्तविक थी जबकि भारतीय सत्ता केवल व्यवहार मात्र थी।

इस व्यवस्था के परिणामस्वरुप प्रशासनिक विघटन हुआ। कानून और व्यवस्था की स्थिति खराब हुई। व्यापार तथा वाणिज्यि का पतन हुआ। व्यापारियों की स्थिति दयनीय हो गई। समृद्ध ओर विकसित उद्योग, विशेषतः रेशम और कपड़ा उद्योग बर्बाद हो गए, किसान भयंकर गरीबी की स्थिति में पहुँच गए। 1770 के भयंकर अकाल के दौरान कम्पनी के अप्रत्यक्ष शासन के दुष्परिणामों को पूरी तरह से महसूस किया गया। इस अकाल ने लगभग एक करोड़ लोगों को प्रभावित किया। दूसरी ओर सामान्य कष्टों और विक्षोभ की स्थिति का कम्पनी के अधिकारियों और गुमाश्तों ने अवैध व्यक्तिगत व्यापार करके लाभ कमाने के लिए किया। उन्होंने समस्त उपलब्ध अनाज पर एकाधिकार कर लिया और गरीब रययत को अगली फसल के लिए जरुरी बीज के रुप में सुरक्षित अनाज तक को बेचने के लिए बाध्य किया गयां एक ऐसे समय जब "जीवित लोग मृत लोगों को खा रहे थे" मुनाफाखोरी को किसी जाँच पड़ताल या दण्ड मृत्यु दर और उसके परिणामस्वरुप कृषि उत्पादन में गिरावट के बावजूद भू-राजस्व में पाँच प्रतिशत तक की कटौती प्रदान नहीं की गई।

क्लाईव द्वारा स्थापित द्वैध शासन भयंकर राजनैतिक विफलता सिद्ध हुआ। जब वारेन हेस्टिंग को 1772 में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया तो, " उसने मुगल प्रभुसत्ता के प्रति निष्ठा के नकाब को उतार का फेंक दिया।"अब उसने बंगाल पर विजित शासन के रुप में शासन करना शुरु कर दियां द्वैध शासन व्यवस्था कम्पनी के कर्मचारियों को हस्तांतरित कर दी गई। नबाब को प्रशासन में नाममात्र तक की भागेदारी के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। नबाब के निर्वाह

भत्ते को 32 लाख से घटाकर 16 लाख कर दिया गया। कम्पनी ने मुगल शासक को भी धन देना बन्द कर दिया।

क्लाईव ने जो द्वैध शासन व्यवस्था लागू की थी, वह एक दूषित शासकीय तन्त्र था। इसके कारण बंगाल में पहले से भी अधिक अव्यवस्था फैल गई और जनता पर ऐसे अत्याचार ढाए गए, जिनका उदाहरण बंगाल के इतिहास में कहीं नहीं मिलता। बंगाल के नबाब ने द्वैध शासन व्यवस्था की आलोचना करते हुए अंग्रेज रेजीडेण्ट को 24 मई, 1769 ई0 को एक पत्र लिखा, ‘‘बंगाल का सुन्दर देश जब तक भारतीयों के अधीन, तब तक प्रगतिशील एवं महत्वपूर्ण प्रदेश था। अंग्रेजों की अधीनता में आने के कारण उसका अधःपतन अन्तिम सीमा पर पहुँच गया।‘‘ के0एम0 पनिक्कर लिखते हैं ‘‘भारतीय इतिहास के किसी काल में भी, यहाँ तक कि तोरमन और मोहम्मद तुगलक के समय भी, भारतीय इतिहास को ऐसी विपत्तियों का सामना नहीं करना जो कि बंगाल के निवासियों को इस द्वैध-शासन काल में झेलना पड़ा।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. शुजाउद्दौला ने बंगाल में 1740 से 1756 तक शासन किया।
2. 1657 में अंग्रेजों ने हुगली में एक फैक्ट्री खोली।
3. कलकत्ता का निर्माण सुतनैति, कालिकाता और गोविन्दपूर इन तीनों गॉवों को मिलाकर ही हुआ।
4. जदुनाथ सरकार के अनुसार ‘‘प्लासी की घटना एक हुल्लड़ तथा भगदड़ थी, युद्ध नही।
5. बंगाल का द्वैध शासन 1765 से 1772 तक व्यवहृत रहा था।

2.7 सारांश

1633 से पूर्व अंग्रेजों का आगमन उस समय हुआ जब उड़िसा के मुगल सूबेदार ने उन्हें हरिहरपुर और बालासौर में अपनी फैक्ट्री खोलने की अनुमति दी। बंगाल की समृद्धि तथा राजनैतिक कमजोरी ने अंग्रेजों को उसकी और आकर्षित किया। अंग्रेज, जो अभी तक एक व्यापारी के रुप में थे, उन्होंने साम्राज्य निर्माता के सपने देखने शुरु कर दिए। प्लासी के युद्ध के उपरान्त दो दशकों से भी कम समय में बंगाल की वास्तविक सत्ता नबाब के हाथें से निकलकर कम्पनी के हाथों में आ गई। इसके परिणामस्वरुप भारत का बंगाल जैसा समृद्ध तथा औद्योगिक रुप से विकसित प्रदेश गरीबी एंव दयनीय स्थिति में पहुँच गया। अंग्रेजों द्वारा बंगाल पर अधिकार के तत्काल बाद ही ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के लिए भारत के द्वार खुल गए, जिसके परिणामस्वरुप देश की समृद्ध अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदल गई।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

फैक्ट्रियां – यूरोपीय देशों की इन फैक्ट्रियों में वास्तव में कोई निर्माण कार्य नहीं होता था, ये स्थान उनके निवास या सामान इकट्ठा करने के लिए थे।

फरमान – आज्ञापत्र

साम्राज्यवाद- अन्य देशों पर सत्ता स्थापित करने की सोच

वाणिज्यवादी एकाधिकार- व्यापार के साधनों पर अपना पूर्ण नियंत्रण होना

व्यापारिक प्रभुसत्ता- व्यापार में अधिकार स्थापित करना

2.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.4.1 के स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. रशीद खॉ
2. 1756
3. शाइस्ता खॉ
4. 60
5. 50,000

इकाई 2.6 के स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. SUSHIL CHAUDHURY, PRELUDE TO EMPIRE: PLASSEY REVOLUTION OF 1757
2. PRATAP SINGH, ADHUNIK BHARAT
3. C.A.BAYLY, INDIAN SOCIETY AND THE MAKING OF BRITISH EMPIRE
4. K.K.AZIZ, BRITISH IN INDIA: A STUDY IN IMPERIALISM
5. S.C.RAYCHOUDHARY, HISTORY OF MODERN INDIA
6. ISHWARI PRASAD, HISTORY OF MODERN INDIA
7. TARACHAND, HISTORY OF FREEDOM MOVEMENT IN INDIA, VOL.I
8. S.L.NAGAURI, AADHOONIK BHARAT KA VRAHT ITIHAAS

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. B.K.GUTA, SIRAJ-UD-DAULAH AND THE EAST INDIA COMPANY
2. HENRY DODWELL, THE CAMBRIDGE HISTORY OF MODERN INDIA, VOL.V

3. SEKHAR BANDYOPADHYAY, FROM PLASSEY TO PARTITION: A HISTORY OF MODERN INDIA
4. P.E.ROBERTS, HISTORY OF INDIA

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के विविध सोपानों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई तीन

अंग्रेज और मैसूर राज्य

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हैदर अली का उत्थान
3.4 प्रथम मैसूर युद्ध
3.5 द्वितीय आंग्ल मैसूर युद्ध (1780-84)
3.6 तृतीय ऑग्ल मैसूर यूद्व (1970-92)
3.7 चौथा आंग्ल-मैसूर युद्व (1799)
3.8 सारांश
3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 पारिभाषिक शब्दावली
3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

18वीं शताब्दी का राजनैतिक परिवेश साहसी व्यक्तियों के लिए अनुकूल था। हैदर अली के रूप में इसी प्रकार का एक साहसी व्यक्ति मैसूर में उदित हुआ। पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों के संगम पर स्थित मैसूर राज्य का वास्तविक शासक चक्का कृष्ण राज्य था। उसकी निर्बलता का लाभ उठाकर नंद राज तथा देवराज ने मैसूर पर अपना कबजा कर लिया। इस अवधि के दौरान दक्कन में मराठों, निजाम, अंग्रेज तथा फ्रासीसियों के बीच अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने की होड़ मची हुई थी। मराठों ने मैसूर पर लगातार आक्रमण किए और वित्तीय दृष्टि से इसे दिवालिया और राजनैतिक दृष्टि से बहुत कमजोर बना दिया। दूसरी ओर निजामुलमुल्क मैसूर को मुगल प्रदेश मानता था और इस कारण मैसूर को अपनी प्रादेशिक विरासत मानता था। इस प्रकार मैसूर को अपनी प्रादेशिक विरासत मानता था। इस प्रकार मैसूर निजाम और मराठों के मध्य विवाद का स्रोत था। इसी बीच अंग्रेजों तथा फ्रासीसियों के बीच शुरू हुआ क्योंकि त्रिचुरापल्ली पर अधिकार करने के लिए नानराज (नन्द

राज) ने अंग्रेजों के साथ संधि कर ली थी, परन्तु बाद में नानराज ने अंग्रेजों को छोड़कर फ्रासीसियों के साथ समझौता कर लिया। मैसूर सेना के सेनापति हैदर अली को त्रिचुरापल्ली के सैन्य अभियानों के दौरान पर्याप्त ख्याति मिली। 1758 के बाद जब मराठे मैसूर पर आक्रमण कर रहे थे तब तक हैदर अली पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली हो गया था। उसने नानराज को पेंशन देकर पदमुक्त कर दिया तथा मैसूर का शासन अपने हाथों में ले लिया।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार से अवगत कराना है। इस औपनिवेशिक विस्तार के क्रम में दक्षिण में किस प्रकार अंग्रेज एवं हैदर अली के मध्य युद्ध की परिस्थितियां उभरीं तथा अंततः अंग्रेज कैसे विजयी हुए ? इन प्रश्नों के समाधान आप इस इकाई के अंतर्गत खोज पाएंगे।

3.3 हैदर अली का उत्थान

हैदर अली का जन्म 1722 ई0 में हुआ। उसका पिता मुहम्मद एक सैनिक अधिकारी था जो 1728 में हुए एक लड़ाई में मारा गया। कुछ वर्षों बाद वह मैसूर की सेना में शामिल हो गया। हैदर में साहसी व्यक्ति के गुण थे। वह बौद्धिक दृष्टि से जागरूक था तथा उसमें वह योग्यता थी कि वह अवसर का लाभ उठा सके। नानराज ने उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उसे 500 सिपाहियों की कमान्ड पर नियुक्त कर दिया था। मैसूर हैदराबाद राज्य के अधिन था। 1748 ई0 में नासिर जंग के सिंहासन ग्रहण करने के अवसर पर मैसूर की ओर से हैदर अली दरबार में उपस्थित था। नासिरजंग की हत्या के पश्चात हैदर अली बहुत अधिक धन लूटकर ले गया। बताया जाता है कि प्लासी के युद्ध के पश्चात अंग्रेजों को जो धन हाथ लगया उससे कहीं अधिक हैदर अली को हाथ लगया था। उस धन से हैदर अली ने अपनी सेना को बढ़ावा तथा अपनी सेना का प्रशिक्षण फ्रासीसियों से कराया। कर्नाटक के दूसरे युद्ध में नानराज ने मुहम्मद अली का साथ दिया। मुहम्मद अली ने इस सहायता के बदले त्रियनापल्ली (त्रिचरापल्ली) का क्षेत्र देने का वचन दिया। युद्ध के बाद मुहम्मद अली ने इस क्षेत्र को देने से इन्कार कर दिया। मैसूर को विवश होकर कर्नाटक पर आक्रमण करना पड़। अंगेज तथा तंजोर की सेनाएं मोहम्मद अली की सहायता के लिए जा रही थी। 14 अगस्त 1754 ई0 को हैदर अली ने इन सेनाओं पर पीछे से आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया। इस सफलता से प्रसन्न होकर नन्दराज ने हैदर अली को डंडीगुल के क्षेत्र का दीवान नियुक्त कर दिया। ज बवह डंडीगुल की दीवानी ग्रहण करने जा रहा था तो उस क्षेत्र के पोलीगारो ने नन्दराज के विरूद्ध विद्रोह कर दिया तथा लगान देने से इन्कार कर दिया। हैदर अली ने उनसे मित्रता की तथा लगान क्षमा कराने का वचन दिया। डंडीगुल पहुॅच

कर सैनिक तैयारी करके 3000 पोलीगारों पर आक्रमण कर दिया। हैदर अली ने उन्हें पराजित कर इन सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। पोलीगार हैदर अली से प्रभावित होकर उसकी सेना में भर्ती हो गए। 1758 ई0 के पश्चात मैसूर के राजा तथा मंत्री नानराज में आत्यधिक मतभेद हो गया। राजा की सेना तथा नानराज की सेना के मध्य युद्ध हुआ जिसमें राजा को पराजय का मुंह देखना पड़ा। इसके पश्चात नानराज तथा उसके भाई देवराज में भी मतभेद उत्पन्न हो गया। मैसूर को मराठों से भी अत्यन्त भय था। इन परिस्थितियों के कारण मैसूर की आर्थिक स्थिति लड़खड़ाने लगी। सेना के सिपाहियों का वेतन लम्बे समय से भुगतान नहीं किया जा सका था। सेना विद्रोह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजा तथा नानराज के बीच भी समझौता हो गया। वहीं देवराज तथा नानराज के बीच भी मेल हो गया। हैदर अली की कार्यकुशलता को देखते हुए मैसूर साम्राज्य के तमाम शासन का प्रबंध हैदर अली के हाथों में सौंप दिया गया। हैदर अली ने बड़ी कुशलता से मैसूर के शासन में सुधार लाकर सैनिकों के वेतन का भुगतान कर दिया। कुछ ही समय बाद राज्य की स्थिति पुनः बिगड़ने लगी। सेना के सिपाही हैदर अली के पास आएं , इस बदलती स्थिति का फायदा उठाकर हैदर अली ने नानराज को पेंशन पर रखकर राज्य का पूरा कार्यभार अपने हाथों में ले लिया। उसने राजा के पद को बनाए रखा तथा स्वयं पद ग्रहण नहीं किया, परन्तु राज्य की वास्तविक शक्ति उसी के हाथ में थी तथा राजा केवल प्रतिछाया मात्र था।

3.4 प्रथम मैसूर युद्ध

1760 तक हैदर अली ने अपनी शक्ति संगठित कर ली थी। जब स्वयं को मैसूर में पूर्ण रूप से स्थापित करने के लिए हैदर अली संघर्ष कर रहा था उस समय फ्रांसीसियों ने उसका साथ दिया। अतः जब यूरोप में चल रहे सप्तवर्षीय युद्ध के कारण दक्षिण में अंग्रेज तथा फ्रासीसियों के संबंध बिगड़ गए फ्रांसीसी अधिकारी लैली ने दक्षिण भारत में सहयोग की मांग की। हैदर अली ने भी मित्रता निभाई तथा 4000 घुड़सवार अंग्रेजों के विरूद्ध फ्रांसीसियों की मदद के लिए भेजा। इसके पूर्व की वह आंग्ल फ्रांसीसी युद्ध में अपना प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कर सके, मैसूर में उसके विरोधियों ने मराठों का समर्थन प्राप्त कर हैदर अली पर आक्रमण कर दिया। हैदर अली को वहॉं से भाग कर बैंगलोर जाना पड़ा। जब तक वह अपनी स्थिति फिर से मजबूत करता फ्रासीसियों की शक्ति दक्षिण भारत में अपने पतन की ओर बढ़ चुकी थी। इसके बावजूद भी हैदर अली ने फ्रासीसियों का प्रभाव अपने दरबार में बनाए रखा। हैदर अली तथा अंग्रेजों के बीच शत्रुता का प्रमुख कारण दक्षिण भारत की राजनीति थी। हैदर अली ने मुहम्मद अली के शत्रु महफूज खां को संरक्षण प्रदान किया। मुहम्मद अली का मुख्य झगड़ा कुछ क्षेत्रों को लेकर था, जैसे करूर, विरूपाक्षी आदि। यही हैदर अली ने चंदा साहब के बेटे को भी अपने यहॉं नौकरी दी थी जिसे अंग्रेज पसंद नहीं करते थे। दूसरी तरह अंग्रेजों ने भी वेरनौर में सैनिक केन्द्र बनया जो हैदर को पसंद नहीं था। इस प्रकार हम देखते है कि

अंग्रेजों तथा हैदर के बीच पहले से ही शत्रुता थी, बस प्रतिक्षा एक चिंगारी की थी जो युद्ध में बदल सकती थी।

पहले से ही तैयार पृष्ठभूमि में युद्ध की आशंका तब और बढ़ा दी जब यह अफवाह फैली कि हैदर निजाम अली के साथ मिलकर कर्नाटक में प्रवेश करने वाला है। इससे अंग्रेज घबरा गए तथा निजाम अली को अपनी तरफ कर लिया। 1766 में अंग्रेजों तक निजाम के बीच एक संधि हो गई। माधव राव पहले से ही मैसूर के क्षेत्र में लूटपाट करने में लगा हुआ था। अतः निजाम, मराठों तथा अंग्रेजों के मध्य एक संधि हुई। फलस्वरूप इस त्रिगुट ने हैदर अली पर आक्रमण कर दिया। हैदर अली इससे निराश नहीं हुआ। उसने स्थिति का बड़ी बहादुरी से सामना किया। वह अच्छी तरह से यह जानता था कि ये तीनों शक्तियॅा अपने हितों के कारण एक दूसरे के साथ हुई हैं अतः उन्हें अलग भी किया जा सकता है। अब हैदर अली ने कूटनीतिक चाल चलनी शुरू कर दी। उसने निजाम को भूमि की लालच देकर तथा मराठों को धन देकर अपने में मिला लिया। इस प्रकार राजनीति एक बार फिर से हैदर अली की ओर मुड़ गई। हैदर अली और निजाम की सेनाओं ने कर्नाटक में प्रवेश किया। दोनों सेनाओं के बीच कई झगड़े हुई लेकिन इसका कोई निर्णय नहीं निकल पाया। इसी बीच निजाम ने हैदर अली का साथ छोड़ दिया परन्तु कुछ ही समय बाद युद्ध की नियती हैदर के पक्ष में मुड़ने लगी। उसकी एक के बाद एक सफलताओं से घबराकर अंग्रेजों ने उससे संधि कर ली। इस संधि के मुख्य बिन्दु थे :-

1. दोनों पक्षों ने एक दूसरे के विजित प्रदेशों को लौटा दिया।

2. कोलार का भंडार हैदर को प्राप्त हुआ।

3. तीसरी संधि आने वाले समय के लिए सबसे महत्वपूर्ण साबित हुई। क्योंकि यही संधि दूसरे आंग्ल मैसूर युद्ध का एक कारण बनी। इस संधि की शर्तो के अनुसार, यदि कोई भी बाहरी शक्ति इन दोनों में से किसी के प्रदेश पर आक्रमण करती है तो इन्हें एक दूसरे का साथ देना होगा। मद्रास की संधि ने न केवल हैदर अली का मनोबल बढ़ाया बल्कि मैसूर को दक्षिण भारतीय राजनीति में सर्वश्रेष्ठ स्थान भी दिलाया। जीत से उत्साहित हैदर अली ने इस अवसर पर एक चित्र बनाने का आदेश दिया, जिसमें अंग्रेज गवर्नर तथा उसके कौंसिल के सदस्य उसके सामने झुक कर बैठे हैं। स्मिथ को संधि पत्र हाथ में लिए तथा तलवार को दो टुकड़ों में तोड़ता हुआ दिखाया गया था। अतः प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध ने यह साफ कर दिया था कि न केवल वीरता बल्कि कुटनीति के क्षेत्र में भी हैदर अली अंग्रेजों से काफी आगे था।

3.5 द्वितीय आंग्ल मैसूर युद्ध (1780-84)

1780 में हैदर अली को अंग्रेजों से दूसरा युद्ध लड़ना पड़ा । वस्तुत हैदर अली की हुई शक्ति तथा दक्षिण भारतीय राजनीति में उसके बढते हुए प्रभाव से अंग्रेज भयभीत हो चुके थें। अंगेजों के हैदर अली तथा फ्रासीसियों के बीच की मित्रता भी पंसद नहीं थी। वह मैसूर राज्य को मराठों की सहायता से ब्रफर स्टेट में बदलना चाहते थें। मद्रास की संन्धि में यह स्पष्ट रूप् से लिखा हुआ था कि यदि दोनों में से किसी के क्षेत्र पर भी यदि कोई भी बाहरी शक्ति आक्रमण करती है तो उन्हें एक दूसरे का साथ देना होगा। परन्तु जब मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया तो संधि की शर्त के अनुसार अंग्रेजों ने हैदर का साथ नहीं दिया। अंग्रेजों की यह मंशा थी कि मैसूर किसी भी तरह से सैनिक दृष्टि से कमजोर हो जाये 1770 में हैदर ने मुब्बई के साथ एक संन्धि की थी जिसके अंतर्गत ब्रिटिशों ने ओजोर में एक फैक्ट्री स्थापित की तथा मालावार तट पर चन्दन की लकडी़ और कालीमिर्च खरीदने को अधिकार प्राप्त किया । इसके बदले में वे आवश्यकता पड़ने पर हैदर को युद्ध सामग्री देने को तैयार हुए। मराठों के संधर्ष के समय हैदर ने बार-बार युद्ध सामाग्री की मांग की पर बम्बई के अधिकारी इस मांग की पूर्ति में असफल रहे जिसके कारण हैदर ने फ्रासीसियों से सहायता मांगी।

निजाम के भाई सलाबत जंग को गटूर की जागीर प्राप्त थी। चूँकि सलाबत जंग का अंग्रेजों से साथ धनिष्ट सम्बन्ध था इसलिए अंग्रेजों ने गुटूंर पर अधिकार कर लिया। सामरिक दृष्टि के गुटुंर बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि इसका रास्ता हैदर तथा निजाम के राज्य से होकर गुजरता था। अंग्रेजों ने इन रास्तों से सेना भेजनें से पूर्ण हैदर तथा निजाम से स्वीकृति नहीं ली थी। अतः हैदर तथा निजाम दोनों ने ही इस कार्यवाही की कडी़ आलोचना की तथा इसका विरोध किया। इससे न केवल निजाम क्रोधित हुआ बल्कि हैदर तथा अंगेजों के बीच भी कुटता बढी़। यही नहीं अंग्रेजों ने 1768 में निजाम से साथ की गई एक संन्धि के अनुसार उत्तरी सरकार के बढ़ते 7 लाख रूपया देने से भी इनकार कर दिया। इन सभी परिस्थितियों ने अंग्रेजों तथा निजाम को एक दूसरे से दूर कर दिया। अतः एक ओर जब अंगेज मराठों के साथ युद्ध मे लगे हुए थें वही दूसरी ओर हैदर तथा निजाम भी अंग्रेजों के विरूद्ध कदम उठाने की सोचने लगे। मराठा अंग्रेजों के विरूद्ध हैदर अली का समर्थन प्राप्त करना चाहते थें। इस पृष्ठभूमि में हैदर ने कूटनीतिक चाल चली तथा मराठों एवं निजाम को मिलाकर अंग्रेजों के विरूद्ध एक संघ का निर्माण किया। अब यह निश्चय किया गया कि मराठे मध्य भारत से होते हुए अंग्रेजों पर आक्रमण करेंगे। निजाम उत्तरी सरकार पर तथा हैदर मद्रास तथा उसके और प्रान्त के प्रदेशों पर आक्रमण करेगी। जब अंग्रेजों ने देखा कि उनके विरूद्ध इतना शक्तिशाली मोर्चे का निर्माण हुआ है तो उन्होने घबराकर निजाम के साथ समझोता कर लिया उन्होंने निजाम को गुटूंर लौटा दिया । इतना ही नहीं निजाम को कुछ भेंट भी भेजा गया, जिसके कारण निजाम ने स्वंय को हैदर तथा मराठों के इस मोर्चे से अलग कर लिया।

1780 में द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध की शुरूआत उस समय हुई जब हैदर अली ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया क्योंकि कर्नाटक का नवाब अंग्रेजों का मित्र था। कर्नल बैली के नेतृत्व में एक फौज अंग्रेजों ने पहले से ही कर्नाटक की रक्षा के लिए वहॉं छोड़ रखी थी। हैदर ने बैली के नेतृत्व वाली अंग्रेजी सेना को बुरी तरह पराजित किया तथा कर्नल बैली बन्दी बना लिया गया। आगे बढ़ते हुए हैदर अली ने अर्काट पर अधिकार कर लिया जो उस समय कर्नाटक की राजधारी थी। हैदर की इन विजयों ने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को उनके न्यूनतम बिन्दु तक पहुंचा दिया। इस संदर्भ में अल्फ्रेड लायल कहते हैं, ''भारत में अंग्रेजों का भाग्य सबसे नीचे गिर चुका था।'' अब हैदर अली की इन विजायों पर रोक लगाने के लिए आयरकूट को एक विशाल सेना के साथ मद्रास भेजा गया। आयकूट ने अपनी कूटनीतिक चाल द्वारा मराठों को हैदर से अलग कर दिया। अब हैदर अली बिलकुल अकेला पड़ गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि पोर्टोनोवा ने हैदर अली को आयरकूट के हॉंथों पराजय का मुंह देखना पड़ा। इसी समय फ्रांसीसियों ने हैदर अली की सहायता के लिए 2000 फ्रासीसी सैनिक मद्रास भेज दिए। जून 1782 में हैदर तथा फ्रांसीसी सेना का मुकाबला आयरकूट के नेतृत्व वाली अंग्रेजी सेना से हुआ। परन्तु यह युद्ध अनिर्णायक रहा। युद्ध के दौरान ही 1782 ई0 में हैदर अली की मृत्यु हो गई। अब मैसूर को बचाने का पूरा दायित्व हैदर के पुत्र तथा उत्तराधिकारी टीपू पर आ गया था। टीपू ने यह युद्ध जारी रखा। परन्तु यूरोप में इंग्लैण्ड तथा फ्रांस के बीच 1784 से हुए शांति समझौते के कारण टीपू को फ्रांस से सहायता मिलनी बन्द हो गई। इसी समय वारेन हेस्टिंग ने मद्रास प्रेसीडेन्सी की सहायता की। अब दोनों पक्षों को यह लगने लगा कि युद्ध को जारी रखना उनके परस्पर हितों में नहीं है अतः दोनों पक्षों ने समझौता कर लिया। इस संधि को मंगलौर की संधि कहा जाता है। इस समझौते के अनुसार दो पक्षों ने एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश को वापस कर दिया ! अग्रेजो ने टीपू से मित्रतापूर्ण संबंध रखने तक कठिनाई के समय उसकी सहायता करने का वचन दिया।

3.6 तृतीय ऑग्ल मैसूर यूद्व (1970-92)

मंगलौर की संधि अंग्रजो के लिए बहुत अपमानजनक थी।यह संधि टीपू की कूटनीतिक सफलता थी। इस संधि ने उसकी शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बढ़ा दिया था। अतः तृतीय कर्नाटक युद्व के बीज इस संधि में ही छुपे इस संधि ने टीपू को जो प्रतिष्ठा प्रदान की उसकी वजट से वो अधिक आक्रमक हो गया। उसने फ्रांसीसियों की मदद से निजाम को दबाने मराठों की शक्ति को नष्ट करने तथा अंग्रेजो को दक्षिण भारत से निकालने की पूर्ति के लिए उसने जो अभियान चलाया उसमे उसकी पहली जीत नारमुण्ड की हुई।नरमुण्ड जीतने के पश्चात उसने कित्तूर भी जीत लिया 1786 में उसने कुस्तुनतुनिया के लिए एक दल भेजा जिसका उद्ददेश्य तुर्की मे फैक्ट्री स्थापित करना था तथा मैसूर को गद्दी पर अपने पद की स्वीकृति खलीफा से करवानी थी। इसके अतिरिक्त इस दल के माध्यम से

अंग्रेजो के विरूद्व तुर्की के सुल्तान की सहायता प्राप्त करने की भी योजना थी। दिसम्बर 1789 को टीपू ने ट्रावन्कोर पर आक्रमण कर दिया कार्नवालिस का विचार था कि टीपू से युद्व अनिवार्य है। कार्नवालिस टीपू की बढ़ती हुई शक्ति तथा फ्रांसीसियों से उसकी मित्रता से भयभीत था। अतः कार्नवालिस भी युद्व का बहाना तलाश कर रहा था। टीपू ने जब टबनकोर पर आक्रमण किया तब अंग्रेजो ने तुरंत अपनी सेना ट्रवनकोर की सहायता के लिए भेज दी। ट्रवनकोर का राजा अंग्रेजो का मित्र था।कार्नवालिस ने मैसुर पर आक्रमण कर दिया । 1790 तक अंग्रेज पूरे मालावार क्षेत्र पर अधिकार कर चुके थे। युद्व के शुरूआती दौर में अंग्रेजो मैसूर पर अधिकार नही कर सके थे। अतः इस अभियान का नेतृत्व कार्नवालिस ने स्वंय किया। कार्नवालिस ने सबसे पहले बंगलौर का किला जिता तथा बाद में उसकी मरम्मत कराकर सेरिंगपट्म को ओर बढ़ा जो मैसूर राज्य की राजधानी थी। निजाम के दस हजार सैनिको ने भी कार्नवालिस की मदद की। परन्तु अंग्रेजो को सफलता प्राप्त नही हुई तथा वाध्य होकर उन्हें वापस बंगलौर जाना पड़ा।

दूसरी ओर अब मराठे भी अंग्रेजो से जा मिले। इसका मुख्य उददेश्य तुंगभद्रा तथा कृष्णा नही के बीच के क्षेत्र का वापस लेना था। मराठों के विरूद्व एक सैनिक अभियान के दौरान टीपू ने उफनती हुई तुंगभद्रा को टोकरीनुमा नावों और लकड़ी के लठ्ठो से निर्मित बेड़ो में बैठकर पार करके विस्मयकारी कौशल का परिचय दिया और निजाम- मराठो सैन्य दल को पराजित किया। कार्नवालिस, सिरंगपट्म के अपने विफल आक्रमण के बाद जब बंगलौर पहुंचा तब टीपू का एक दूत समझौते के लिए मिला। परन्तु कुछ कारणों से वार्ता नही हो पाई। कार्नवालिस ने युद्व को आग्र बढ़ाते हुए मराठों को उत्तर पश्चिम के क्षेत्रों अधिकार करने के लिए भेजा। निजाम की सेना उत्तर - पूर्व की ओर बढ़ी। अब अंग्रेजो ने कोयम्बटूर पर अपना अधिकार कर लिया। युद्व की नियती अपने विपरीत जाते हुए देख टीपू ने फिर से समझौते की पेशकश की। इस संधि को संरिंगपट्म की संधि कहा गया।

सेरिंगपट्म की संधि की प्रमुख शर्ते निम्न थी। टीपू को लगभग आधा राज्य त्याग देना पड़ा जिसे ब्रिटिश निजाम तथा मराठों के बीच बॉट दिया गया। हैदर के काल से चले आ रहे युद्व बन्दियों को उसे छोड़ना पडा। टीपू को युद्व हर्जाने के रूप मे 30 लाख रूपया देना पड़ा। यही नही उसे बन्धक के रूप् में अपने दो पुत्रों मुइनुद्वीन तथा अब्दुल खालिक को अंग्रेजो को सौंपना पड़ा। एक पक्ष ने कार्नवालिस की इस बात पर आलोचना की, कि टीपू को असने तब जीवन दान दिया जब उसका दुर्भाग्य अपनी पराकाष्ठा पर था। लेकिन कार्नवालिस ने अपने इस कदम को सही ठहराया और उसने कहा कि टीपू की समस्त शक्ति को समाप्त कर दिया गया है। उसने बताया कि यह कम्पनी की नीति भी नही थी कि सुरखा की नीति के बाहर राज्य छीना जाए। इसके अलावा टीपू को पद से हटाने तथा बंदी हिन्दू राजा को पुनः पद प्रदान करने से कठिनाईयॉ बढ़ती क्योंकि हिन्दू राजा बगैर अंग्रेजो की सहायता के शासन नही कर सकता था। बात जो भी रही हो यह साफ

है कि संरिंगपट्टम की संधि ने मैसूर को एक शक्ति के रूप् मे हमेशा के लिए समाप्त कर दिया। वैसे टीपू सुल्तान अब भी अपनी असफलता मानने को तैयार नही था। उसने जनता से अधिक से अधिक धन बटोरकर संधि की रकम अदा करने की कोशिश की। लेकिन यह चीज स्पष्ट थी कि अब वही इतना अधिक शक्तिशाली नही रह गया था कि मराठो, निजाम या अंग्रेजो की नींद खराब कर सके।

3.7 चौथा आंग्ल-मैसूर युद्व (1799)

इस अपमान जनक संधि ने भी टीपू का मनोबल पूरी तरह से नही तोड़ा। अब यह अपनी शक्ति फिर से संगठित करने मे लग गया दुर्भाग्य के बोझ से डूबने की जगह उसने युद्व की गति से भोगी खति को समाप्त करने की कोशिश की। उसने अपनी राजधानी की किलेबन्दी करने की कोशिश की तथा उसे और अधिक शक्तिशाली बनाया। घुडसवारो की शक्ति बढ़ाई,पैदल सेना की संख्या मे बढोत्तरी कर उन्हे अनुशासनबद्व किया। राज्य की आर्थिक स्थिति में सुधार लोने के लिए उसने कृषि क्षेत्र में सुधार करने की कोशिश की। 1793 में कार्नवालिस वापस लौट गया तथा उसके स्थान पर जॉनशोर गवर्नर जनरल बन कर आया। कार्नवालिस जैसे गुणों का जॉन शोर में अभाव था। टीपू ने इसका पूरा लाभ उठाया। 1796 में जब मैसूर के राजा चामराज की मृत्यु हुई तो अीपू ने उसके अवयस्क पुत्र से नाममात्र की भी गद्दी छीन ली। 1796 में टीपू ने अपने दूत के माध्यम से जमानशाह से संपर्क किया ताकि अंग्रेजो तथा मराठा शक्ति को समाप्त किया जा सकें।युरोप मे जब अंग्रेजो तथा फ्रांसिसियो से सहायता की मांग की। टीपू ने फ्रांसिसी क्रांति से परभाषित होकर संरिगपट्टममें स्वतंत्रता का एक पौधा लगाया। 1798 में जॉनशोर के स्थान पर वेलेजली भारत आया। उसे यह डर था कि फ्रांसिसी टीपू के साथ मिलकर भारत में अंग्रेजी शक्ति समाप्त करने मे सफल न हो जाएं । ऐसी किसी भी स्थिति से निपटने के लिए उसने कूटनीतिक चाल चलनी शुरू कर दी। इस खतरे से निपटने के लिए वैलेजली ने जिस हथियार का इस्तेमाल किया उसे सहायक संधि कहते है। उसने निजाम को सहायक संधि स्वीकार कर लेने के लिए विवस किया।

हैदराबाद तथा अवध के पश्चात वेलेजली के सामने दो और राज्यों को अधीन बनाने की समस्या थी। एक मैसूर तथा दूसरा मराठों का राज्य/वैलेजली ने 1799 में टीपू के सामने सहायक संधि का प्रस्ताव रखा जिसे टीपू ने अस्वीकार कर दिया। वेलेजली ने टीपू पर यह आरोप लगाया कि वह फ्रांसिसीयों अरब तथा तर्क शासक के साथ मिलकर अंग्रेजो के विरूद्व षडयंत्र कर रहा है। टीपू ने अपने उत्तर मे यह साफ कर दिया कि उसकी ऐसी कोई मंशा नही है। वह अंग्रजों के खिलाफ कोई षडयंत्र कर रहा है। वैलेजली ने उसके उत्तर को स्वीकार नही किया क्योंकि अब उसने टीपू को पूरी तरह से समाप्त करने की ठान ली थी। इसका परिणाम यह निकला कि वेलेजलीने अपने भाई

आर्थ वेजली के नेतृत्व मे अंग्रजी सेना को टीपू के राज्य पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। बम्बई की सेनाओ ने मैसूर पर पश्चिम की ओर से आक्रमण किया। मलावस्सी में टीपू की पराजय हुई। अब टीपू ने सिरंगापट्टम के दूर्ग की घेरबंदी कर टीपू के सामने एक शर्त रखी इस शर्त मे राज्य का आधा भाग तथा 20 लाख पौड की मांग थी। टीपू इस पर सहमत नही हुआ तथा अंग्रेजो की शर्त मानने से इन्कार कर दिया। अब अंग्रेजो ने टीपू सुलतान के मंत्री पुरनैया पण्डित के साथ मिलकर टीपू के विरूद्व षडयंत्र रचा। यही नही टीपू का सेनापति कमरूद्दीन खॉ तथा दीवान मीर सादिक भी अंग्रेजो से जा मिले इस षडयंत्र के परिणामस्वरूप् अंग्रेज दुर्ग मे प्रवेश करने में सफल हुए। टीपू ने बहुत बहादुरी से युद्व किया। परन्तु विश्वासघात के कारण लड़ते लड़ते वह शहीद हो गया। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सबसे बडा कॉटा हमेशा के लिए निकल गया।

इस प्रकार वेलेजली को आशा से कहीं अधिक सफलता मिली। अब उसके पास पूरा मैसूर राज्य आ चुका था। वैलेजली ने मैसूर के उपजाऊ क्षेत्रो जैसी काकीनाडा का पश्चिम क्षेत्र कोयमबटूर का दक्षिणी क्षेत्र, पूर्वी जिला तथा सिरंगपट्टम का दूर्ग अपने शासन में मिला लिया। मैसूर के कुछ क्षेत्र निजाम को उसकी सहायता के बदले दे दिए गए। शेष छोटा शिथिल राज्य मैसूर के वंशानुगत वाडियार राजा को दे दिया गया। इंग्लेण्ड में इस विजय पर अत्यंत खुसी प्रकट की गई।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित रिक्त स्थान में ऑग्ल - मैसूर युद्धों के संबंध में अपनी टिप्पणी कीजिए -

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

....
....
....
....
....
....
....
....

3.8 सारांश

हैदर अली और टीपू सुल्तान उस युग के दो महान शासक थें ।दोनो ही अत्याधिक सहिष्णु और धर्मनिरपेक्ष थें । हैदर ने सार्वजनिक रूप से कभी भी शाही उपाधि धारण नही की । मैसूर राजवंश के प्रति पेशवा का । लेकिन टीपू ने राजा को सिंहासन से हटा दिया और उसने खुलेआम सुल्तान की उपाधि धारण की । हैदर और टीपू दोनों ने अपने सिक्कों पर हिन्दू देवी-देवताओ की आकृति अंकित की । टीपू ने हिन्दू संवत का प्रयोग किया ।वह श्रृगेंरी के जगत गुरू शंकराचार्य का बहुत सम्मान करता था । उसने उन्हें मन्दिरों के पुननिर्माण के लिए धन भी दिए । टीपू ऐसा पहला भारतीय शासक था जिसने अपने प्रशासन को पश्चिमी प्रशासनिक व्यवस्था के आधार पर गठित किया । उसकी यह मान्यता थी कि उसकी प्रजा ईश्वर के द्वारा प्रदत्त एक विशिष्ठ न्यास है ।उसने आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार को भी प्रोत्साहन दिया । प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यक्ति को उसकी योग्यता के आधार पर ही नियुक्त किया जाता था । कहा जाता है कि टीपू सुल्तान को फ्रांस की क्रांति के प्रति सहानुभूति थी । उसने अपनी राजधानी मे स्वतंत्रता का वृक्ष लगाया, जैकोबिन क्लब की स्थापना की और स्वंय टीपू सुल्तान अविहित करने के स्थान पर क्रांति के समता के सिद्वांत के आधार पर सिटीजन टीपू अविहित करने लगा । हैदर अली और टीपू सुल्तान दोनों ही सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और उन्होंने अपनी प्रजा को आर्थिक समृद्वि एवं उनके सदभाव को अर्जित करने का प्रयास किया । प्रो0मुहिब्बुल हसन कहते है, टीपू के युग में मैसूर आर्थिक रूप से पूरी तरह सम्पन्न था । कृर्षि के साथ-साथ वहॉ औद्योगिक विकास भी हुआ। सबसे प्रमुख बात यह थी कि वह भारत के शासकों को एक भारतीय होने के नाते संयुक्त करके ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करना चाहता था ।

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

नोट: इकाई से आत्मसात किये तथ्यों से करें ।

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **C.A.BAYLY, *INDIAN SOCIETY AND THE MAKING OF BRITISH EMPIRE***

2. MARK WILKS, *HISTORICAL SKETCHES OF SOUTH OF INDIA, VOL.II*

3. E.H.NOLAN, *THE BRITISH EMPIRE IN INDIA*

4. K.K.AZIZ, *BRITISH IN INDIA: A STUDY IN IMPERIALISM*

5. S.C.RAYCHOUDHARY, *HISTORY OF MODERN INDIA*

6. P.E.ROBERTS, *HISTORY OF INDIA*

7. ISHWARI PRASAD, *HISTORY OF MODERN INDIA*

8. TARACHAND, *HISTORY OF FREEDOM MOVEMENT IN INDIA, VOL.I*

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. IRFAN HABIB, *STATE AND DIPLOMACY: UNDE TIPU SULTAN*

2. HENRY DODWELL, *THE CAMBRIDGE HISTORY OF MODERN INDIA, VOL.V*

3. SEKHAR BANDYOPADHYAY, *FROM PLASSEY TO PARTITION: A HISTORY OF MODERN INDIA*

4. S.L.NAGAURI, *AADHOONIK BHARAT KA VRAHT ITIHAAS*

3.12 पारिभाषिक शब्दावली

साम्राज्यवाद- अन्य देशों पर सत्ता स्थापित करने की सोच

वाणिज्यवादी एकाधिकार- व्यापार के साधनों पर अपना पूर्ण नियंत्रण होना

व्यापारिक प्रभुसत्ता- व्यापार में अधिकार स्थापित करना

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैसूर की राजनीति की चर्चा करते हुए अंग्रेजों के वहां हस्तक्षेप को समझाइये।

इकाई चार

अंग्रेज और मराठे

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अंग्रेज एवं मराठे
4.3.1 अठारहवीं सदी में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी
4.3.2 अठारहवीं सदी में मराठा शक्ति
4.4 प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध
4.4.1 प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध के कारण
4.4.2 युद्ध 1775 - 1782 ई0
4.4.3 परिणाम
4.5 प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध के पश्चात मराठे एवं अंग्रेज
4.6 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध
4.6.1 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण
4.6.2 युद्ध प्रारंभ
4.6.3 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध के परिणाम
4.7 तृतीय अथवा अंतिम आंग्ल - मराठा युद्ध
4.7.1 तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण
4.7.2 युद्ध का आरंभ
4.7.3 तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध के परिणाम
4.8 मराठों की असफलता के कारण
4.9 सारांश
4.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.13 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह एक ऐतिहासिक संयोग है कि सतरहवीं सदी में जिस समय भारत में मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था, ठीक उसी समय ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा मराठे क्रमशः आर्थिक एवं राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए प्रयासरत थे। शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति दक्षिण में स्थापित हुई। वहीं अन्य यूरोपीय कंपनियों की प्रतिस्पर्धा में अंग्रेज अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने लगे। अठारहवीं सदी में मुगल साम्राज्य के विखण्डन के साथ भारतीय परिदृश्य परिवर्तित हुआ और परिवर्तन का असर यूरोपीय तथा भारतीय शक्तियों पर पड़ने लगा। अंग्रेज सर्वोच्च यूरोपीय शक्ति के रूप में स्थापित हुए जबकि मुगलों के प्रबल उत्तराधिकारी के रूप में मराठे इस परिस्थिति में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया का स्वरूप आर्थिक से राजनीतिक हो गया। अतः दोनो में संघर्ष अपरिहार्य था। मराठे शक्तिशाली थे। परन्तु अंग्रेज कूटनीति में काफी आगे। यही कारण है कि मराठा क्षेत्र से दूर बंगाल में उन्होने अपना केन्द्र बिन्दु बनाया। 1761 ई0 मे पानीपत के तृतीय यृद्ध में मराठों की पराजय ने यह प्रमाणित कर दिया कि मुगलों के उत्तराधिकारी मराठे नहीं हो सकते। इस बीच अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों का सफाया तथा बंगाल में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। बंगाल के बाद दक्षिण में अपनी शक्ति के विस्तार में अंग्रेजों और मराठों की बीच तीन संघर्ष युद्ध हुए और अंततः अंग्रेजों की सर्वोच्चता स्थापित हुआ।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार से अवगत कराना है। इस औपनिवेशिक विस्तार के क्रम में दक्षिण में किस प्रकार अंग्रेज एवं मराठों के मध्य युद्ध की परिस्थितियां उभरीं तथा अंततः अंग्रेज कैसे विजयी हुए ? इन प्रश्नों के समाधान आप इस इकाई के अंतर्गत खोज पाएंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रांकित के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

अठारहवीं सदी में भारत में अंग्रेज तथा मराठों की स्थिति।

अंग्रेज एवं मराठों के मध्य शक्ति परीक्षण।

मराठों की पराजय एवं अंग्रेजों की जीत।

मराठों की असफलता के कारण।

ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना।

वेलेजली की सहायक संधि।

4.3 अंग्रेज एवं मराठे

भारत में व्यापार के उद्देश्य से आए यूरोपीयन के मध्य प्रतिस्पर्धा आरंभ से थी, परन्तु भारत में मुगल साम्राज्य के शक्तिशाली होने के कारण यह प्रतिस्पर्धा उग्र नहीं हो सकी। अठारहवीं सदी का आरंभ भारतीय इतिहास के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण है। एक तरफ पतनशील मुगल साम्राज्य ने

महत्वाकांक्षी भारतीय क्षेत्रीय शक्तियों को उभरने का अवसर प्रदान किया। वहीं दूसरी तरफ यूरोपीय कम्पनियां भारतीय शक्तियों के नियंत्रण से मुक्त होने का प्रयत्न करने लगी। इसी क्रम में दक्कन से उभरे मराठा राज्य ने साम्राज्य का सपना देखना प्रारंभ किया। जबकि अंग्रेजों ने यूरोपीय शक्तियों को परास्त कर भारतीय शक्तियों पर नियंत्रण प्रारंभ किया। बंगाल में पलासी एवं बक्सर के युद्ध के पश्चात अपनी स्थिति मजबूत कर अंग्रेजों ने दक्कन पर अपना घ्यान केन्द्रित किया और मराठों से संघर्ष प्रारंभ हुआ।

4.3.1 अठारहवीं सदी में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी

भारत में व्यापार के उद्देश्य से अंग्रेजों ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की थी। धीरे - धीरे इस कम्पनी ने अन्य यूरोपीय कम्पनियों को पीछे छोड़ दिया। पूर्तगालियों को डचों ने परास्त किया और अम्बोयना हत्याकाण्ड के पश्चात डचों एवं अंग्रेजों के मध्य हुए समझौते के परिणामस्वरूप भारत में अंग्रेजों को बर्चस्व स्थापित करने का अवसर मिला जिसका सदुपयोग अंग्रेजों ने किया। भारत में तीव्र गति से उभरे फ्रांसीसियों कंपनी से तीन कर्नाटक युद्ध 1740 से 1763 ई0 के बीच हुए और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समक्ष फ्रांसीसियों ने सदा के लिए हथियार डाल दिए।

इसी बीच भारत की राजनीतिक शून्यता एवं अराजकता का लाभ उठाने की सोची समझी कोशिश ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने की। भारत में अपनी शक्ति विस्तार के लिए अंग्रेजों ने बंगाल को अपना मुख्यालय बनाना शुरू किया क्योंकि यह स्थान भारत पर हो रहे अफगान आक्रमण से सुरक्षित होने के साथ भारत में उभर रहे मराठा शक्ति के केन्द्र से भी दूर था।

1757 ई0 की पलासी के लड़ाई तथा 1764 ई0 के बक्सर युद्ध के पश्चात बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। तत्पश्चात् उन्होने अपने सबसे प्रमुख शत्रु राज्य मैसूर पर ध्यान केन्द्रित किया और मराठों से मित्रता स्थापित की। अब अंग्रेज उस अवसर की तलाश में थे। जब मराठों पर आक्रमण करने या युद्ध थोपने का मौका मिले। इस प्रकार अंग्रेज-मराठा संबंध मित्रता से शत्रुता की कहानी बयाँ करता है।

4.3.2 अठारहवीं सदी में मराठा शक्ति

मराठा शक्ति का उद्भव दक्कन में शिवाजी के नेतृत्व में हुआ। सत्तरहवीं सदी के मध्य में मराठा शक्ति ने अपनी पहचान मराठवाड़ा में स्थापित कर ली। मराठवाड़ा पश्चिमी समुद्रतट से लगा हुआ सहियाद्री से नागपुर तथा सतपुड़ा पहाड़ियों से लेकर गोदावरी तक त्रिभुजाकार क्षेत्र में फैला हुआ था। मुगल सम्राट शाहजहां तथा औरंगजेब के प्रयास के विपरीत शिवाजी ने 1674 ई0 में मराठा राज्य की स्थापना करते हुए स्वयं को छत्रपति घोषित कर दिया तथा 1680 ई0 में मृत्यु से पूर्व एक प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित कर दी।

शिवाजी के पुत्र एवं उत्तराधिकारी शांभाजी में पिता की नेतृत्व क्षमता नहीं थी। औरंगजेब ने 1689 ई0 उसे परास्त कर उसकी हत्या कर दी। उसके पुत्र शाहू को बन्दी बना लिया गया। शांभाजी के सौतेले भाई राजाराम ने मराठा नेतृत्व संभाला परन्तु 1700 ई0 में उसकी मृत्यु होने के साथ ही मराठा राज्य पर खतरे के बादल मंडराने लगे। राजाराम की विधवा ताराबाई ने अपने नाबालिग पुत्र शिवाजी द्वितीय को छत्रपति घोषित करते हुए नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। 1707 ई0 औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात बहादुर शाह ने शाहू को छत्रपति के रूप में मान्यता देते हुए बंदी से मुक्त कर दिया। शाहू ने अन्य मराठा सरदारों की सहायता से 1707 ई0 मे रवेड़ के युद्ध में ताराबाई को परास्त कर सतारा में स्वयं को स्थापित करने का प्रयास किया। सतारा अब मराठा मुख्यालय के रूप में विकसित होने लगा। ऐसी परिस्थिति में शाहू को अपनी जीत स्थायी करने के लिए दूरदर्शी नेतृत्व की आवश्यकता थी। उसने कोंकण क्षेत्र के ब्राह्मण बालाजी विश्वनाथ को सेनाकर्ते की उपाधि प्रदान करते हुए अपना पेशवा नियुक्त किया। 1713 ई0 में बाला जी विश्वनाथ ने ताराबाई के समर्थकों को अंतिम रूप से परास्त करते हुए शाहू की सत्ता स्थापित की। परन्तु अब मराठा शक्ति धीरे - धीरे पेशवा के हाथ में सिमटने लगी। बाला जी ने उत्तर भारत की राजनीति में दखल देना प्रारंभ किया। इस प्रकार मराठा शक्ति अखिल भारतीय शक्ति के रूप में उभरने लगी।

बालाजी की मृत्यु (1720 ई0) के पश्चात उसका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा बना। इस प्रकार पेशवा पद वंशानुगत हो गया। बाजीराव प्रथम (1720 - 1740 ई0) में हिन्दु पाद पादशाही के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा अपने अल्पकाल में ही मराठा शक्ति को क्षेत्रीय से अखिल भारतीय बना दिया। उसने कोल्हापुर स्थित शाहू के प्रतिद्वन्दी को सदा के लिए दबा दिया। जागीर प्रणाली को पुर्नजीवित किया जिसके परिणामस्वरूप नागपुर में भोसलें, बड़ौदा में गायकवाड, ग्वालियर में सिंधिया तथा इन्दौर में होल्कर घराने स्थापित हुए। मराठा साम्राज्य इस समय सिंध के अटौक से उड़ीसा के कटक तक फैला था।

बाजीराव की मृत्यु के पश्चात बालाजी बाजीराव (1740 - 1761 ई0) पेशवा बना। उसने उत्तर भारत में हस्तक्षेप एवं प्रसार की नीति जारी रखी। उसने गुजरात, मालवा, बुंदेलखण्ड तथा राजपूताना पर अपनी पकड़ और मजबूत की। शाहू की मृत्यु (1749ई0) के पश्चात उसने पूना को अपना मुख्यालय बनाया। 1751 ई0 में बंगाल से उड़ीसा प्राप्त किया तथा उसने 1757 ई0 में सिंधखेड़ तथा 1760 ई0 में उदगीर में निजाम को पराजित किया तथा मैसूर के वास्तविक शासक हैदर अली को कर देने के लिए बाध्य किया। उसने सफलतापूर्वक मुगल दरबार में हस्तक्षेप करते हुए इमाद-उल-मुल्क को वजीर नियुक्त कराया तथा पंजाब से चौथ एवं सरदेशमुखी का अधिकार प्राप्त किया। मराठों की बढ़ती ताकत तथा लूटपाट की नीति के कारण भारतीय शक्तियां उनसे ईर्ष्या करने लगीं।

इसी समय उत्तर भारत पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण हो रहे थे। पंजाब के कारण अब्दाली तथा मराठों में तनाव बढ़ा और परिणाम हुआ पानीपत की तीसरी लड़ाई 1761 ई0। इस युद्ध में मराठों की बुरी हार हुई तथा पेशवा पद का नामित उत्तराधिकारी एवं बालाजी बाजीराव का पुत्र

विश्वास राव मारा गया। इस सदमे के कारण बालाजी बाजीराव की मृत्यु 1761 ई0 में हो गई। इस प्रकार मराठा शक्ति पर काले बादल मंडराने लगे और भारत का भविष्य भी अंधेरे में।

नये पेशवा माधवराव (1761-72 ई0) के समय मराठा शक्ति एक बार पुनः संगठित हुई और अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगी। माधवराव अंतिम महान पेशवा साबित हुए। उन्होंने निजाम, मैसूर, रूहेला, राजपूत, तथा जाटों को पराजित किया। 1771 ई0 में उसने मुगल शासक शाह आलम द्वितीय को दिल्ली लाकर गद्दी पर आसीन कराया। इस प्रकार मुगल दरबार में मराठा प्रभाव पुनः दृष्टिगोचर होने लगा। परन्तु माधवराव की संदिग्ध परिस्थितियों में 1772 ई0 में मृत्यु एवं बढ़ती ब्रिटिश शक्ति तथा महत्वाकांक्षा ने अंग्रेजों एवं मराठों को एक - दूसरे के सामने लाकर खड़ा कर दिया।

4.4 प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध

बंगाल में अपनी सत्ता स्थापित करने के पश्चात अंग्रेजों ने अपना ध्यान दक्षिण भारत पर केन्द्रित किया तथा सबसे प्रमुख शत्रु मैसूर के साथ संघर्ष प्रारंभ किया। उन्होंने मराठों से मित्रता स्थापित की। परन्तु शीघ्र ही उन्हें मराठों से संघर्ष का बहाना मिल गया और 1775 ई0 में प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध प्रारंभ हो गया।

4.4.1 प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध का मूल कारण अंग्रेज तथा मराठा साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा के बीच टकराव था। मुगल साम्राज्य के विखण्डन के पश्चात भारत में जिन क्षेत्रीय शक्तियों का उद्भव हुआ उसमें मराठे सबसे प्रमुख थे। आपने यह देखा कि किस प्रकार मराठों ने पेशवा के नेतृत्व में शिवाजी द्वारा स्थापित एक छोटे राज्य को अखिल भारतीय साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठे ही मुगलों के उत्तराधिकारी होने वाले थे। परन्तु 1761 ई0 में पानीपत के युद्ध ने समीकरण परिवर्तित कर दिया। ठीक इसी समय अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को हराकर यूरोपीयनों में अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली थी तथा सबसे बड़े धनी तथा सुरक्षित प्रदेश बंगाल पर अपनी प्रभुत्ता स्थापित कर ली। पलासी एवं बक्सर युद्ध के पश्चात भारतीय साम्राज्य निर्माण की ब्रिटिश मनसा में कोई शक नहीं था। इस प्रकार भारतीय साम्राज्य के लिए अंग्रेज एवं मराठे में संघर्ष होना अपरिहार्य था।

आंग्ल - मराठा युद्ध का तात्कालिक कारण मराठों की आपसी फूट थी। 1772 ई0 में पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गई। माधवराव का भाई नारायन राव नया पेशवा बना, परन्तु उसका चाचा रघुनाथ राव स्वयं पेशवा बनना चाहता था। इसलिए उसने षड़यंत्र प्रारंभ किया। नाना फड़नवीस रघुनाथ राव के प्रबल विरोधी थे। 1773 ई0 में नारायन राव की हत्या कर दी गई और रघुनाथ राव पेशवा बन गया। नाना फड़नवीस के नेतृत्व में अन्य मराठा सरदार भी रघुनाथ राव का विरोध कर रहे

थे। रघुनाथ राव का दुर्भाग्य था कि नारायण राव के मरणोपरान्त उसकी पत्नी गंगा बाई ने पुत्र को जन्म दिया। नाना फड़नवीस के गुट ने नारायन राव के पुत्र को माधवराव नारायन के नाम से पेशवा घोषित कर दिया। रघुनाथ राव ने हताश एवं निराश होकर बाम्बे स्थित अंग्रेजों से सहायता की अपील की। इस प्रकार अंग्रेजों को चीर प्रशिक्षित अवसर मिला और उन्होंने मराठा राजनीति में दखल दी। अतः भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह मराठों की आपसी कलह भी आंग्ल - मराठा संघर्ष का कारण बनी।

4.4.2 आंग्ल - मराठा युद्ध (1775-82 ई0)

रघुनाथ राव द्वारा ब्रिटिश सहायता हेतु आग्रह किया गया क्योंकि इस समय बाम्बे स्थित अंग्रेज मराठों के मित्र थे। परन्तु अंग्रेजों की निगाहें बाम्बे के आस-पास तटीय क्षेत्रों पर थी जिन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने संघर्ष प्रारंभ किया। रघुनाथ राव की अपील पर अंग्रेजों ने 7 मार्च 1775 ई0 को सूरत की संधि की। इस संधि की शर्तें निम्नांकित थी:-

1. अंग्रेज रघुनाथ राव को पेशवा बनाने में सहायता करेंगे। इसके लिए 2500 सैनिकों की एक टुकड़ी लगायी जाएगी। परन्तु इसका खर्च रघुनाथ राव को देना होगा।
2. रघुनाथ राव ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सलसीट एवं बसीन प्रदान करेंगे तथा सूरत के राजस्व का एक भाग अंग्रेजों को देंगे।
3. रघुनाथ राव ने वचन दिया कि ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शत्रु से मित्रता या संधि नही करेंगे।
4. भविष्य में पूना स्थित मराठा सत्ता से किसी भी प्रकार की वार्ता या संधि में अंग्रेज शामिल होंगे।

इस प्रकार इस संधि की शर्तो के अनुरूप कर्नल कीटींग के नेतृत्व में ब्रिटिश तथा रघुनाथ राव की सेना ने पूना की ओर प्रस्थान किया। मराठों एवं रघुनाथ राव तथा अंग्रेजों की संयुक्त सेना के मध्य पहली लड़ाई मई 1775 ई0 में अरास के मैदान पर हुई जिसमें मराठों की हार हुई। रघुनाथ राव को पेशवा घोषित कर दिया गया।

इसी बीच कलकत्ता स्थित सर्वोच्च परिषद ने सूरत की संधि को अस्वीकार कर दिया। गवर्नर जनरल थरेन हेस्टिंग्स इसके पक्ष में था, परन्तु परिषद ने बहुमत से इसके निपक्ष में प्रस्ताव पारित करते हुए इसे ‘खतरनाक, अनुचित, अराजनीतिक एवं अनाधिकृत‘ घोषित कर दिया। उसने बाम्बे परिषद को अपने कदम वापस लेने का प्रस्ताव भेजा तथा कर्नल अपटॉन को बाम्बे भेजा गया। उसने पूना स्थित मराठा शक्ति से मार्च 1776 ई0 में पुरंधर की संधि की। इस संधि के द्वारा सूरत की संधि को समाप्त कर दिया गया। इस संधि के प्रावधान निम्नांकित थे -

1. अंग्रेज अब रघुनाथ राव यानि रघोबा का साथ छोड़ देंगे। उसे 25000 रुपये के मासिक पेंशन पर गुजरात के कोपड़गांव में बसाया जाएगा।
2. पूना स्थित सरकार, अंग्रेजों को युद्ध खर्च की क्षतिपूर्ति के लिए 12 लाख रुपये देगी।

3. अंग्रेजों के पास सलसीट, बसीन रहेंगे तथा भरूच का राजस्व उन्हें दिया जाएगा।

बाम्बे स्थित परिषद ने इस संधि को अस्वीकार नहीं किया, परन्तु इस लागू भी नहीं किया। अंग्रेजों ने रधोबा को अपने यहां शरण दी। मराठों ने भी इस संधि के विपरीत फ्रांसीसी व्यापारी एवं साहसी नाविक सेंट लूबिन को पश्चिमी समुद्री तट पर एक बन्दरगाह देने की बात स्वीकार कर ली। नाना फड़नवीस इस समय शक्तिशाली एवं महत्वाकांक्षी हो गए थे। अंग्रेजों के मन में फ्रांसीसियों की मनसा पर संदेह होने लगा। निदेशक मण्डल ने बाम्बे परिषद की नीति का समर्थन किया तथा उसकी सहायतार्थ कर्नल एगरटन के नेतृत्व में एक अतिरिक्त टूकड़ी बाम्बे भेजी। इस प्रकार पुनः अंग्रेज एवं मराठों के बीचयुद्ध प्रारंभ हो गया।

अंग्रेजी सेना का नेतृत्व इस समय कर्नल कॉकबर्न कर रहा था। पश्चिमी घाट पर तेलगांव में मराठों की विशाल सेना के साथ युद्ध हुआ। इस युद्ध में अंग्रेज बुरी तरह परास्त हुए। परिणामस्वरूप अंग्रेज एवं मराठों को मध्य वाड़ेगांव का समझौता (1779 ई0) हुआ। इस समझौते के द्वारा 1773 ई0 के पश्चात अधिकृत सभी क्षेत्रों से अंग्रेजों हो हाथ धोना पड़ा। बंगाल से आने वाली अंग्रेजी सेना वापस भेजी जानी थी तथा मरूच के राजस्व का एक हिस्सा सिंधिया को दिया जाना था। इस प्रकार यह समझौता अंग्रेजों के लिए काफी शर्मनाक था। कलकत्ता की परिषद तथा गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने इस समझौते को अस्वीकार कर दिया गया। विश्वस्तर पर भी अमेरिकी स्वाधीनता संग्राम में हार के कारण अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को झटका लगा था। अतः भारत में अपनी प्रतिष्ठा बचाने का प्रयास वारेन हेस्टिंग्स ने प्रारंभ किया।

भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की परेशानियां, आंग्ल-मैसूर युद्ध के कारण भी बढ़ रही थी। कर्नल गोडार्ड ने स्थल सेना का नेतृत्व संभाला। मध्य भारत से होता हुआ 1780 ई0 के आरंभ में अहमदाबाद तथा बसीन पर अधिकार कर लिया। यहां से पूना की ओर प्रस्थान किया परन्तु मराठों से हारकर वापस लौटना पड़ा। इसी बीच कलकत्ता से आए कप्तान पोफन ने सिंधिया के दुश्मन गोहद के राणा की सहायता की तथा अगस्त 1781 ई0 में सिंधिया के मुख्यालय ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। दूसरी तरफ जनरल कॉमक ने भी सिंधिया को सिप्री में पराजित किया। इस प्रकार उत्तर भारत में सिंधिया की महत्वाकांक्षा को झटका लगा। सिंधिया मराठा संघ का नेतृत्व अपने हाथ में लेने को प्रयासरत था। इसलिए उसने अपनी प्रतिष्ठा बचाने तथा अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए अंग्रेजों से वार्ता प्रारंभ कर दी। उसने अंग्रेजों तथा पूना स्थित मराठा के बीच मध्यस्थता तथा समझौता कराने का प्रयास शुरू किया। पूना स्थित मराठा शक्ति समझौते के लिए तैयार नहीं थी क्योंकि अंतिम शक्ति परीक्षण अभी शेष था तथा अंग्रेजों की भारतीय तथा अन्तराष्ट्रीय स्थिति उनके पक्ष में नहीं थी।

महादजी सिंधिया ने राजनीतिक अदूरदर्शिता तथा स्वार्थी व्यक्तित्व का परिचय देते हुए मराठों की ओर से 17 मई 1782 ई0 को सालबई की संधि कर ली एवं प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध समाप्त हुआ। इस संधि को नाना फड़नवीस ने 1783 ई0 के आरंभ में ढंग से स्वीकृति प्रदान की।

4.4.3 प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध के परिणाम

इस प्रकार प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध 1782 ई0 में सालबई की संधि से समाप्त हुआ। इस संधि के प्रावधान निम्नांकित थे -

1. अंग्रेजों के पास सलसीट चला गया।
2. माधव राव नारायन को पेशवा मान लिया गया।
3. रधोबा को पेंशन देकर अंग्रेजों ने उनका साथ छोड़ दिया।
4. यमुना नदी के पश्चिम का सम्पूर्ण विजीत प्रदेश अंग्रेजों ने सिंधिया को लौटा दिया।
5. हैदर से उन क्षेत्रों को वापस लिया जाएगा जिन पर अरकॉट का अधिकार था।
6. अंग्रेज एवं मराठे एक दूसरे के मित्र रहेंगे।

इस संधि पर अंग्रेजों की पक्ष से एण्डरसन ने हस्ताक्षर किए थे। प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध में अंग्रेजों को मराठा राज्य की कमजोरी का ज्ञान हुआ। मराठों से मित्रता हुई जो अंग्रेजों के लिए लाभदायक रहा। अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाकर मैसूर को कुचल दिया तथा स्वयं को पहले से शक्तिशाली बना लिया। इसलिए यह युद्ध बराबरी का नजर आने के बावजूद मराठों के लिए घातक तथा अंग्रेजों के लिए फायदेमंद रहा।

4.5 प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध के पश्चात अंग्रेज एवं मराठे

इस प्रकार प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध 1782 ई0 में सालबई की संधि से समाप्त हुआ और ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध पूर्व स्थिति बहाल हो गई बिना किसी विशेष परिवर्तन के, परन्तु अगले दो दशक भारतीय राजनीति विशेषकर आंग्ल - मराठा संबंध के लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ। अंग्रेजों ने अपनी स्थिति मजबूत की। इस युद्ध ने भारत में ब्रिटिश सत्ता की कमजोरी स्पष्ट की। इसलिए 1784 ई0 में पीट के इण्डिया अधिनियम ने अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण करने का प्रावधान किया। कलकत्ता परिषद तथा गवर्नर जनरल को मद्रास एवं बॉम्बे प्रेसीडेन्सी से सर्वोच्च घोषित कर दिया गया। कार्नवालिस तथा वेलेजली के नेतृत्व में अंग्रेजों ने भारत में अपने प्रथम शत्रु मैसूर पर अधिकार कर अपनी स्थिति और मजबूत कर ली।

इसके विपरीत सालबई की संधि के बाद के 20 वर्ष मराठा संघ के लिए कठिन था। मराठा सरदार आपस में लड़ने में व्यस्त रहे। महादजी सिंधिया ने मुगल शासक के द्वारा पेशवा को वकील-ए-मुतलक नियुक्त कराया तथा स्वयं को पेशवा का नायब। इससे अन्य मराठा सरदार तथा मुख्यमंत्री नाना फड़नवीस क्रोधित हुए। 1794 ई0 में महादजी की मृत्यु हो गई तथा उसकी जगह दौलत राव सिंधिया ने ली। दौलत राव उतना योग्य नहीं था। अहिल्या बाई ने होल्कर घराने को योग्य नेतृत्व प्रदान किया। परन्तु 1795 ई0 में अहिल्या बाई की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी तुकोजी

होल्कर बना। इस समय नाना फड़नवीस योग्यतम मराठा थे। नाना ने हरिपंत फाड़के के नेतृत्व में सैनिक अभियान चलाकर मैसूर से बादामी, कीट्टूर, नरगुण्ड आदि क्षेत्र छीन लिया। नाना की मृत्यु 1800 ई0 में हो गई और इसके साथ ही दूरदर्शी, महत्वाकांक्षी, सफल प्रशासक तथा योग्यतम सेनापति इस दुनिया से चल बसा। मराठों के लिए यह अपुरणीय क्षति थी। तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1790-92 ई0) में मराठों ने अंग्रेजों का साथ देकर बहुत बड़ी भूल की। मराठे अंतिम बार 1795 ई0 में निजाम के विरूद्व खार्दा के युद्ध में संगठित होकर लड़े और निजाम को पराजित किया। इसके बाद सभी मराठा सरदार कभी संगठित नहीं हुए। 1795 ई0 में पेशवा माधव राव द्वितीय ने आत्महत्या कर ली। रघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा बना जो अपने पिता की तरह मराठा शक्ति को कमजोर करने वाला साबित हुआ। इस प्रकार सालबई के बाद मराठे कमजोर हुए।

4.6 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध (1803-06 ई0)

सालबई की संधि से प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध समाप्त हुआ था। परन्तु यह एक युद्ध विराम था क्योंकि दक्कन में सर्वोच्चता एक के लिए प्रारंभ आंग्ल - ब्रिटिश संघर्ष का निर्णय होना आवश्यक था। मैसूर पर अन्ततः अधिकार स्थापित करने के पश्चात अंग्रेज इस अवसर की तलाश में थे जब सालबई की संधि तोड़े बिना मराठों से युद्ध प्रारंभ हो और 1803 ई0 में यह अवसर उन्हें उस समय प्राप्त हुआ जब पेशवा ने उनसे सहायता मांगी।

4.6.1 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण

द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध का मूल कारण ब्रिटिश सामा्रज्यवादी नीति थी। अठारहवीं सदी में भारतीय राजनीतिक अस्थिरता तथा आपसी फूट का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने साम्राज्य निर्माण प्रारंभ किया और तीव्र गति से बंगाल, मैसूर, आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। दक्कन में मराठा साम्राज्य सबसे बड़ा एवं शक्तिशाली था। अतः भारत में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करने के लिए मराठों को हराना आवश्यक था। इसलिए आंग्ल - मराठा संघर्ष अपरिहार्य था।

दूसरा कारण यूरोपीय राजनीति थी। इस समय इंग्लैण्ड के पारम्परिक शत्रु फ्रांस में नेपोलियन का उत्थान हुआ। उसने यूरोप में फ्रांस की सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास प्रारंभ किया। साथ ही उसका उद्देश्य इंग्लैण्ड को कमजोर करना था। उसने भारत पर आक्रमण के उद्देश्य ये मिस्र पर आक्रमण किया था। इस प्रकार उत्पन्न फ्रांसीसी खतरे को टालने के लिए पश्चिम तट पर ब्रिटिश अधिकार आवश्यक था।

26 अपै्रल 1798 ई0 को भारत में गवर्नर जनरल बनकर आया लार्ड मार्निंगटन जो मार्क्वेस वेलेजली के नाम से विख्यात है, महान सामा्रज्यवादी था। कम्पनी के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल में कमिश्नर के पद पर कार्य कर चुके वेलेजली को भारतीय राजनीति का पूर्ण ज्ञान था। उसने जॉन शोर के निस्पक्षता अथवा तटस्थता के सिद्धान्त को अनुपयुक्त बनाया। उसने सहायक संधि को अपनी

साम्राज्यवादी नीति का आधार बनाया। सहायक संधि स्वीकार करने का अर्थ था अपनी स्वाधीनता खो देना और नहीं स्वीकार करने का मतलब था ब्रिटिश सर्वोच्चता को चुनौती देना। इसलिए आंग्ल - मराठा युद्ध का कारण वेलेजली की आक्रामक एवं साम्राज्यवादी नीति भी थी।

परन्तु द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध का तात्कालिक एवं मुख्य कारण स्वयं मराठा राजनीति थी। 1795 ई0 में खार्दा में निजाम के विरूद्ध मराठे संगठित होकर लड़े, लेकिन यह आखिरी मौका था। इसके बाद कभी भी मराठा सरदार एक साथ नहीं दिखे। नया पेशवा बाजीराव द्वितीय मराठा सरदारों को ही आपस में लड़ाकर अपनी स्थिति ठीक रखना चाहता था। पूना में मुख्यमंत्री नाना फड़नवीस के कारण पेशवा नियंत्रण में रहा। 1800 ई0 में नाना की मृत्यु के साथ ही पेशवा उन्मुक्त हो गया। इस समय कर्नल पॉमर जो पूना में था, लिखता है, 'नाना के साथ ही मराठों की बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता समाप्त हो गई'। अब मराठा सरदार पूना पर वर्चस्व के लिए आपस में लड़ने लगे। इस प्रतिस्पर्धा में दौलतराव सिंधिया तथा जसवन्त राव होल्कर सबसे आगे थे। बदनिजाज पेशवा के कारण परिस्थिति भयावह हो गई। आरंभ में सिंधिया का वर्चस्व स्थापित होता दिख रहा था। सिंधिया ने होल्कर की सेना को मालवा में रोका तथा परास्त किया, परन्तु पेशवा ने जसवन्त राव होल्कर के भाई बिठूजी होल्कर की हत्या करवा दी। इसलिए होल्कर ने अपनी पूरी ताकत से पूना पर आक्रमण कर दिया। उसने पेशवा तथा सिंधिया की संयुक्त सेना को परास्त किया तथा पूना पर अधिकार कर लिया। जसवन्त राव होल्कर ने रधोबा के दत्तक पुत्र अमृत राव के पुत्र विनायक राव को पेशवा के मसनद पर आसीन कर दिया तथा बाजीराव द्वितीय को पद्च्युत कर दिया। हताश - निराश बाजी राव द्वितीय 1802 ई0 को भागकर अंग्रेजों के पास गया तथा 31 दिसम्बर को बसीन की संधि की जो द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध का तात्कालिक कारण साबित हुआ।

बसीन की संधि के प्रावधान:-

1. अंग्रेजी सेना की एक टूकड़ी जिसकी संख्या 6000 से कम नहीं होगी, पेशवा के क्षेत्र में रखी जाएगी।
2. इस सेना के रख - रखाव हेतु 26 लाख रुपये के राजस्व वाला क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिया गया।
3. अंग्रेजों के शत्रु किसी भी यूरोपीय को पेशवा अपने दरबार या क्षेत्र में अंग्रेजों की अनुमति के बिना किसी भी प्रकार की गतिविधियों की छूट नहीं देगा।
4. मराठों की आपसी तथा अन्य भारतीय शक्तियों के झगड़े में मध्यस्थता कम्पनी करेगी।
5. सूरत शहर अंग्रेजों को दे दिया गया।
6. पेशवा ने निजाम के क्षेत्र से चौथ का दावा छोड़ दिया।
7. इस सबके बदले कम्पनी बाजीराव द्वितीय को पेशवा की मसनद पर आसीन कराएगी।

इस प्रकार इस संधि ने अंग्रेजों को मराठा क्षेत्र में दखल देने का मौका दिया। इस संधि पर बोर्ड ऑफ कंट्रोल ने शंका व्यक्त की। परन्तु गवर्नर जनरल वेलेजली ने परिस्थितियों का आकलन

करते हुए लिखा था, "प्रथम बार शांति से इतनी बड़ी उपलब्धि हासिल हुई है।" गवर्नर जनरल के भाई आर्थर वेलेजली ने इस संधि को "शून्य के साथ की गई संधि" की संज्ञा दी थी। बसीन की संधि का मूल्यांकन करते हुए सिडनी आवेन लिखता है, "इस संधि ने अंग्रेजों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से भारतीय साम्राज्य प्रदान किया।" कम्पनी ने इस संधि के प्रावधान के अनुसार बाजीराव द्वितीय को पुनः पेशवा बनाने के लिए युद्ध को प्रारंभ किया। इस प्रकार मराठों का अन्तर्कलह और बसीन की संधि द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध के तात्कालिक कारण साबित हुए।

4.6.2 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध (13 मई 1803 ई0 - 1806 ई0)

बसीन की संधि के पश्चात अंग्रेजों ने युद्ध को वृहद् तैयार कर ली। मराठा क्षेत्र पर चौतरफा आक्रमण की योजना बनाई गई। दक्कन सेना का नेतृत्व आर्थर वेलेजली, उत्तर भारतीय सेना का नेतृत्व जनरल लेक तथा पश्चिमी सेना का नेतृत्व कर्नल मूर्रे को दिया गया। इसके अलावा गुजरात, उड़ीसा तथा बुंदेलखण्ड में सहायक टुकड़ियां स्थापित की गई। मराठे अभी भी इस खतरे से अनभिज्ञ, आपस में लड़ रहे थे।

आर्थर वेलेजली बाजीराव को पूना लाया और मराठा प्रतिरोध के बावजूद 13 मई 1803 ई0 को पुनः पेशवा के पद पर आसीन करा दिया और मराठों के साथ एक नये संघर्ष की शुरूआत की। दौलत राव सिंधिया तथा रघूजी भोसले संगठित हो गए तथा जसवन्त राव होल्कर को भी संगठित होने के लिए आमंत्रित किया। इस संकट के समय भी मराठे आपसी झगड़े को भूलकर संगठित नहीं हुए। होल्कर अपनी सेना के साथ मालवा चला गया और काफी विलम्ब से युद्ध में शामिल हुआ। गायकवाड अंत तक इस युद्ध से अलग रहा।

वास्तविक युद्ध 1803 ई0 के आरंभ से शुरू हुआ। मराठा सेना प्रथम दृष्टया काफी विशाल थी, जिसकी संख्या 2.5 लाख के आस - पास थी। इसमें 40,000 सैनिक फ्रांसीसियों द्वारा प्रशिक्षित थे। युद्ध आरंभ होने से पहले ही फ्रांसीसी मराठों से अलग हो गए। मराठे छापामार युद्ध प्रणाली त्यागकर प्रत्यक्ष युद्ध को तैयार थे। अंग्रेजों ने सैनिक शक्ति के साथ-साथ कूटनीति का सहारा लेते हुए मराठों के शत्रुओं से जैस अवध, आदि से सहायतार्थ संधि कर ली।

दक्कन से मुख्य सेना का नेतृत्व करते हुए आर्थर वेलेजली ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् औरंगाबाद के समीप असाय के युद्ध में उसने सिंधिया और भोंसले की संयुक्त सेना को बुरी तरह परास्त किया। दक्षिण में उस समय तक यह सबसे बड़ी जीत थी। अक्टूबर 1803 ई0 में अंग्रेजों ने बुरहानपुर और असीरगढ़ पर अधिकार कर लिया। असीरगढ़ इस क्षेत्र का सबसे मजबूत किला माना जाता था जो लगभग अजेय था। दिसम्बर में अंग्रेजों ने गावलीगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया तथा भोंसले को अरगांव में पराजित किया। उत्तर भारत जिसे अंग्रेज हिन्दुस्तान कहते थे, में भी अंग्रेजों को जीत हासिल हुई। जनरल लेक ने दिल्ली और आगरा पर 1803 ई0 में

ही अधिकार कर लिया। सिंधिया की सेना को पहले दिल्ली के युद्ध और फिर अलवर के समीप लसवाड़ी के युद्ध में परास्त किया। इस प्रकार अब तक भारत में सत्ता के सबसे बड़े केन्द्र दिल्ली पर प्रथम बार अंग्रेजों ने जीत दर्ज की। बुंदेलखण्ड, गुजरात तथा उड़ीसा में भी अंग्रेजों की जीत हुई। इस प्रकार युद्ध प्रारंभ होने के लगभग छः माह के अन्दर ही सिंधिया तथा भोंसले को कई बार हार का सामना करना पड़ा और अंग्रेजों के साथ संधि करनी पडी। 17 दिसंबर 1803 ई0 को भोंसले ने देवगांव की संधि की। इस संधि के द्वारा उसने बालासोर सहित कटक तथा वर्धा नदी के पश्चिम का सम्पूर्ण क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिया। भोंसले ने निजाम तथा पेशवा के साथ किसी भी विवाद में अंग्रेजों की मध्यस्थता स्वीकार कर ली। अंग्रेजों के शत्रु यूरोपीयनों से भोंसले ने मित्रता नहीं करने का वचन दिया। भोंसले नागपुर मे ब्रिटिश रेजिडेन्ट रखने के लिए राजी हो गया और एलिफिंस्टन को रेजिडेन्ट नियुक्त किया गया।

पराजित होने के पश्चात सिंधिया ने 30 दिसंबर 1803 ई0 को सूर्जी - अरजनगांव की संधि की। इस संधि के द्वारा सिंधिया ने गंगा - जमुना के बीच का सम्पूर्ण क्षेत्र तथा जयपुर, जोधपुर एवं गोहद के उत्तर का क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप दिया। इसके अतिरिक्त सिंधिया ने अहमदनगर, भरूच तथा अजन्ता पहाड़ियों के पश्चिम का सम्पूर्ण क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिए। उसने मुगल बादशाह, निजाम तथा पेशवा पर सभी दावे छोड़ दिए तथा किसी भी यूरोपीयन को जो अंग्रेजों के शत्रु हों, अपनी सेना में नहीं रखने का वचन दिया। जॉन मालकॉम को ग्वालियर स्थित सिंधिया के दरबार में ब्रिटिश रेजिडेन्ट नियुक्त किया गया। इसी संधि के आधार पर 1804 के आरंभ में भोंसले ने सहायक संधि स्वीकार कर ली और एक ब्रिटिश एक ब्रिटिश टुकड़ी अपनी सेना में रखने की अनुमति दे दी। निजाम को भी अंग्रेजों ने मराठों द्वारा अधिकृत अधिकांश क्षेत्र सिंधिया और भोंसे से लेकर लौटा दिए। इस संधि के पश्चात मद्रास एवं कलकत्ता प्रेसीडेन्सी आपस में जुड़ गए तथा अखिल भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इस प्रकार 1804 ई0 में आंग्ल - मराठा युद्ध समापन की ओर अग्रसर प्रतीत हो रहा था। परन्तु अप्रैल 1804 ई0 होल्कर ने युद्ध प्रारंभ कर दिया, जब सिंधिया और भोंसले परास्त हो चुके थे। होल्कर ने छापामार युद्ध प्रणाली का अनुसरण किया। उसने कर्नल मानॅसन को कोटा के समीप मुकुन्दरा दर्रे में बुरी तरह पराजित किया। मॉनसन को वापस जाना पड़ा। उसने आगरा में शरण ली। होल्कर ने उत्तर भारत पर आक्रमण किया तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया। दिल्ली की रक्षा का दायित्व ब्रिटिश रेजिडेन्ट कर्नल अटरलॉनी पर था, जिसने समर्पण नहीं किया और होल्कर की एक टुकड़ी को परास्त किया। जनरल लेक ने 17 नवम्बर 1804 ई0 को होल्कर को पराजित किया। परन्तु भरतपुर के समीप लेक बुरी तरह परास्त हुआ। लेक में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए भरतपुर के राजा से संधि कर ली। इस समय होल्कर की स्थिति अच्छी नहीं थी। लेकिन इसी समय (मई 1805 ई0) वेलेजली को गवर्नर जनरल के पद से हटाते हुए इंग्लैण्ड बुला लिया गया। कार्नवालिस पुनः गवर्नर जनरल के रूप में जुलाई 1805 में भारत आया। उसे अहस्तक्षेप की नीति

को लागू करने का निर्देश दिया गया था। इससे पहले कि वह सहायक संधि को समाप्त या परिवर्तित करता अक्टूबर 1805 ई0 में गाजीपुर में उसकी मृत्यु हो गई।

जार्ज बारलोव को कार्यकारी गवर्नर जनरल बनाया गया। उसने सिंधिया के साथ संधि की तथा चंबल नदी को ब्रिटिश एवं सिंधिया के क्षेत्र की सीमा रेखा स्वीकार कर ली गई। इस बीच जनरल लेक ने होल्कर पर दबाव बढ़ाया और 1806 ई0 में उसके साथ राजपुर घाट की संधि कर ली। होल्कर ने टौक, रामपुरा, कूच, बुंदेलखण्ड तथा चम्बल नदी के उत्तर के क्षेत्रों से अपने दावे छोड़ दिए। परंतु बारलोव ने होल्कर को अधिकांश क्षेत्र लौटा दिए तथा राजपूताना को ब्रिटिश नियंत्रण से मुक्त कर दिया। इस प्रकार 1806 ई0 में द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध समाप्त हुआ।

4.6.3 द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध के परिणाम

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि 1806 ई0 में द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध समाप्त हुआ और कार्यकारी गवर्नर जनरल बारलोव ने अहस्तक्षेप की नीति की घोषणा की। परन्तु इस युद्ध ने तत्कालीन भारतीय राजनीति तथा भविष्य पर अमिट छाप छोड़ा। इस युद्ध ने भारत पर ब्रिटिश सर्वोच्चता की व्यावहारिक रूप से स्थापित कर दिया। अठारहवीं सदी के सबसे वृहद् साम्राज्य तथा शक्तिशाली मराठा संघ की कमजोरियां उजागर हो चुकी थी। मराठा संघ का प्रमुख पेशवा एवं सिंधिया तथा भोंसले ने सहायक संधि स्वीकार कर ली थी। होल्कर भी लगभग निर्णायक रूप से परास्त हो चुका था। अंग्रेजों ने इस युद्ध के दौरान भारतीय राजनीति के सबसे प्रमुख सांकेतिक केन्द्र दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा मुगल बादशाह को मराठा प्रभाव से मुक्त कराते हुए अपने अधीन कर लिया। इस युद्ध के दौरान अंग्रेजों ने पश्चिमी समुद्र तट, पूरब में उड़ीसा, दक्षिण में निजाम से सटे प्रदेश तथा उत्तर भारत के आर्थिक एवं सामरिक महत्व के समस्त क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। इसी युद्ध के बहाने अंग्रेजों की निगाह पंजाब पर पड़ी। पंजाब छोड़कर समस्त भारतीय भू-भाग अब अंग्रेजों की इच्छा पर था।

4.7 तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध

द्वितीय आंग्ल - मराठा संघर्ष के दौरान मराठे निश्चित रूप से कमजोर हो गए थे, परन्तु मराठा शक्ति एवं प्रतिरोध अभी समाप्त नहीं हुआ था। इसलिए 1806 ई0 में संघर्ष समाप्त नहीं हुआ था, बल्कि युद्ध विराम हुआ था। अंग्रेज मराठा शक्ति पर अंतिम विजय तथा मराठे अपनी शर्मनाक स्थिति से उबरने की प्रतिक्षा कर रहे थे। अंग्रेजों को यह अवसर मिला जब 1813 ई0 में हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। उसने रियासतों के संबंध में अधीनस्थ अलगाव की नीति अपनाई। उसने आक्रामक नीति अपनाते हुए समस्त रियासतों को ब्रिटिश सर्वोच्चता के अधीन करने का प्रयास प्रारंभ किया। इस प्रकार आंग्ल - मराठा युद्ध पुनः अपरिहार्य हो गया।

4.7.1 तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण

तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध का प्रथम कारण मराठा राज्य की कमजोरी थी। उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही ये कमजोरियां उजागर होने लगी थीं। अंग्रेजों से परास्त होने के बाद भी मराठे आपस में संगठित होने के स्थान पर विभाजित रहे तथा एक दूसरे के विरूद्व षड़यंत्र एवं संघर्ष जारी रखे। जसवन्त राव होल्कर ने पारिवारिक परिस्थितियों से तंग आकर मानसिक संतुलन खो दिया और 1811 ई0 में मृत्यु हो गई। तुलसीबाई ने सत्ता संभाली परन्तु मंत्री बलराम सेठ के प्रभाव में थी। दौलतराव सिंधिया की आर्थिक हालत इतनी कमजोर हो गई कि कर्मचारियों तथा सैनिकों को वेतन देना कठिन हो गया। सैनिकों को प्रत्यक्ष उगाही की अनुमति दे दी गई। रघु जी भोंसले का क्षेत्र पिण्डारियों के लूट - पाट से अराजकता की स्थिति में था। गायकवाड को ब्रिटिश अधीनता में भी परेशानी नहीं थी। परंतु पेशवा बाजीराव द्वितीय को अपनी गलती का एहसास हो गया था। उसने मराठा संघ को जीवित करने का प्रयास प्रारंभ किया और मौके की तलाश में था। परंतु वह नकारात्मक सोच वाले त्रिम्बकजी दंगलिया के प्रभाव में था। पेशवा ने गायकवाड से वार्ता के लिए अपने मंत्री गंगाधर शास्त्री को भेजा। परंतु त्रिम्बकजी ने उसकी हत्या करवा दी। गंगाधर शास्त्री अंग्रेजों के भी मित्र थे। इसलिए आपस में दूरियां बढ़ने लगी। परिस्थितियां 1817 ई0 के आरंभ से और भी खराब होने लगी। पेशवा सक्रिय रूप से अंग्रेजों के विरूद्व संगठन बनाने लगा। उसने पठानों तथा पिण्डारियों से वार्ता प्रारंभ की। इस कदम को सहन करना अंग्रेज के लिए कठिन था। अतः दोनो तरफ तैयारियां होने लगी।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद, तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध का मूल कारण था जो तात्कालिक रूप से पिण्डारी समस्या सुलझाने के बहाने सामने आया। गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स ने माउण्ट स्ट्रअर्ट एलिफिंस्टन को निर्देश दिया कि वह पेशवा से संधि के लिए वार्ता करें। इस संधि का उद्देश्य पेशवा की शक्ति को इस प्रकार कम करना था कि वह भविष्य में अंग्रेजों के विरूद्व किसी षड़यंत्र में सामिल न हो सके। पेशवा ने 13 जून 1817 ई0 को पूना की संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। इस संधि के द्वारा पेशवा को मराठा संघ के प्रमुख का पद छोड़ना था। गायकवाड को केवल 4 लाख रुपये देकर पेशवा से मुक्त होना था तथा पेशवा भविष्य में गायकवाड पर कोई दावा नहीं करने वाला था। अंग्रेजों को कोंकण सहित सामरिक महत्व के अन्य क्षेत्र प्रदान किए जाने थे। इस प्रकार एक और अपमानजनक संधि पर पेशवा को हस्ताक्षर करने पड़े।

हेस्टिंग्स ने नवम्बर 1817 ई0 में दौलतराव सिंधिया को ग्वालियर की संधि पर हस्ताक्षर के लिए बाध्य किया। सिंधिया पिण्डारी समस्या के समाधान में पूर्ण सहयोग देने तथा युद्ध की स्थिति में अपने क्षेत्र का उपयोग करने देने का वचन दिया। ठीक इसी समय नागपुर में उत्तराधिकार का संघर्ष प्रारंभ हो गया। रघू जी भोंसले द्वितीय की मृत्यू के पश्चात उसका पुत्र परसोनी गद्दी पर बैठा। परन्तु परसोनजी के चचेरे भाई अप्पा साहिब अंग्रेजों की मदद से गद्दी प्राप्त करना चाहता था। इसलिए उसने अंग्रेजों से नागपुर की संधि कर ली जो सहायक संधि थी। इस प्रकार इन तीन संधियों ने मराठा

प्रतिष्ठा पर बड़ा धब्बा लगाया। इस संकट की घड़ी में भी मराठा आपस में समन्वित कार्यक्रम नहीं बना सके। पेशवा ने बिना किसी सूचना के युद्ध प्रारंभ कर दिया।

अंग्रेजों ने सिंधिया के साथ जिस दिन संधि की, ठीक उसी दिन पेशवा ने पूना में ब्रिटिश रेजीडेन्सी को वर्खास्त करते हुए उसमें आग लगा दी। पेशवा ने एक बड़ी सेना लेकर कर्नल बर्र पर आक्रमण किया, परन्तु खीर्की में बुरी तरह परास्त हुआ। जसवन्त राव होल्कर के पुत्र मल्हार राव होल्कर द्वितीय तथा नागपुर में अप्पा साहिब ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। भोंसलें की सेना सिताबर्डी में 27 नवम्बर 1817 ई0 को पराजित हुई। अप्पा साहिब भागकर पंजाब चला गया। वहां से जोधपुर गया जहां 1840 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई। नर्मदा नदी के उत्तर का क्षेत्र ब्रिटिश सामा्रज्य में मिला लिया गया तथा भोंसले परिवार के एक सदस्य को शेष क्षेत्र का राजा घोषित कर दिया गया। होल्कर की सेना को महिदपुर में हिसलॉप ने पराजित किया तथा होल्कर के उपर मंदसौर की संधि 1868 ई0 आरोपित कर दी गई। यह एक सहायक संधि थी। होल्कर ने सभी राजपूत राज्यों पर अपना दावा छोड़ दिया। इन्दौर में स्थायी रूप से रेजिडेन्ट नियुक्त कर दिया गया।

खीर्की के युद्ध में परास्त होने के बाद भी पेशवा शान्त नहीं हुआ और अपनी स्थिति सुधारने का प्रयास करने लगा। 1818 ई0 के आरंभ में वह पुनः कोरेगावं तथा अस्थी में पराजित हुआ। अन्ततः बाजीराव द्वितीय ने जॉन मॉलकम के समक्ष जून 1818 ई0 में समर्पण कर दिया। पेशवा का पद समाप्त करते हुए बाजीराव द्वितीय को कानपुर के समीप बीठुर में लाकर रखा गया। उसका पेंशन आठ लाख रुपये वार्षिक रखा गया। पेशवा के क्षेत्र से एक छोटा क्षेत्र अलग कर शिवाजी के वंशज प्रताप सिंह को दिया गया तथा उसे मराठा राज्य को औपचारिक एवं वैधानिक प्रधान घोषित किया गया। इसका मुख्यालय सतारा को बनाया गया। बाद में डलहौजी ने हड़प की नीति के अंतर्गत सतारा को ब्रिटिश सामा्रज्य में मिला लिया।

4.7.2 तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध के परिणाम

तृतीय आंग्ल - मराठा युद्ध भारत में अंग्रेज एवं मराठों के बीच सर्वोच्चता के लिए हुए संघर्ष का अंतिम युद्ध साबित हुआ। इस युद्ध की समाप्ति के पश्चात भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सर्वोच्चता पर कोई शंका नहीं रहा क्योंकि भारत में एक समय मराठों को मुगलों का प्रबल दावेदार माना जा रहा था। परंतु अंग्रेजों ने सैनिक ताकत तथा कूटनीति का सहारा लेकर मराठों को परास्त कर दिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप अंग्रेजों को पश्चिमी तथा मध्य भारत के आर्थिक तथा सामरिक महत्व के सभी क्षेत्र हासिल हो गए। इस युद्ध ने भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया को लगभग पूरा कर दिया।

4.8 मराठा शक्ति की पराजय के कारण

मराठा शक्ति जिसकी नींव शिवाजी ने सत्तरहवीं शताब्दी में रखी तथा अपने बाहुबल एवं बुद्धि से विकसित किया, उसके मरणोपरान्त क्षीण होने लगी। अठारहवीं सदी में बाजी राव प्रथम ने इसे क्षेत्रीय शक्ति से अखिल भारतीय शक्ति बनाया, परंतु भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर सर्वोच्चता के संघर्ष में अंग्रेजों के हाथों परास्त हुई। मराठों के पराजित होने के कारणों की व्याख्या निम्नवत् की जा सकती है -

मराठा संघ की आंतरिक कमजोरी मराठों की पराजय का प्रथम कारण थी। मराठा राज्य में उन संस्थाओं तथा नीतियों का अभाव था जो किसी भी राज्य के स्थायित्व तथा विकास के लिए आवश्यक होते हैं। यह राज्य व्यक्तिगत शौर्य तथा बुद्धि पर आश्रित था। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों के साथ संघर्ष में, यह मूलभूत कमजोरी घातक साबित हुई।

कुशल एवं सक्षम नेतृत्व का अभाव मराठों की हार का दूसरा कारण था। आपने यह देखा कि अठारहवीं सदी के अंतिम चतुर्थांश में मराठा नेता किस प्रकार अदूरदर्शिता का परिचय दे रहे थे। रधोबा के गलत निर्णय के कारण अंग्रेजों को मराठा राज्य में दखल देने का मौका मिला। अधिकांश सक्षम मराठा सरदारों की मृत्यु हो गई और उन्नीसवीं सदी में बाजीराव द्वितीय के अदूरदर्शिता के कारण अंग्रेजों को बढ़त मिली।

मराठों की युद्ध प्रणाली अंग्रेजों की तुलना में काफी कमजोर साबित हुई। मराठा सरदार अपनी सर्वोच्चता के लिए केन्द्रीय नेतृत्व का हमेशा उल्लंघन करते थे। सैनिक साज - सामान का आधुनीकीकरण नहीं हुआ। युद्ध की तकनीकी यूरोपीयनों की तुलना में काफी पिछड़ी थी। अपने तोपखाने को सक्षम नहीं बनाया। साथ ही शिवाजी द्वारा विकसित छापामार या गुरीला युद्ध प्रणाली को धीरे - धीरे मराठों ने त्याग दिया जो उनकी भयंकर भूल थी। प्रत्यक्ष युद्ध में उनकी अकुशलता उभर कर सामने आई और पराजय का मुंह देखना पड़ा।

मराठा राज्य के आर्थिक आधार का कमजोर होना उनके लिए घातक सिद्ध हुआ। राज्य की आर्थिक गतिविधियाँ लूट पर आधारित थी। उनकी आय का मुख्य स्रोत चौथ तथा सरदेशमुखी था जिस पर निर्भरता कठिन थी। मराठों ने कृषि, व्यापार तथा उद्योगों के विकास की ठोस नीति नहीं बनाई। इसलिए राज्य आर्थिक दृष्टि से आधारहीन था। इस परिस्थिति में अंग्रेजों से मुकाबला कठिन हो गया।

मराठा संघ का सामन्तवादी स्वरूप उनकी राजनैतिक पिछड़ेपन को प्रमाणित करता है। मराठा संघ एक ढीला-ढाला संघ था जिसका प्रधान पेशवा था। पेशवा के कमजोर होते ही सिंधिया, होल्कर, भोंसले, गायकवाड तथा अन्य सरदार सर्वोच्चता के लिए संघर्षरत हो गए। ऐसी परिस्थिति में सरदारों ने अपने आपको संगठित नहीं किया और आपस में लड़ते रहे। इसका फायदा अंग्रेजों ने उठाया और मराठों को पराजित किया।

अंग्रेजों की भौतिक, सैनिक तथा वैचारिक सर्वोच्चता ने अंग्रेजों की जीत तथा मराठों की हार में मुख्य भूमिका निभायी। अंग्रेजों ने आधुनिक तकनीक के आधार पर अपनी सेना विकसित की थी। तोपखाना उनकी थल सेना का आधार था तथा अचूक था। उनकी नव सेना का जबाब नहीं था। सैनिक नेतृत्व केन्द्रीयकृत था। उन्होने 'फूट डालो और शासन करो' को अपनी कूटनीति का आधार बनाया तथा मराठों के विरूद्व भी इसका इस्तेमाल किया। मराठों के शत्रु निजाम तथा अन्य शासको को अपनी तरफ कर लिया। उनकी गुप्तचर व्यवस्था उत्तम थी। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजों की जीत स्वाभाविक थी।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजों ने मराठों से पहले मित्रता की तथा जब मराठा शक्ति कमजोर होने लगी तब सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारंभ किया। इस संघर्ष में मराठों की कमजोरी तथा अंग्रेजों की शक्ति को तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि मराठों की हार अपरिहार्य थी। भारत में मुगलों का उत्तराधिकारी बनने का सपना अंग्रेजों ने चकनाचूर कर दिया और शीघ्रता से मराठा शक्ति को समाप्त कर दिया।

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1. अठारहवीं सदी में मराठों की स्थिति।
2. प्रथम आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण तथा परिणाम।
3. द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध के कारण तथा परिणाम।
4. बसीन की संधि का महत्व।
5. अंतिम आंग्ल - मराठा युद्ध।
6. मराठा शक्ति की पराजय के कारण।

4.9 सारांश

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि सतरहवीं सदी में छत्रपति शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा राज्य को किस प्रकार पेशवा बाजीराव प्रथम ने शक्तिशाली बनाया। धीरे-धीरे सारी शक्तियां पेशवा के हाथ में केन्द्रित हो गई तथा 1750 ई0 के संगोला समझौता के द्वारा मराठा संघ निर्मित हुआ और पेशवा इस संघ का प्रमुख बना। इसी समय भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने साम्राज्य निर्माण करना प्रारंभ किया तथा अफगानों ने उत्तर भारत पर एक बार फिर आक्रमण किया। मराठे भारतीय राजनीति के सबसे प्रबल दावेदार थे। परंतु पानीपत की तीसरी लड़ाई में उनकी हार ने मराठा शक्ति क्षीण कर दी और अंग्रेजों ने अवसर मिलते ही मराठों से 1775 ई0 से सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारंभ किया। 1775 ई0 से 1782 ई0 तक हुए प्रथम आंग्ल-मराठा संघर्ष में कोई निर्णय नहीं हुआ, परन्तु अंग्रेजों की स्थिति अच्छी नहीं थी। अमेरीकी स्वाधीनता संग्राम तथा मैसूर के साथ युद्ध के कारण अंग्रेजों को काफी नुकसान हो रहा था। सिंधिया ने अदूरदर्शिता का परिचय दिया और 1782

ई0 में सालबई की संधि से युद्ध समाप्त करा दिया। अंग्रेजों के लिए यह अच्छा रहा क्योंकि शांतिकाल का उपयोग उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने तथा दुश्मनों को कमजोर करने में किया। मराठे विभाजित रहे। बाजीराव द्वितीय ने 1802 ई0 में बसीन की संधि से पुनः अंग्रेजों को अवसर प्रदान किया और द्वितीय आंग्ल-मराठा संघर्ष (1803-06 ई0) में अंग्रेजों ने मराठा शक्ति को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया। मराठों ने अपनी गलती सुधारने का एक अंतिम प्रयास किया, परंतु काफी देर हो चुकी थी। हेस्टिंग्स इस समय ब्रिटिश सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध था। इसलिए पिण्डारी समस्या के समाधान के बहाने तृतीय आंग्ल-मराठा संघर्ष प्रारंभ हुआ और शीघ्र ही मराठा शक्ति ने ब्रिटिश शक्ति के सामने सदा के लिए घुटने टेक दिए।

4.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.2 अठारहवीं सदी में मराठा शक्ति।
2. देखिए 4.4 प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध एवं उपशीर्षक 4.4.1, 4.4.2, 4.4.3।
3. देखिए 4.6 द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध एवं उपशीर्षक 4.6.1, 4.6.2, 4.6.3।
4. देखिए 4.6.1 द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध के कारण।
5. देखिए 4.7 तृतीय अथवा अंतिम आंग्ल-मराठा युद्ध एवं उपशीर्षक 4.7.1, 4.7.2 एवं 4.7.3।
6. देखिए 4.8 मराठों की असफलता के कारण।

4.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. सरकार, जे0एन0 - शिवाजी।
2. Sen, S.N. – Administrative System of Marathas.
3. Spear, Pescival – The Oxford History of Modern India.
4. Chandra, Bipan – History of Modern India.
5. Majumdar, Raychaudhary and K K Datta – An Advanced History of India.

4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ग्रोवर, बी0एल0 एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास - एक नवीन मूल्यांकन।
2. Aggarwal, J.C. – Modern Indian History.
3. कल्पना राजाराम - आधुनिक भारत का इतिहास
4. अग्निहोत्री, बी0के0 - भारतीय इतिहास
5. Chhabra, G.S. – Advanced Study in the History of Modern India Vol. I & II.

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. अठारहवीं सदी में आंग्ल - मराठा संघर्ष की चर्चा कीजिए।
2. 1802 से 1818 ई0 तक आंग्ल - मराठा संबंध की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
3. ''1818 ई0 मराठा शक्ति की समाप्ति का वर्ष है। '' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. मराठा शक्ति की असफलता के कारणों की व्याख्या कीजिए।
5. 1802 ई0 की बसीन की संधि के प्रावधान तथा महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई पाँच

बर्मा के साथ अंग्रेजों के संबंध

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 भारत में अंग्रेजों के द्वारा वैदेशिक नीति की शुरूआत
5.4 प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध
5.4.1 प्रथम आंग्ल बर्मा युद्ध के कारण
5.4.2 युद्ध
5.4.3 यान्डबू की संधि
5.4.4 प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणाम
5.5 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध
5.5.1 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण
5.5.2 युद्ध
5.5.3 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणाम
5.6 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध
5.6.1 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण
5.6.2 युद्ध
5.6.3 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणाम
5.7 बर्मा नीति की आलोचना
5.8 विलय के बाद बर्मा की स्थिति
5.9 सारांश
5.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारत में व्यापार के उद्देश्य से आयी ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतीय राजनीतिक अराजकता एवं शून्यता का लाभ उठाकर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सपने का साकार करने लगी। अठारहवीं सदी में अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों से संघर्ष के बहाने भारतीय शक्तियों पर नियंत्रण प्रारंभ किया तथा

धीरे-धीरे अधिकार करना शुरू किया। **1818 ई0** तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध के पश्चात भारत में केवल पश्चिमोत्तर क्षेत्र को छोड़कर अंग्रेजों का अधिकार लगभग पूर्ण हो गया। इसलिए अंग्रेजों ने भारत के पड़ोसी क्षेत्रों पर अपनी निगाहें लगायी। बर्मा भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्वोत्तर किनारे से लगा क्षेत्र, आर्थिक एवं सामरिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण था। इसलिए अंग्रेजों ने वर्मा पर नियंत्रण का प्रयास प्रारंभ किया और **1885 ई0** में भारतीय साम्राज्य के अंतर्गत मिला लिया। भारत सरकार अधिनियम, **1935** के अंतर्गत बर्मा को भारतीय साम्राज्य से अलग किया गया।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत के पूर्वोत्तर सीमा से सटे पड़ोसी देश बर्मा पर अंग्रेजों की साम्राज्यवादी मनसा से अवगत कराना है, इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे -

1. अंग्रेजों की सामा्रज्यवादी नीति और भारत के पड़ोसी देश बर्मा से संबंध।
2. बर्मा के साथ संघर्ष प्रारंभ होना।
3. बर्मा का ब्रिटिश भारतीय सामा्रज्य के लिए महत्व।
4. बर्मा के साथ अंग्रेजों द्वारा लड़े गये तीन युद्ध।
5. आंग्ल - बर्मा युद्धों के परिणाम।

5.3 भारत में अंग्रेजों द्वारा वैदेशिक नीति की शुरूआत

भारत में अंग्रेजों द्वारा साम्राज्य निर्मित करने की प्रक्रिया के क्रम में भारतीय सीमा पर स्थित राज्यों से उनका संबंध स्वाभाविक था। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में पंजाब एवं सिंध को छोड़कर शेष भारत पर अंग्रेजों का नियंत्रण लगभग स्थापित हो गया। पूर्वोत्तर में भारतीय सीमा पर बर्मा भी सामा्रज्य विस्तार में संलग्न था। लार्ड हेस्टिंग्स ने जब ब्रिटिश सर्वोच्चता के सिद्धान्त का अनुसरण अक्षरशः करना प्रारंभ किया तब बर्मा के साथ कड़ा रूख अपनाना पड़ा। साथ ही अपने नव निर्मित भारतीय साम्राज्य को अन्य यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों से बचाने के लिए भी अंग्रेजों ने एक मजबूत एवं आक्रामक विदेश नीति की शुरूआत की।

5.4 प्रथम आंग्ल बर्मा युद्ध (1824 - 1826 ई0)

बर्मा के साथ अंग्रेजों के व्यापारिक संबंध सोलहवीं सदी के अंतिम वर्षों से चले आ रहे थे, परंतु शक्तिशाली बर्मा ने अंग्रेजों को कोई महत्व नहीं दिया। उन्नीसवीं सदी के आरंभ होते ही परिस्थितियाँ बदलीं। अंग्रेज अपनी सफलताओं से महत्वाकांक्षी हो चुके थे तथा बर्मी अपनी विस्तारवादी नीति

का अनुकरण कर रहे थे। अराकान एवं असम पर अधिकार को लेकर विवाद प्रारंभ हुआ और अंग्रेजों का बर्मा के साथ युद्ध शुरू हुआ।

5.4.1 प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण

1824 ई0 में प्रारंभ प्रथम - आंग्ल बर्मा युद्ध का कारण बर्मा तथा अंग्रेजों के हितों की टकराव था। बर्मा के साथ अंग्रेजों का संबंध काफी साधारण था, परंतु बंगाल पर अधिकार स्थापित होने के पश्चात सीमा पर स्थित बर्मा के साथ पड़ोसी राज्य का संबंध स्थापित हुआ। अंग्रेजों ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में बर्मा के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के अनेक प्रयत्न किए। अंग्रेजों द्वारा बर्मा भेजे गए दूतों में कैप्टन सिम्स (**1795 ई0**), कैप्टन कॉक्स (**1797 ई0**) पुनः कैस्टन सिम्स (**1802 ई0** तथा **1802 ई0**) तथा कैप्टन केनिंग (**1809 ई0** तथा **1811 ई0**) प्रमुख हैं। परंतु शक्तिशाली एवं अहंकारी बर्मा ने इन दूतों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया और अंग्रेजों को किसी प्रकार के व्यापारिक या राजनीतिक छूट नहीं दी। बर्मा ने अराकान पर अधिकार के पश्चात पुरानी सीमा स्थापित करने की बात की। परंतु अब अंग्रेज - मराठा संघर्ष के पश्चात अंग्रेजों का मनोबल तथा साम्राज्यवादी मनसा काफी बढ़ चुकी थी। इसलिए दोनो शक्तियों में टकराव अपरिहार्य था।

आंग्ल - बर्मा टकराव का दूसरा कारण सीमा विवाद था। बर्मा में आवा को राजधानी के रूप में विकसित कर अलोमपोरा ने बर्मा को एक सामा्रज्य में परिवर्तित कर दिया। उसने इरावदी नदी क्षेत्र, पेगू, तिनासरीम तथा अराकान क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में बर्मा ने असम तथा मणिपुर पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् सीमा विवाद प्रारंभ हुआ। **1818 ई0** में बर्मा ने इतिहास का हवाला देते हुए चटगांव तथा ढाका सहित एक बड़े भू-भाग की मांग की जो कभी अराकान के अंग थे। साथ ही बर्मा ने मांग न माने जाने की स्थिति में युद्ध की धमकी दी। इस समय लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल था। उसके निर्देशन में वार्ता प्रारंभ हुई। वह युद्ध नहीं चाहता था, क्योंकि इस समय अनेक आंतरिक समस्याऐं उसके समक्ष थी। परन्तु **1823 ई0** में लार्ड एमहर्स्ट के गवर्नर जनरल बनने के उपरांत सीमा विवाद ने युद्ध का रूप धारण कर लिया।

अंग्रेजों और बर्मा के बीच तनाव का कारण सीमा पार से आने वाले शरणार्थियों की समस्या भी थी। अराकान में शोषण एवं दमन से तंग आकर लोग अंग्रेजी साम्राज्य की सीमा में आने लगे। **1794 ई0** में शरणार्थियों का पीछा करते हुए लगभग **5000** बर्मी सैनिकों ने भारतीय सीमा में प्रवेश कर अंग्रेजों से उन्हें वापस लौटाने की मांग की। इस समय अंग्रेज भारत से उलझे हुए थे इसलिए उन्होनें झगड़ा टालते हुए शरणार्थियों को वापस लौटा दिया। परंतु यह समस्या जारी रही और उन्नीसवीं सदी में तनाव बढ़ता गया और युद्ध का कारण भी बनी।

भारत में लार्ड एमहर्स्ट का गवर्नर जनरल बनकर भारत आना बर्मा युद्ध का अवसर बना। एमहर्स्ट ने भारत पहुंचने से पहले ही घोषणा की थी कि बर्मा के साथ शांतिपूर्ण नीति में बदलाव की जरूरत है। इस परिस्थिति में बर्मा दरबार की अदूरदर्शिता, अज्ञानता एवं उदण्डता ने आग में घी का काम किया। अराकान, मणिपुर, असम आदि पर अधिकार के कारण बर्मा अपने आपको काफी

शक्तिशाली मान रहा था। बर्मा के सेनापति महाबुंदेला का अनुमान कि वह अंग्रेजों को भी पराजित कर सकता है। वह बर्मियों की तुलना शेर तथा अंग्रेजों की तुलना गीदड़ से करता था। सामान्य निवासियों की राय भी ऐसी ही थी। दूसरी तरफ अंग्रेज भारत में सामा्रज्य स्थापित करने के पश्चात पूर्वोत्तर र में भी साम्राज्य विस्तार को इच्छुक थे। पूर्वोत्तर में चीनी विस्तार को रोकने के लिए भी बर्मा पर नियंत्रण आवश्यक था। एमहर्स्ट घोर साम्राज्यवादी था। अतः अब बर्मा तथा अंग्रेजी सामा्रज्यवाद के बीच संघर्ष अपरिहार्य हो गया।

शाहपुरी द्वीप को लेकर प्रारंभ हुआ विवाद भी युद्ध का कारण बना। अंग्रेजों ने बर्मी चुंगी केन्द्र से बचने के लिए टेक नाफ दर्रे तथा शाहपुरी द्वीप पर अधिकार कर लिया था। इस द्वीप पर अंग्रेजों ने अपनी पुलिस चौकी बना ली। **1823** ई**0** में बर्मा ने अंग्रेजों से शाहपुरी द्वीप खाली करने की मांग की**,** जिसे अंग्रेजों ने अस्वीकार कर दिया। सितम्बर **1823** में बर्मी सेना ने शाहपुरी पर अधिकार करते हुए ढाका तथा मुर्शिदाबाद पर भी आक्रमण की धमकी दे डाली। इस प्रकार तनाव बढ़ता गया एवं संबंध खराब होते गए।

कछार में उत्पन्न राजनीतिक परिस्थिति ने आंग्ल - बर्मा युद्ध में तात्कालिक कारण की भूमिका निभायी। कछार का सामरिक महत्व काफी अधिक था। पूर्वोत्तर क्षेत्र से बंगाल आने का सबसे सरल तथा सुरक्षित मार्ग कछार होकर गुजरता था। कछार के शासक गोविन्द चंद्र को आंतरिक विद्रोह के कारण राज्य छोड़कर भागना पड़ा। उसने अंग्रेजों से सहायता मांगी परंतु उसे निराश होना पड़ा। उसने बर्मा से सहातया मांगी और बर्मी सेना ने कछार में हस्तक्षेप किया और गोविन्द्र चंद्र को पुनः कछार का शासक बना लिया। कछार में बढ़ते बर्मी प्रभाव को एमहर्स्ट ने बंगाल तथा सिलहट दोनों के लिए खतरनाक माना। असम के बारे में भी एमहर्स्ट की यही राय थी। वहाँ से ब्रह्मपुत्र नदी के सहारे आसानी से कम समय में बंगाल पर आक्रमण हो सकता था। इसलिए एमहर्स्ट ने गोविन्द चन्द्र को अपना संरक्षण प्रदान करते हुए अपनी एक सेना कछार भेज दी। गोविन्द चन्द्र ने अपना आंतरिक शासन अंग्रेजों के हाथ में दे दिया तथा **10** हजार रु**0** वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार अंग्रेजों ने जयन्तिया के पहाड़ी राज्य पर अपना अधिकार स्थापित किया। बर्मा ने अपनी एक सेना कछार भेजी और दूसरी टूकड़ी को शाहपुरी द्वीप पर। एमहर्स्ट इस अवसर की तलाश में था। उसने बर्मा को आक्रांता घोषित करते हुए **24** फरवरी **1824** ई**0** को बर्मा के विरूद्व युद्ध की घोषणा कर दी।

5.4.2 युद्ध

इस प्रकार उपरोक्त कारणों से प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध प्रारंभ हो गया। बर्मा सैनिक दृष्टि से अंग्रेजी सेना से कमजोर था। परंतु बर्मा की भौगोलिक स्थिति तथा बर्मी सैनिकों की रणनीति बर्मा के पक्ष में थी। बर्मा घने जंगल**,** दलदल**,** पहाड़ियों तथा इरावदी**,** सिवांता एवं सालवीन नदी घाटियों के कारण

बाह्य आक्रमण से प्राकृतिक रूप से सुरक्षित था। अंग्रेजों के लिए ये बाधाऐं थी। अंग्रेजों ने दो तरफ से आक्रमण की योजना बनाई। एक सेना उत्तर - पूर्व से स्थल मार्ग से भेजी गई जिसका उद्देश्य पूर्वोत्तर के उन प्रदेशों पर प्रभुत्व स्थापित करना था, जिस पर बर्मा ने निगत वर्षों में अधिकार किया था। दूसरी सेना समुद्री मार्ग से रंगून पर अधिकार करने के लिए भेजी गई। इस नव सेना में लगभग **11000** सैनिक थे जिनका नेतृत्व आर्किबॉल्ड कैम्पबेल कर रहा था तथा जहाजों का नेतृत्व कैप्टन मैरियट के हाथ में था। कई परेशानियों के बावजूद कैम्पबेल ने मई **1824** ई0 में रंगून पर अधिकार कर लिया। बर्मी सेनापति महाबून्देला भी चटगांव के समीप रामू नामक स्थान पर पराजित हुआ। रंगून से पीछे हटते हुए बर्मी सेना आपूर्ति एवं राशन भी ले गयी। इसी समय वर्षा प्रारंभ हो गई जिसने अंग्रेजी सेना की गति पर अवरोध लगा दिया तथा सैनिकों में बीमारी फैलने लगी। इसलिए युद्ध की गति धीमी हो गई।

बर्मा के राजा ने सेनापति महाबुंदेला को दक्षिण बुलाया जो **60000** सैनिकों के साथ रंगून के समीप पहुंचा। परंतु दिसम्बर **1824** ई0 में पराजित हो गया। महाबुंदेला को पीछे हटना पड़ा। उसने दोनाबेब में मोर्चा संभाला जहां अप्रैल **1825** ई0 तक अंग्रेजों को रोका। परंतु अचानक गोली लगने से उसकी मृत्यु हो गई और बर्मी सेना ने पीछे हटना प्रारंभ कर दिया। बर्मा के लिए बुंदेला की मृत्यु एक अपूरणीय क्षति थी। कैम्पबेल ने **25** अप्रैल को निचला बर्मा या दक्षिणी बर्मा की राजधानी प्रोम पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजी सेना ने वर्षा का मौसम यहीं बिताया। अंग्रेजों ने बर्मा के साथ वार्ता प्रारंभ की परंतु युद्ध भी चलता रहा। अंग्रेजी सेना बर्मा की राजधानी आवा से केवल **60** मील दूर यांडबू तक पहुंच गई। बर्मियों ने अब संधि का प्रस्ताव भेजा। बर्मा के शासक पंगियोदया तथा ब्रिटिश भारतीय सरकार के बीच **26** फरवरी, **1826** ई0 को याण्डबू की संधि हो गई। इस प्रकार प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध समाप्त हुआ।

5.4.3 याण्डबू की संधि, 26 फरवरी 1826 ई0

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि अंग्रेजों की साम्राज्यवादी तथा बर्मा की विस्तारवादी नीति के कारण तनाव बढ़ा जिसने **1824** ई0 में युद्ध का रूप धारण कर लिया। युद्ध का परिणाम बर्मा के आशा के विपरीत रहा और **1826** ई0 में याण्डबू की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि के प्रावधान या शर्तें निम्नांकित थी -

1. अंग्रेजों ने युद्ध में हुई क्षति की पूर्ति के लिए बर्मा पर एक करोड़ रुपये थोप दिये, जिसे बर्मा ने किस्तों में देने का वचन दिया।
2. अंग्रेजों ने बर्मा से अराकान, तिनसरीम, येह, तवाय तथा मर्गी का क्षेत्र ले लिया।
3. बर्मा ने असम, कछार तथा जयन्तिया में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया।
4. मणिपुर को स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिया गया और बर्मा ने यह स्वीकार किया कि मणिपुर से पलायन कर गया शासक गंभीर सिंह के आने पर उसे राजा के रूप में स्वीकार किया जाएगा।

5. बर्मा तथा भारत एक दूसरे के साथ दूतों का आदान-प्रदान करेंगे।

6. दोनों के मध्य एक व्यापारिक संधि की जाएगी, जो दोनों के लिए लाभप्रद होगी।

7. दोनों ने एक दूसरे का मित्र होने का वायदा किया।

8. ब्रिटिश रेजिडेण्ट आवा में नियुक्त किया गया। इस प्रकार यह संधि स्पष्टतः अंग्रेजों के पक्ष में थी।

5.4.4 प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणाम

इस प्रकार प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध याण्डबू की संधि से समाप्त हुआ। इस युद्ध के परिणामस्वरूप ब्रिटिश रेजिडेण्ट मेजर बर्नी की आवा में नियुक्ति हुई। इस युद्ध के कारण अंग्रेजों को बर्मा में सीमित अर्थों में लाभ प्राप्त हुए। राजदरबार में हस्तक्षेप करना शुरू किया। व्यापारिक संधि के द्वारा अनेक अर्थिक लाभ सुरक्षित किए। बर्मा से पूर्वोत्तर क्षेत्र के अधिकृत सभी क्षेत्र अंग्रेजों ने अपने भारतीय साम्राज्य में मिला लिया। जंगल तथा पहाड़ी क्षेत्र की आर्थिक एवं सामरिक महत्व अंग्रेजों की समझ में आ गई और भविष्य में इस क्षेत्र पर पूर्णतः अधिकार की योजना बनानी प्रारंभ कर दी।

5.5 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध

प्रथम आंग्ल बर्मा युद्ध की मिश्रित सफलता के पश्चात अंग्रेज काफी उत्साहित थे। **1837 ई0** में बर्मा के नये शासक थारावादी की नीति तथा सिंध - पंजाब विजय से उत्साहित अंग्रेजों की नीति के कारण शीघ्र ही बर्मा में हितों का टकराव प्रारंभ हुआ और डलहौजी के शासनकाल में द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध प्रारंभ हो गया।

5.5.1 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण

याण्डबू की संधि द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध का मूल कारण साबित हुई। इस संधि से अंग्रेजों को बर्मा में बढ़त मिली, परंतु बर्मा पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं हुआ। इसलिए अंग्रेज इस संधि से बढ़कर कुछ और अधिक प्राप्त करना चाहते थे। दूसरी तरफ बर्मा राज दरबार तथा जनता दोनों ही इस संधि से खुश नही थे। बर्मा के नये शासक थारावादी (**1837 - 1845 ई0**) ने बर्मी परम्परा का हवाला देते हुए इस संधि को अस्वीकार कर दिया। बर्मी परम्परा के अनुसार नया राजा पुरानी संधियों तथा समझौतों को स्वीकृति प्रदान करता था। पुराने समझौते स्वतः लागू नहीं माने जाते थे क्योंकि यह माना जाता था पूर्व शासक द्वारा स्वीकृत सभी संधियां या समझौते उसके साथ ही समाप्त हो जाती थी। इस प्रकार यह संधि तनाव का कारण बनी। दूसरी ओर अंग्रेज व्यापारी हमेशा अपने उत्पीड़न तथा शोषण की बात कर रहे थे, जबकि बर्मी अधिकारी वर्ग अंग्रेज व्यापारियों के कर - चोरी तथा सामान्य जनता उनके अहंकार से आहत थी। बर्मा के शासक थारावादी ने ब्रिटिश रेजिडेण्ट को अस्वीकृत कर दिया। इस प्रकार तनाव बढ़ रहा था।

आंग्ल - बर्मा युद्ध का दूसरा कारण दक्षिण - पूर्व एशिया में अमेरिका और फ्रांस का बढ़ता प्रभाव और उससे उत्पन्न ब्रिटिश आशंका थी। **1840** के दशक में एक बार पुनः अमेरिका तथा फ्रांस की नजर दक्षिण - पूर्व एशिया तथा सुदूर पूर्व पर पड़ी। अंग्रेजों ने चीन में अपना प्रभाव बढ़ाना प्रारंभ कर दिया था। बर्मा समुद्र से जुड़ा हुआ था तथा चीन एवं भारतीय साम्राज्य के लिए खतरा बन सकता था। अंग्रेजों को आशंका होने लगी कि बर्मा पर अन्य यूरोपीय अथवा अमेरिकी प्रभाव का बढ़ना ब्रिटिश हित के विपरीत होगा। साथ ही प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध और याण्डबू की संधि के पश्चात बर्मा में बसने वाले अंग्रेज व्यापारियों की संख्या काफी थी तथा पूंजी निवेश की मात्रा बढ़ गयी थी। इसलिए ब्रिटिश हितों को सुरक्षित रखने के लिए भी बर्मा पर नियंत्रण आवश्यक था।

ऐसी परिस्थति में डलहौजी का भारत में गवर्नर जनरल बनकर आना युद्ध प्रारंभ करने का अवसर बना। डलहौजी घोर साम्राज्यवादी था। उसने भारत में साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया को पूर्ण किया और उसके बाद पड़ोसी देश बर्मा पर नजर डाली। बर्मा और अंग्रेजों के संबंध **1837** ई**0** के बाद दिन - प्रतिदिन खराब हो रहे थे। विवाद का कारण आर्थिक था। बर्मा से व्यापार में जुड़े व्यापारियों की शिकायत थी कि बर्मी अधिकारी निर्धारित कर के अतिरिक्त कर लेते हैं तथा नजराना की मांग करते हैं। रंगून से अंग्रेज व्यापारियों ने डलहौजी को एक शिकायती तथा प्रार्थना पत्र लिखा कि उन्होंने काफी लम्बे समय से बर्मा - सरकार तथा अधिकारियों का अत्याचार एवं शोषण बर्दाश्त किया है और अब उससे उन्हें बचाने का दायित्व गवर्नर जनरल का है। इस पत्र के प्राप्त होते ही डलहौजी ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अंग्रेज नागरिकों की सुरक्षा की वचनवद्धता को दोहराया। अंग्रेजों ने शैफर्ड एवं लुइस कम्पनी के बकाया राशि की मांग बर्मा दरबार से की। साथ ही डलहौजी ने नौ-सेना प्रमुख लैम्बर्ट को आदेश दिया कि वह अपने समस्त जहाजों तथा उपलब्ध समस्त युद्ध पोतों को लेकर रंगून के लिए प्रस्थान करे। लैम्बर्ट ने रंगून पहुँचकर बर्मा के गवर्नर पर अत्याचार का आरोप लगाते हुए बर्मा के राजा तथा रंगून के गवर्नर को पत्र लिखा। पत्र में उत्तर के लिए पांच सप्ताह का समय दिया गया। दोनों ने इस प्रश्न का उत्तर समय से पूर्व दे दिया और शिकायतों के निवारण का आश्वासन दिया। इसी समय रंगून का गवर्नर बदल गया जिससे मिलने एक दूत - मण्डल गया। परन्तु मुलाकात न हो सकी। अंग्रेजों ने इसे अपने अपना माना। उन्होंने गवर्नर से क्षमा मांगने तथा बढ़ी हुई क्षतिपूर्ति की राशि तुरंत देने की मांग की।

इसी बीच अंग्रेजों ने बर्मा के शाही जहाज को अधिकृत कर लिया। डलहौजी ने रंगून के गवर्नर को हटाने**,** क्षमा मांगने तथा अपै्रल **1852** ई**0** तक **100000** पौंड की राशि देने की मांग की। साथ ही युद्ध की पूरी तैयारी कर सेनापति जनरल गॉडविन को सेना के साथ बर्मा भेज दिया। बर्मी दरबार किं कर्तव्य विमूढ़ हो गया। अपै्रल **1852** ई**0** में गॉडविन ने पूरी ताकत से युद्ध प्रारंभ कर दिया।

5.5.2 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध 1852 ई0

इस प्रकार आपने देखा कि विभिन्न राजनीतिक, सामरिक, आर्थिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय कारणों से द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध प्रारंभ हुआ। जनरल गॉडविन तथा एडमिरल आस्टेन ने युद्ध प्रारंभ करते

हुए मर्तबान पर अधिकार कर लिया। पगोड़ा को ध्वस्त कर दिया गया। इरावदी डेल्टा के पश्चिम - उत्तर में स्थित बसीन पर अधिकार कर लिया गया। सितम्बर में डलहौजी रंगून पहुंच गया। प्रोम पर अंग्रेजों ने अक्टूबर तथा पेगू पर नवम्बर में अधिकार कर लिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने शीघ्रता से निचले या दक्षिणी बर्मा पर अधिकार कर लिया। डलहौजी बर्मा पर उस समय अधिकार नहीं करना चाहता था। इसकी मनसा थी कि बर्मा औपचारिक रूप से संधि कर निचले बर्मा को ब्रिटिश साम्राज्य के समर्पित कर दे। परंतु बर्मा ने ऐसा करने से अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप डलहौजी ने एक पक्षीय घोषणा करते हुए **10** दिसम्बर **1852** को पेगू अर्थात् निचले बर्मा को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया और युद्ध समाप्त घोषित कर दिया गया। इस प्रकार द्वितीय आंग्ल बर्मा युद्ध केवल आठ महीने में समाप्त हो गया।

5.5.3 द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणाम

द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणामस्वरूप पेगू अथवा निचला बर्मा से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिला लिया गया। इस विलय के पश्चात ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की सीमा सालवीन नदी के किनारे तक विस्तृत हो गई। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण बंगाल की खाड़ी तथा पूर्वी समुद्र तट पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। शेष बचा बर्मी क्षेत्र समुद्र मार्ग से वंचित हो गया। नव अधिकृत राज्य का कमिश्नर मेजर आर्थर फायर को नियुक्त किया गया। नव नियुक्त कमिश्नर ने कैप्टन फीच की सहायता से प्रशासनिक सुधार प्रारंभ किया। इस प्रकार डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति सफल रही और भविष्य में सम्पर्ण बर्मा पर अधिकार करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस युद्ध ने स्पष्ट कर दिया कि बर्मा पर भविष्य में अंग्रेज ही अधिकार करेंगे।

5.6 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध

अभी तक आपने अध्ययन किया कि **1852 ई0** निचले बर्मा पर अंग्रेजों के अधिकार के पश्चात दोनों के संबंध सुधरने लगे और ऐसा लग रहा था कि ब्रिटिश भारतीय प्रशासन तथा बर्मा के संबंध मधुर रहेंगे। परंतु अंग्रेजों की लालची निगाहें बर्मा पर थी जो **1885 ई0** आते - आते पुनः युद्ध के कगार पर पहुंच गई और एक निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें उद्देश्य था सम्पूर्ण बर्मा पर अधिकार।

5.6.1 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण

द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के पश्चात अंग्रेजों की मनसा की तात्कालिक पूर्ति तो हो गई**,** लेकिन दीर्घकाल तक उनकी इच्छा शांत न रह सकी। धीरे - धीरे बर्मा एवं भारत के बीच अनेक संधियां हुई। **1862 ई0** में हुई एक संधि के अनुसार अंग्रेजों को बर्मा सीमा में बसने तथा बर्मा होकर चीन से व्यापार की छूट मिल गई। इसी प्रकार**, 1867 ई0** में बर्मा ने अंग्रेजों के पक्ष में लकड़ी**,** तेल तथा कीमती पत्थरों के व्यापार का एकाधिकार छोड़ दिया। बर्मा में ब्रिटिश रेजिडेण्ट स्थायी हो गया था जिसे ब्रिटिश नागरिकों की सुरक्षा का दायित्व मिल गया था। धीरे - धीरे दबाब डालकर अंग्रेजों ने

लगभग कर मुक्त व्यापार तथा जल - स्थल मार्गों के उपयोग का अधिकार प्राप्त कर लिया। अंग्रेजों की मनसा सम्पूर्ण बर्मा पर अधिकार की थी। इसलिए वे इन सुविधाओं से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने असंतोष व्यक्त करना शुरू किया जो तनाव का कारण बना।

दूसरी तरफ बर्मा राजदरबार भी अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं था। राज परिवार, अधिकारी तथा सामान्य जन में अंग्रेजों के प्रति घृणा का भाव मौजूद था। बर्मा अपनी हार का बदला लेना चाहता था। अंग्रेजों के विविध आर्थिक - राजनीतिक अधिकारों को लेकर अंग्रेजों तथा बर्मा में विवाद प्रारंभ हुआ और आए दिन झड़प होने लगी। राज दरबार पुरानी परम्पराओं को भी बनाए रखना चाहता था। एक परम्परा के अनुसार राजा से मिलने आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को जूते बाहर ही उतारने पड़ते थे तथा राजा के समक्ष झूकना पड़ता था। अंग्रेजों का यह मंजूर नहीं था। इसलिए दोनों में तनाव बढ़ता गया।

अंतराष्ट्रीय राजनीति के कारण भी बर्मा और अंग्रेजों के बीच तनाव बढ़ा। अन्य सामा्रज्यवादी यूरोपीय देश भी बर्मा में अपना व्यापार तथा प्रभाव बढ़ाना चाहते थे। बर्मा का राजा भी ऐसा चाहता था। **1873** ई**0** में बर्मा ने फ्रांस से एक संधि के द्वारा बर्मी सैनिकों के प्रशिक्षण का प्रस्ताव रखा। अंग्रेजों के विरोध के कारण इस प्रस्ताव को छोड़ना पड़ा। इटली ने बर्मा को हथियार देने के लिए समझौता किया। परंतु इसे भी छोड़ना पड़ा। मध्य पूर्व तथा रूस के साथ भी बर्मा ने संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। बर्मा के राजा मिन्डन ने इंग्लैण्ड से समानता के आधार पर राजनीतिक संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया, परंतु असफल रहा। **1878** ई**0** तक बर्मा एवं भारतीय साम्राज्य के बीच संबंध सामान्य रहे। इसी वर्ष मिन्डन की मृत्यु हो गई और भारतीय परिस्थितियां भी परिवर्तित हों गई।

बर्मा का शासक बना थीबा, जो काफी उत्साही एवं साहसी था। भारत में गवर्नर जनरल लिटन ने अग्रगामी साम्राज्यवादी नीति प्रारंभ कर रखी थी। इसलिए अंग्रेजों ने बर्मा के नये शासक के समक्ष नयी मांगे रखी। थीबा ने राज दरबार में जूते उतारकर प्रवेश करने की परम्परा को समाप्त करने की मांग को छोड़कर सभी सुविधाऐं प्रदान कर दीं। **1879** ई**0** में थीबा पर राज दरबार के कुछ व्यक्तियों की हत्या के आरोप लगे। लिटन के निर्देश पर ब्रिटिश रेजिडेण्ट ने राजा को विरोध प्रदर्शित करते हुए एक पत्र लिखा। बर्मा ने इस पत्र को महत्व नहीं दिया। बर्मा स्थित अंग्रेजों ने मांग की कि सम्पूर्ण बर्मा पर अधिकार कर लिया जाय। ब्रिटिश भारतीय प्रशासन ने यह मांग स्वीकार नहीं की, परंतु बर्मा एवं अंग्रेजों के संबंध खराब होने लगे। ब्रिटिश राजदूत ने मांडले छोड़ दिया।

इसी समय लिटन अफगानिस्तान से असफल हो चुका था। इसलिए प्रतिष्ठा बचाने के लिए बर्मा में हस्तक्षेप करना चाहता था। नए ब्रिटिश प्रधान मंत्री ग्लेडस्टन ने इसकी अनुमति नहीं दी। अंग्रेज व्यापारी बर्मा दरबार के व्यापारिक नीति से नाखुश थे। बर्मा के सभी एकाधिकार खत्म करने की मांग कर रहे थे। **1882** ई**0** में बर्मा तथा ब्रिटिश भारतीय प्रशासन के बीच समझौता हुआ, जिससे

बर्मा के सम्पूर्ण व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिए गए। इस संधि ने भी अंग्रेजों को संतुष्ट नहीं किया जबकि राजा का राजा नाराज था।

थीबा की वैदेशिक नीति से अंग्रेज खुश नहीं थे। वह अन्य यूरोपीय शक्तियों से संबंध स्थापित करना चाहता था। **1883 ई0** में उसने एक दूत मण्डल फ्रांस भेजा। अंग्रेजों ने स्पष्ट कर दिया कि यह मिशन केवल व्यापारिक होना चाहिए। **1885 ई0** में हुई विशुद्ध व्यापारिक संधि को भी अंग्रेजों ने शंका की दृष्टि से देखना शुरू कर किया। एक अफवाह के अनुसार बर्मा ने फ्रांस को रेल निर्माण, हीरे के खनन का अधिकार आदि प्रदान कर दिया था। अंग्रेज बढ़ते फ्रांसीसी प्रभाव से चिंतित थे तथा इसे अपने व्यापारिक एकाधिकार में हस्तक्षेप माना। इसलिए व्यापारी वर्ग ने ब्रिटिश प्रशासन पर बर्मा को जीतने का दबाव बढ़ाना प्रारंभ किया। लंदन के चैम्बर ऑफ कॉमर्स ने बर्मा पर अधिकार करने या कठपूतली स्वरूप शासक पदासीन करने की मांग की। यहां से इंग्लैण्ड की बर्मा नीति में परिवर्तन प्रारंभ हुआ।

इस समय भारतीय गवर्नर जनरल ने फ्रांसीसी प्रभुत्व को रोकने की ठान ली और इसके लिए सम्पूर्ण बर्मा पर अधिकार करना आवश्यक था। **1885 ई0** आते - आते अंग्रेजों और बर्मा के संबंध काफी खराब हो चुके थे। दोनो ही पक्ष युद्ध चाह रहे थे तथा बहाने की तलाश में थे। बर्मा - मणिपुर सीमा विवाद ने यह अवसर प्रदान किया। सीमांकन आयोग द्वारा **1881 ई0** से निर्धारित सीमा को बर्मा ने मानने से इनकार कर दिया तथा स्थापित पत्थरों को उखाड़ने की धमकी दे डाली। बर्मा के इस संभावित आक्रमण के विरूद्व अंग्रेजों ने मणिपुर को समर्थन देने का वायदा किया। बर्मा ने ऐसा कुछ भी नहीं किया, इसलिए लग रहा था कि युद्ध टल गया। परंतु बर्मा में स्थित बम्बई-बर्मा व्यापारिक कॉरपोरेशन का विवाद प्रारंभ हो गया। यह कम्पनी जंगल के ठेके का काम करती थी। बर्मा के अधिकारियों ने इस कम्पनी पर **10** लाख रु**0** कर चोरी तथा बेइमानी का आरोप लगाया। आरोप सिद्ध होने पर बर्मा सरकार ने ठेका रद्द न करके केवल **23,59,066.00** रु**0** का जुर्माना लगाया जो चार किश्तों में दिया जाना था। कम्पनी ने भारत - सरकार से रक्षा की मांग करते हुए हस्तक्षेप का आग्रह किया। भारत सरकार ने हस्तक्षेप करते हुए अंग्रेज कमिश्नर को भेजा। उसने बर्मा दरबार से इस जुर्माने को रद्द करने तथा मामला भारत के गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि को सौंपने की मांग की। बर्मा दरबार द्वारा इस प्रस्ताव को अस्वीकृत करने पर **22** अक्टूबर **1885 ई0** को निम्नलिखित मांगे रखी गयीं -

1. बर्मा - दरबार एक अंग्रेज प्रतिनिधि को अपने दरबार में आमंत्रित करे तथा उसकी सलाह से विवाद का समाधान करे।
2. तत्काल कम्पनी के विरूद्व कोई कार्यवाही नहीं की जाय।
3. भविष्य में एक अंग्रेज प्रतिनिधि हमेशा दरबार में रहेगा।

4. बर्मा होते हुए चीन से व्यापार पूरी तरह अंग्रेजों के द्वारा किया जाय।

5. वैदेशिक नीति का निर्धारण भारतीय गवर्नर जनरल की राय से की जाय।

उपरोक्त मांगों को मानने की सीमा **10** नबम्बर तय की गयी। बर्मा दरबार से **9** नबम्वर को उसका उत्तर मिला जिसमें कहा गया कि राज दरबार कम्पनी की प्रार्थना पर विचार करेगा। साथ ही बर्मा ने तीसरी एवं चौथी मांगें स्वीकार कर ली तथा पांचवी के बारे में संबंधित देशों से राय लेने की बात कही गयी।

दूसरी तरफ गवर्नर जनरल डफरिन ने युद्ध की तैयारी प्रारंभ कर दी थी। उसने बर्मा पर मांगें नहीं मानने का आरोप लगाते हुए **9** नवम्बर **1885** ई**0** को ही युद्ध की घोषणा कर दी। उधर बर्मा के शासक थीबा ने भी युद्ध प्रारंभ कर दिया।

5.6.2 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध की लड़ाईयां

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि **1852** ई**0** के बाद अंग्रेजों की अनुचित मांगों के मानने के बावजूद भी बर्मा पर **1885** ई**0** में दबाव बनाकर उसकी आंतरिक एवं विदेश नीति पर नियंत्रण का प्रयास अंग्रेजों ने किया और असफल होने पर युद्ध की घोषणा कर दी। शीघ्र ही अंग्रेजों ने मॉडले पर अधिकार कर लिया तथा बर्मा के शासक थीबा में आत्मसमर्पण कर दिया। अपने ही महल में बन्दी के रूप में रहा, जिसे बाद में महाराष्ट्र के रत्नागिरी नामक स्थान पर राजनीतिक कैदी के रूप में रखा गया। **01** जनवरी **1886** ई**0** उपरि बर्मा को भी ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिलाने की घोषणा कर दी गयी। इस प्रकार सम्पूर्ण बर्मा पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। इस प्रकार यह निर्णायक युद्ध दो महीने के अंदर ही समाप्त हो गया।

5.6.3 तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के परिणाम

तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध जो **1885** ई**0** में लड़ा गया काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ। उपरि बर्मा को अधिकृत कर लिया गया जिससे सम्पूर्ण बर्मा पर अंग्रेजों का एकाधिकार स्थापित हो गया। अंग्रेजों ने रंगून को बर्मा की नई राजधानी बनाई। इस समय ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा चीन तक विस्तृत हो गई। बर्मा को भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य में एक राज्य का दर्जा दिया गया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण पूर्वी भारतीय समुद्र तट तथा बंगाल की खाड़ी पर अंग्रेजों का अधिकार पूर्ण हो गया।

5.7 बर्मा नीति की आलोचना

इस प्रकार उपरोक्त विवरण में आपने अध्ययन किया कि अंग्रेजों ने धीरे - धीरे सम्पूर्ण बर्मा पर अधिकार कर लिया। बर्मा के साथ हुए तीन युद्धों में व्यय की गई राशि भारतीय राजस्व से दी गई जिससे भारत का शोषण बढ़ा। बर्मा का भारतीय साम्राज्य में विलय अंग्रेजों की लालची प्रवृत्ति तथा नंगा सामा्रज्यवाद का जीता जागता उदाहरण है। अंग्रेजों ने फ्रांसीसी प्रभुत्व का बहाना बनाकर अपने आर्थिक लाभ के लिए बर्मा पर अधिकार किया। पी**0**ई**0** रावर्ट्स का कहना कि अंग्रेजों ने

पूरब के इस 'अर्द्ध - सम्य' क्षेत्र पर अधिकार कर लिया, ब्रिटिश उपनिवेशवाद के "सम्य बनाने के मिशन" का उदाहरण है।

5.8 विलय के पश्चात बर्मा की स्थिति

अंग्रेजों ने **1886** ई**0** में बर्मा पर अधिकार करने के पश्चात उसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिला लिया और एक प्रांत का दर्जा दिया। लगभग एक दशक तक बर्मा में गुरिल्ला युद्ध तथा विद्रोह चलते रहे। सीमा पर स्थित जनजातियों जैसे शान तथा शिन का विरोध काफी समय तक चला। परंतु धीरे - धीरे अंग्रेजों ने अपनी लोकप्रिय नीतियों के कारण बर्मा में शांति स्थापित कर ली। **1935** ई**0** के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत बर्मा को एक अलग प्रांत बनाने की घोषणा की गई। इस प्रावधान के अंतर्गत बर्मा को **1** अप्रैल **1937** ई**0** को भारत से अलग करते हुए अलग औपनिवेशिक राज्य की श्रेणी में रखा गया। इस प्रकार बर्मा की इंगलैण्ड प्रत्यक्ष प्रशासन तथा शोषण प्रारंभ हुआ।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1. प्रथम आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण तथा परिणाम।
2. द्वितीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण तथा परिणाम।
3. तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारण तथा परिणाम।
4. अंग्रेजों द्वारा बर्मा पर अधिकार।

5.9 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेजों द्वारा उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापना के क्रम में उनका संबंध बर्मा के साथ प्रारंभ हुआ। यह संबंध विशुद्ध आर्थिक तथा व्यापारिक था। परंतु अंग्रेजों की नजर में आर्थिक लाभ अधिकतम करने के लिए बर्मा पर अधिकार करना जरूरी था। साथ ही भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से भी बर्मा महत्वपूर्ण था। भारत के गवर्नर जनरल एमहर्स्ट, डलहौजी तथा डफरिन के शासनकाल में बर्मा के साथ युद्ध हुआ और अन्ततः **1886** ई**0** में बर्मा के विलय की घोषणा कर दी गयी। अंग्रेजों ने अपनी इस औपनिवेशिक विस्तार को मानवीय आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया। **1935** ई**0** तक बर्मा भारत का अंग रहा जब इसे अलग किया गया।

5.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 5.**4** प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध तथा इसके उप शीर्षक 5.4.1, 5.4.2, 5.4.3, 5.4.4।
2. देखिए 5.**5** द्वितीय आंग्ल-बर्मा युद्ध तथा इसके उप शीर्षक 5.5.1, 5.5.2, 5.5.3।
3. देखिए 5.**6** तृतीय आंग्ल-बर्मा युद्ध तथा इसके उप शीर्षक 5.6.1, 5.6.2, 5.6.3।

4. देखिए सम्पूर्ण इकाई।

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रिटिश - बर्मा गजेटियर खण्ड **1** एवं **2**

2. Fytche, A. – Burma, Past and Present 2 Vols.

3. Niobert, J. – Burma Under British Rule and before.

4. Harvey, G.E – History of Burma.

5. Andrew, W.P. – India and Her Neighbours.

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Majumdar, Raychaudhary and Datta – An Advanced History of India.

2. शर्मा**,** एल**0**पी**0 -** आधुनिक भारत।

3. Aggarwal, J.C. – Modern Indian History.

4. Chhabra, G-S – Advanced Study in the History of Modern India, Vol. 2

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय साम्राज्य में बर्मा के विलय की चर्चा कीजिए।

2. तृतीय आंग्ल - बर्मा युद्ध के कारणों तथा परिणाम की व्याख्या कीजिए।

इकाई छह

सिक्खों के साथ अंग्रेजों के संबंध

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सिक्खों का उत्कर्ष
6.4 रणजीत सिंह का उत्थान एवं उपलब्धियां
 6.4.1 रणजीत सिंह का प्रशासन
6.5 रणजीत सिंह एवं अंग्रेजों के संबंध
 6.5.1 रणजीत सिंह का मूल्यांकन
6.6 रणजीत सिंह के बाद सिक्ख राजनीति एवं अंग्रेजों का हस्तक्षेप
6.7 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध
 6.7.1 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध के कारण
 6.7.2 युद्ध
 6.7.3 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध के परिणाम
6.8 द्वितीय आंग्ल - सिक्ख युद्ध एवं पंजाब का विलय
 6.8 द्वितीय आंग्ल - सिक्ख युद्ध के कारण
 6.8 युद्ध
 6.8 द्वितीय आंग्ल - सिक्ख युद्ध के परिणाम
6.9 पंजाब का विलय
6.10 सारांश
6.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
6.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.14 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के दौरान सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना गुरू नानक के द्वारा हुई थी। परवर्ती मुगल शासकों की अदूरदर्शी धार्मिक नीति के कारण यह सम्प्रदाय धीरे-धीरे सैनिक एवं राजनीतिक स्वरूप धारण कर लिया। अठारहवीं सदी में मुगल साम्राज्य के विखण्डन तथा

अफगान आक्रमण विशेषकर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के परिणामस्वरूप पंजाब में राजनीतिक अराजकता तथा शून्यता व्याप्त थी। ऐसी परिस्थति में सिक्ख शक्ति का उद्भव एक क्षेत्रीय राजनीतिक शक्ति के रूप में हुआ। धीरे-धीरे यह राज्य विस्तृत हो रहा था तथा इसी समय पूर्वी भारत से ब्रिटिश सत्ता भी पूरे भारत पर अपना अधिकार क्षेत्र विस्तृत कर रही थी। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में महाराजा रणजीत सिंह के कुशल नेतृत्व में सिक्ख राज्य का चहुमुखी विकास तथा विस्तार हुआ। इसी समय आंग्ल - मराठा संघर्ष के दौरान अंग्रेजों की दृष्टि पंजाब पर पड़ी। महाराजा रणजीत सिंह की कुशल नीति के कारण अंग्रेजों से संबंध अच्छे थे। परंतु रणजीत सिंह रणजीत सिंह की मृत्यु के एक दशक के अंदर इस राज्य की आंतरिक कमजोरियां सामने आ गई। सिक्ख सरदारों के आपसी झगड़े का लाभ अंग्रेजों ने उठाया और आंग्ल - सिक्ख संघर्ष प्रारंभ हुआ। डलहौजी के समय अंग्रेजों ने आसानी से पंजाब पर अधिकार करते हुए **1849 ई0** में पंजाब को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिला लिया।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको मुगल साम्राज्य के विखण्डन के पश्चात सिक्ख साम्राज्य की स्थापना एवं विस्तार तथा अंग्रेजों के साथ हुए संघर्ष से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे -

1. सिक्खों का उत्कर्ष।
2. महाराजा रणजीत सिंह।
3. रणजीत सिंह के बाद सिक्ख राजनीति।
4. आंग्ल - सिक्ख संबंध।
5. अंग्रेजों का पंजाब पर अधिकार।

6.3 सिक्खों का उत्कर्ष

मध्यकालीन भारत में हिन्दू धर्म एवं समाज सुधार के लिए विभिन्न क्षेत्रों में भक्ति आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसी क्रम में पंजाब क्षेत्र में गुरू नानक **(1469-1539ई0)** द्वारा सिक्ख धर्म स्थापित हुआ। सतरहवीं सदी में मुगल शासकों के दमनात्मक नीति तथा धर्मान्धपूर्ण व्यवहार के कारण सिक्ख धर्म का सैन्यीकरण छठवें गुरू हरगोविन्द **(1606-1645ई0)** के द्वारा किया गया तथा सिक्खों का मुख्यालय अमृतसर से किरतारपुर स्थानान्तरित हुआ। सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरू गोविंद **(1675-1708ई0)** के समय सिक्ख धर्म और भी विस्तृत हुआ और यह मान लिया गया कि उनके पश्चात पवित्र ग्रंथ साहब को ही गुरू के रूप में माना जाएगा। गुरू गोविन्द सिंह के मरणोपरांत राजनीतिक विरासत बन्दा बहादुर को मिली, जिन्होने सिक्खों की सामान्य सभा "सरबत

खालसा" की स्थापना की। मुगल शासक फर्रूखशियर द्वारा **1716** ई**0** में बंदा बहादुर को दिए गए मृत्यु दण्ड के पश्चात् सिक्ख विरोध उभरा और सैनिक टुकड़ी "जत्था" निर्मित हुई। **1748** ई**0** में कपूर सिंह ने विभिन्न जत्थों को संगठित कर दल खालसा की स्थापना की, जिसका प्रथम नायक जस्सा सिंह को बनाया गया।

इसी समय पश्चिमोत्तर सीमा से भारत पर अहमदशाह अब्दाली के नेतृत्व में आक्रमण प्रारंभ हुआ। अब्दाली के आक्रमण का उद्देश्य भारत से केवल धन प्राप्त करना था। इसलिए लगातार हो रहे आक्रमण तथा पतनशील मुगल सत्ता के कारण पंजाब क्षेत्र में राजनीतिक शून्यता तथा अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस स्थिति का लाभ सिक्खों ने उठाया और अपनी शक्ति एवं सत्ता का विस्तार प्रारंभ किया। पानीपत की तीसरी लड़ाई **(1761** ई**0)** के पश्चात उत्तर भारत पर अफगानों तथा मराठों का प्रभाव कम हुआ, जिसका फायदा सिक्ख राज्य को मिला। **1764** ई**0** में सिक्खों ने लाहौर पर अधिकार कर इसे अपना मुख्यालय बनाया और यहां से सिक्ख सामा्रज्य का विस्तार किया। **1773** ई**0** में सिक्ख सामा्रज्य सहारनपुर से अटौक तथा मुल्तान से जम्मू तक विस्तृत था। सिक्ख राज्य का स्वरूप सामन्तवाद पर आधारित "धार्मिक संघ" था जिसमें सैनिक तत्व की अधिकता थी। दल-खालसा सबसे बड़ी सैन्य इकाई थी जो **12** हिस्सों में विभाजित थी जिन्हें मिसल कहा जाता था तथा उसके प्रमुख को मिसलदार कहा जाता था। धीरे धीरे यह सैनिक इकाई क्षेत्रीय प्रशासनिक इकाई में परिवर्तित हो गयी। यानि सिक्ख साम्राज्य **12** मिसल में विभाजित था। उन्हीं में से एक मिसल सुकारचकिया थी। इस मिसल का प्रभुत्व क्षेत्र रावी और चिनाब के बीच था। इसी मिसल का मिसलदार रणजीत सिंह बने जिन्होंने अपने प्रयास से सभी मिसल पर अपना आधिपत्य जमाया तथा एक प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया।

इस प्रकार सिक्खों का उत्कर्ष महाराजा रणजीत सिंह के काल में उत्तर भारत में एक प्रमुख शक्ति के रूप में हुआ।

6.4 रणजीत सिंह का उत्थान एवं उपलब्धियां

रणजीत सिंह का उद्भव एक मिसलदार से विस्तृत सिक्ख साम्राज्य संस्थापक के रूप में हुआ। यह उद्भव व्यक्तिगत सैनिक तथा नेतृत्व क्षमता, प्रशासनिक कुशलता, कूटनीति तथा दूरदर्शिता पर आधारति था। इसीलिए यह विस्तृत सामा्रज्य जिसका निर्माण महाराजा रणजीत सिंह ने किया था, संस्थागत आधार के अभाव में उनके मरणोपरान्त ताश के पत्ते की तरह बिखर गया।

रणजीत सिंह का जन्म **2** नवम्बर **1780** ई**0** को हुआ था। उनके पिता महा सिंह सुकारचकिया मिसल के मिसलदार थे। **1792** ई**0** में महा सिंह की मृत्यु गुजराँवाला में हो गई। इसलिए एक संरक्षक मण्डल के नेतृत्व मं े **12** वर्ष की उम्र में रणजीत सिंह को सुकारचकिया का

मिसलदार बनाया गया। संरक्षक मण्डल में रणजीत सिंह की माता, उनकी पत्नी की माता तथा दीवान लखपत राय थे। **1797** ई**0** में रणजीत सिंह ने समस्त कार्यभार स्वयं संभाल लिया। इसी समय अफगानिस्तान के नए शासक जमान शाह ने पंजाब पर तीन आक्रमण किए। आखिरी आक्रमण (**1798** ई**0**) के दौरान रणजीत सिंह ने जमानशाह की मदद की। ब्रिटिश इतिहासकार प्रिंसेप के अनुसार जमानशाह की कुछ तोपें झेलम नदी के दलदल मे फंस गई थीं, जिन्हें निकलवाकर रणजीत सिंह ने वापस कर दिया। जमानशाह ने **1798** ई**0** में रणजीत सिंह को राजा की उपाधि प्रदान की तथा लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया एवं उस पर अधिकार करने की अनुमति दे दी।

रणजीत सिंह ने राज्य विस्तार प्रारंभ किया। **1799** ई**0** में उसने लाहौर पर अधिकार कर इसे अपना मुख्यालय बनाया। **1802** ई**0** में भंगी मिसल को अधिकृत कर लिया जिससे अमृतसर पर उसका अधिकार हो गया। इस प्रकार सिक्खों की राजनीतिक राजधानी लाहौर तथा धार्मिक केन्द्र बिन्दु अमृतसर पर रणजीत सिंह का अधिकार हो गया। इसका अर्थ था, रणजीत सिंह सिक्खों का सबसे बड़ा सरदार बन गया। तीव्र गति से उसने झेलम से सतलज नदी तक का प्रदेश जीत लिया। सतलज नदी के पश्चिम के सभी सिक्ख सरदारों ने रणजीत सिंह की सर्वोच्चता स्वीकार कर ली। परंतु सतलज नदी के पूरब उसका अधिकार मजबूत नहीं था। कनिंघम के शब्दों में, "रणजीत सिंह विविधतापूर्ण और बिखरे परंतु विस्तृत सिक्ख राष्ट्र को एक संगठित राज्य अथवा राष्ट्रमण्डल में परिवर्तित करने का प्रयत्न प्रायः उसी प्रकार की बुद्धिमता पूर्ण योजना से किया जिस प्रकार गुरू गोविन्द सिंह ने एक समुदाय को जन-समुदाय में परिवर्तित करके नानक के आदर्शों को एक ध्येय तथा क्रियात्मक रूप प्रदान किया था। इसी उद्देश्य से रणजीत सिंह सतलज नदी के पूरब के क्षेत्रों पर भी अधिकार करना चाहता था।

26 जुलाई **1806** ई**0** रणजीत सिंह ने प्रथम बार सतलज नदी को पार किया तथा लुधियाना पर अधिकार कर लिया तथा पटियाला तक गया। अगले वर्ष उसने पुनः सतलज पार किया और पटियाला के महाराजा तथा उसकी पत्नी आसकौर के बीच मध्यस्थता की। रणजीत सिंह ने इस अभियान में छोटे-छोटे सरदारों से कर भी वसूले। इसलिए कुछ सरदार अंग्रेजों की सरंक्षण में चले गए। अंग्रेज सतलज नदी को सीमा बनाने की तैयारी कर रहे थे। इस समय नेपोलियन के आक्रमण के भय से अंग्रेजों ने रणजीत सिंह के साथ नरमी बरती। परन्तु यूरोप में नेपोलियन के पेनिनसुला युद्ध में फँसते ही गवर्नर जनरल मिन्टो ने आक्टरलोनी के नेतृत्व में एक सेना भेजी। उसने सतलज नदी के पूर्व के राज्यों को अपने संरक्षण में ले लिया तथा स्पष्ट कर दिया कि यदि रणजीत सिंह उन पर आक्रमण करता है तो उसे अंग्रेजों से युद्ध करना पड़ेगा। रणजीत सिंह को झुकना पड़ा और **1809** ई**0** में अमृतसर की संधि के द्वारा सतलज नदी को सीमा मान लिया तथा मित्रता का संबंध स्थापित हुआ।

इस प्रकार अमृतसर की संधि ने रणजीत सिंह को समस्त सिक्ख-राज्यों को संगठित करने की महत्वाकांक्षी योजना पर लगा दी। उसके बाद उसने पश्चिम तथा उत्तर की ओर ध्यान केन्द्रित किया। नेपाल के गोरखा नरेश अमरसिंह थापा के नेतृत्व में कांगड़ा घाटी जीतने का प्रयास रहे थे। रणजीत सिंह ने स्वयं अगस्त **1809 ई0** में कांगड़ा के शासक संसार चन्द्र से कांगड़ा घाटी जीत लिया तथा दीवान मोहकम सिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने गोरखों को परास्त किया। कांगड़ा विजय के पश्चात् उसने सतलज नदी के पश्चिम शेष बचे राज्यों पर अधिकार कर लिया।

अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु (**1773 ई0**) के पश्चात् सिक्खों ने मुल्तान एवं कश्मीर को छोड़कर लगभग अन्य सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। अफगानों की आपसी फूट का लाभ रणजीत सिंह को मिला। शाहशुजा ने काबुल पर अधिकार करने के लिए रणजीत सिंह से सहायता मांगी तथा कोह-ए-नूर नामक प्रसिद्ध हीरा रणजीत सिंह को भेंट किया। परन्तु रणजीत सिंह से निराश होकर शाहशूजा अंग्रेजों की शरण में चला गया। **1834 ई0** रणजीत सिंह ने अफगानियों से पेशावर जीत लिया। वहाँ के शासक दोस्त मुहम्मद के द्वारा पेशावर को पुनः जीतने का प्रयास किया गया। रणजीत सिंह के जनरल हरि सिंह नलवा ने पेशावर की सफलतापूर्वक रक्षा की तथा जमरूद का दुर्ग भी जीत लिया। इस प्रकार खैबर दर्रे तक का समस्त क्षेत्र रणजीत सिंह के अधीन आ गया।

महाराजा रणजीत सिंह ने मुल्तान पर अधिकार करने का प्रयास **1803 ई0** से प्रारम्भ किया था, परन्तु प्रत्येक बार असफलता ही हाथ लगी। **1818 ई0** में एक सफल अभियान के पश्चात् रणजीत सिंह ने मुल्तान पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार लगातार प्रयत्न के पश्चात् **1819 ई0** में रणजीत सिंह ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया। इसके उपरांत उसके डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माइल खाँ, बक्खर, लेह तथा मंकेरा पर अधिकार कर लिया। रणजीत सिंह की योजना सिंध पर अधिकार करने की थी, परन्तु अंग्रेजों ने उसके रोक लिया।

इस प्रकार महाराजा रणजीत सिंह ने अपने बाहुबल से पिता से प्राप्त छोटे से मिसल को वृहद् साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया और अपने आप को एक महान विजेता के रूप में स्थापित किया। दक्षिण और पूरब में उसके साम्राज्य विस्तार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के कारण नहीं हुआ परन्तु पश्चिम एवं उत्तर में उसने व्यापक विस्तार किया और अपने द्वारा निर्मित साम्राज्य में प्रशासनिक व्यवस्था लागू करने का प्रयास किया। **27** जून, **1839 ई0** को **59** वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

6.4.1 रणजीत सिंह की प्रशासनिक व्यवस्था

मध्ययुगीन भारतीय शासकों की भाँति रणजीत सिंह भी एक स्वेन्छाचारी तथा निरंकुश शासक था, परन्तु अत्याचारी नहीं। राज्य की सम्पूर्ण सैनिक एवं असैनिक शक्तियाँ महाराजा में

केन्द्रित थी। उसने किसी नयी संस्था का निर्माण नहीं किया। प्रशासन में धर्म हावी था। राज्य का स्वरूप ''धार्मिक राष्ट्रमण्डल'' था। वह अपने आपको खालसा का सेवक मानता था और खालसा के नाम से प्रशासन करता था। अपनी सरकार को सरकार-ए-खालसा भी कहा करता था। उसने गुरूनानक तथा गुरू गोविन्द सिंह के नाम से सिक्के चलाए। परन्तु वह धर्मान्ध तथा कट्टर नहीं था। प्रशासन में डोगरा-राजपूत, मुसलमान, फ्रांसीसी आदि उच्च पदों पर आसीन थे।

केन्द्रीय प्रशासन में महाराजा की सहायता के लिए एक मंत्रि परिषद् थी। मंत्रियों की नियुक्ति महाराजा करता था तथा मंत्रि परिषद् महाराजा के प्रति उत्तरदायी थी। सामूहिक उत्तरदायित्व की कोई धारणा नहीं थी।

प्रशासनिक सुविधा के लिए उसने साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित किया था, जिन्हें सूबा कहा जाता था। रणजीत सिंह के साम्राज्य में चार सूबे थे - लाहौर, मुल्तान, कश्मीर और पेशावर। सूबे का मुख्य प्रशासक नाजिम कहलाता था, जिसकी सहायता के लिए विभिन्न अधिकारी नियुक्त थे। सूबे को परगना तथा परगना को तालुकाओं में बाँटा गया था। प्रत्येक तालुका में **50** से **100** गाँव होते थे। तालुका का मुख्य अधिकारी कारदार कहलाता था। कारदार तालुका से कर वसूलता था। साथ ही वह खजांची तथा न्यायाधीश भी था। ग्राम प्रशासन पंचायतों के अधीन था जिसमें राजा का हस्तक्षेप कम था।

राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था जिस पर राज्य विशेष ध्यान देता था। कर लगाने में उदारता बरती जाती थी, परन्तु कर वसूली कठोरता से की जाती थी। भूमि कर की मात्रा उत्पादन का **33** से **40** प्रतिशत थी। कर का निर्धारण भूमि की उर्वरता के आधार पर किया जाता था। कृषकों के हितों का ध्यान रखा जाता था। उसके अलावा सीमा कर तथा चुंगी भी वसूला जाता था। दण्ड स्वरूप आर्थिक वसूली की जाती थी।

न्याय प्रशासन कठोर था। राज्य के प्रत्येक इकाई पर न्यायालय की व्यवस्था थी तथा प्रशासनिक अधिकारी ही न्यायाधीश का भी कार्य करते थे। राज्य का मुख्य न्यायालय लाहौर में था जिसे अदालत-ए-आला कहा जाता था। न्याय स्थानीय परम्परा के आधार पर होता था। दण्ड में आर्थिक दण्ड ज्यादा प्रचलित था क्योंकि आर्थिक दण्ड भी आय का स्रोत था।

रणजीत सिंह का सैन्य संगठन विशिष्ट था। खालसा सेना का संगठन प्रशासन की मुख्य विशेषता थी। सेना का आधार घुड़सवार थे। अश्व सेना दो तरह की थी। एक घुड़चढ़ा खास जिन्हें अपने घोड़े स्वयं रखने पड़ते थे और राज्य उन्हें वेतन भत्ते भी देता था। दूसरा भाग मिसलदारों का था। यह उन अधीनस्थ सरदारों के घुड़सवार थे, जिनके क्षेत्र पर रणजीत सिंह ने अधिकार कर उनके घुड़सवारों को अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया था।

रणजीत सिंह ने पैदल सेना को आधुनिक आधार देने का प्रयास किया। लाहौर तथा अमृतसर में तोप, गोला एवं बारूद बनाने के कारखाने लगाए गए। सेना के प्रशिक्षण के लिए विदेशी विशेषकर फ्रांसीसी सेनानायकों को नियुक्त किया गया। सेना में सभी जातियों तथा धर्मों के सैनिक थे।

सेना की एक विशेष टुकड़ी बनायी गयी जिसे फौज-ए-खास कहा जाता था। इस टुकड़ी का गठन **1822** ई**0** जनरल वन्तूरा तथा अलार्ड के द्वारा किया गया। इस फौज का राजकीय चिह्न अलग था तथा ड्रिल फ्रांसीसी तरीके एवं शब्दों से होता था।

रणजीत सिंह ने तोपखाना पर विशेष ध्यान दिया। सभी आकार की तोपें उपलब्ध थी। तोपखाने के निर्माण में कोर्ट और गार्डनर नामक अधिकारियों ने मुख्य भूमिका निभायी। तोपखाने की देखभाल के लिए एक पृथक अधिकारी ''दारोगा-ए-तोपखाना'' नियुक्त किया गया था। रणजीत ने सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था भी की थी। इस प्रकार निःसन्देह रणजीत सिंह की सैन्य व्यवस्था उत्तम थी।

6.5 रणजीत सिंह एवं अंग्रेजों के संबंध

यह एक ऐतिहासिक संयोग है कि जिस समय भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर में रणजीत सिंह का साम्राज्य विस्तार हो रहा था, ठीक उसी समय भारत पर ब्रिटिश सर्वोच्चता स्थापित होने की संभावना साकार हो रही थी। इसलिए दोनों शक्तियों में संघर्ष अपिरहार्य था। भारत पर पुनः अफगान आक्रमण (**1800** ई**0**) की संभावना तथा सतलज के पूरब में रणजीत सिंह के साम्राज्य विस्तार की मनसा के कारण अंग्रेजों से संबंध की शुरूआत हुई। अंग्रेजों ने मुंशी युसुफ अली को रणजीत सिंह के दरबार में भेजा और महाराजा से आग्रह किया गया कि यदि जमान शाह आक्रमण करे तो रणजीत सिंह उसके साथ न मिले।

द्वितीय आंग्ल-मराठा संघर्ष (**1803-06** ई**0**) के क्रम में पुनः रणजीत सिंह के साथ अंग्रेजों ने संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। **1805** ई**0** में जसवन्त राव होल्कर अंग्रेजों से पराजित होकर पंजाब आ गया और रणजीत सिंह से सहायता मांगी। जनरल लेक ने जसवन्त राव को पंजाब से बाहर निकालने तथा सहायता न देने के उद्देश्य से **1806** ई**0** में रणजीत सिंह के साथ लाहौर की संधि की। इस संधि की शर्तें निम्नांकित थीं -

1. रणजीत बिना कोई सहायता दिए होल्कर को सिक्ख क्षेत्र से बाहर करेगा।
2. अंग्रेज ने वादा किया कि वे सिक्खों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।
3. अंग्रेज एवं रणजीत सिंह एक दूसरे के मित्र बनकर रहेंगे।

अंग्रेजों ने यह भी विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि वे पंजाब विजय की कोई योजना नहीं बनाएंगें। इस समय रूस एवं नेपोलियन के बीच हुए समझौते ने अंग्रेजों को भयभीत कर दिया। गवर्नर जनरल मिन्टो ने चार्ल्स मेटकॉफ को रणजीत सिंह के दरबार में मित्रता करने के लिए भेजा। मेटकॉफ ने आक्रामक एवं रक्षात्मक संधि का प्रस्ताव रखा जिसे मानने को रणजीत सिंह तैयार थे। अंग्रेजों ने सिक्ख-अफगान युद्ध में निप्पक्ष रहने तथा सतलज नदी के पार के क्षेत्र पर रणजीत सिंह के अधिकार को मानने पर राजी हो गए। इसी बीच नेपोलियन के आक्रमण का भय समाप्त हो गया तथा उसके विरूद्ध स्पेन में विद्रोह हो गया। इससे अंग्रेजों का पंजाब के प्रति रूख कठोर हो गया। ब्रिटिश कमाण्डर डेविड आक्टरलोनी सेना लेकर लुधियाना की ओर बढ़ा और घोषणा की कि सतलज पार के प्रदेश अंग्रेजी संरक्षण में हैं और यदि लाहौर उन पर आक्रमण करता है तो अंग्रेज बल प्रयोग करेंगे।

इस प्रकार महाराजा पर दबाव डाला गया और उसे झुकना पड़ा। **25** अप्रैल **1809** ई**0** को महाराजा रणजीत सिंह ने अमृतसर की संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। इस संधि में निम्नलिखित प्रावधान थे -

1. सतलज नदी के उत्तर के **45** परगनों पर अंग्रेजों ने रणजीत सिंह का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

2. रणजीत सिंह ने सतलज नदी के पूरब में न बढ़ने का वायदा किया तथा अंग्रेजों ने इसके पश्चिम में न बढ़ने का वचन दिया। इस प्रकार सतलज नदी दोनों राज्य की सीमा मान ली गयी।

3. ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा लाहौर के बीच शाश्वत मित्रता रहेगी एवं ब्रिटिश सरकार इस राज्य को सर्वमाननीय राज्यों में स्वीकार करेगी।

4. सिक्ख राज्य जरूरत से ज्यादा सेना नहीं रखेंगे तथा पड़ोसी प्रदेश पर आक्रमण नहीं करेंगे।

5. इस संधि के प्रावधानों का उल्लंघन करने अथवा मित्रता के सिद्धान्तों को तोड़ने पर संधि निष्प्रभावी मानी जायेगी।

इस प्रकार इस संधि ने सतलज नदी के पूरब साम्राज्य विस्तार के रणजीत सिंह के सपने को तोड़ दिया**,** परन्तु पश्चिम दिशा में प्रसार की खुली छूट दे दी। साथ ही इस संधि ने स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेजों की तुलना में रणजीत सिंह कमजोर है। इसीलिए महाराजा ने अपने जीवनकाल में अंग्रेजों से युद्ध टालने का प्रयास किया।

महाराजा रणजीत सिंह ने जब सिंध पर अधिकार करने की योजना बनाई तब एलेग्जेण्डर बर्न्स सिंध नदी होते हुए लाहौर पहुँचा। **1831** ई**0** में विलियम बैंटिंक ने रणजीत सिंह से रोपड़ में

मुलाकात की। दोनों की मित्रता की बात दुहराई परन्तु बैंटिंक ने सिंध को आपस में बाँटने के रणजीत सिंह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस समय महाराजा और अंग्रेज एक-दूसरे की चाल समझ रहे थे। परन्तु दोनों कुछ नहीं कर सकते थे। अंग्रेजों ने फिरोजपुर को छावनी बना ली।

अफगानिस्तान में कम्पनी शाहशुजा को शासक बनाना चाहती थी और इसमें रणजीत सिंह का सहयोग अपेक्षित था। मैकनॉटन के दबाब में आकर रणजीत सिंह ने इस कार्य में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। उसने अंग्रेजों के समक्ष शर्त रखी कि अंग्रेजी सेना पंजाब होकर नहीं गुजरेगी।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेजों को प्रसन्न तथा तुष्ट करने का प्रयास किया और नाराज करने का कोई अवसर नहीं दिया, फिर भी अंग्रेजों ने मित्रता का ध्यान नहीं रखा एवं समय-समय पर उसे अपमानित करते रहे। **1838 ई0** में अंग्रेज, शाहशुजा तथा रणजीत सिंह के बीच एक त्रिपक्षीय संधि हुई। यह संधि अंग्रेजों के लिए फायदेमंद थी। रणजीत सिंह केवल अंग्रेजों को प्रसन्न करने के लिए सम्मिलित हुआ था। इस प्रकार रणजीत सिंह को अपनी कमजोरी का अहसास था। उसने कमजोरी दूर करने तथा अंग्रेजों के विरूद्ध भारतीय शक्तियों को संगठित करने का कोई प्रयास नहीं किया। यह रणजीत सिंह की कूटनीतिक दुर्बलता का प्रमाण है। इसलिए कई इतिहासकार उसकी आलोचना करते हैं। परन्तु सत्य यह है कि अंग्रेजों की तुलना में सिक्ख कमजोर थे। अतः रणजीत सिंह को वास्तविकता का ज्ञान था। इसलिए अपने शासनकाल तक अंग्रेजों के साथ युद्ध टालता रहा।

6.5.1 रणजीत सिंह का मूल्यांकन

उन्नीसवीं सदी के भारतीय इतिहास में महाराजा रणजीत सिंह को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसी समय भारत में ब्रिटिश साम्राज्य अपना पाँव जमा रहा था तथा एक-एक कर भारतीय शक्तियों को अपना निशाना बना रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में रणजीत सिंह द्वारा एक वृहद् साम्राज्य निर्माण उसके महान व्यक्तित्व का प्रमाण है। रणजीत सिंह देखने में बहुत सुन्दर नहीं था परन्तु वयक्तित्व में आकर्षण एवं तेज था।

रणजीत सिंह एक धर्म सहिष्णु शासक था। यद्यपि वह स्वयं धर्म से प्रभावित था तथा सिक्खों को अपना सहयोगी एवं सहधर्मी मानकर कार्य करता था। अन्य धर्मों को भी बराबर का दर्जा देता था। अपने यहाँ नौकरी देने में कोई भेदभाव नहीं रखता था। सभी धर्मों के विद्वानों का आदर करता था।

रणजीत सिंह एक कुशल सैनिक तथा सेनानायक था। इस कार्य में वह फुर्तीला, साहसी तथा धैर्यवान था। वह हमेशा शेर की तरह निर्भीक होकर ऐना का नेतृत्व करता था तथा एक सामान्य सैनिक की तरह युद्ध करता था। उसे अपनी शक्ति तथा कमजोरी का पूर्ण ज्ञान था, इसलिए

वह योजनाबद्ध होकर कार्य करता था। जीते हुए प्रदेश तथा आदमी पर कभी अत्याचार नहीं करता था।

एक शासक के रूप में रणजीत सिंह निरंकुश था परन्तु हितकारी एवं लोक कल्याणकारी। वह अपनी शक्ति का प्रयोग जनहित में करता था। न्यायप्रिय शासक के रूप में वह लोगों की मौखिक व लिखित फरियाद सुनता था तथा फैसले देता था। शिकायत पेटिका उपलब्ध थी। न्याय कठोर था इसलिए काफी लम्बे अन्तराल के पश्चात् पंजाब में शांति स्थापित हुई थी।

इतिहासकारों ने रणजीत सिंह की तुलना शिवाजी से की है। उनका मानना है कि शिवाजी ने मराठों को संगठित करने का कार्य किया जबकि रणजीत सिंह ने बिखरे हुए सिक्खों को संगठित कर एक राज्य बनाने का कार्य किया। शिवाजी ने मुगलों का प्रतिरोध किया और रणजीत सिंह को अंग्रेजों के विरोध का सामना करना पड़ा। इस प्रकार शिवाजी तथा रणजीत सिंह में काफी समानता दिखाई देती है परन्तु दोनों में अन्तर भी काफी अधिक है। भाग्य की बात थी कि शिवाजी को योग्य तथा कर्मठ एवं समर्पित उत्तराधिकारी तथा अधिकारी एवं सेनानायक मिले जबकि रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी अयोग्य एवं सेनानायक तथा अधिकारी स्वार्थी एवं अक्षम साबित हुए। इसलिए रणजीत सिंह द्वारा निर्मित सिक्ख राज्य उसके मरने के एक दशक के अन्दर ही समाप्त हो गया।

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर हम कह सकते हैं कि निस्संदेह भारत के प्रमुख शासकों एवं साम्राज्य निर्माताओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र विशेषकर पंजाब में एक वीर योद्धा एवं कुशल संगठनकर्ता के रूप में आज भी जन स्मृति में रणजीत सिंह व्याप्त है। उसने पंजाब की रक्षा मराठों तथा पठानों से की तथा शक्तिशाली एवं धूर्त अंग्रेजों से भी बचाए रखा। इसलिए विभिन्न व्यक्तिगत बुराइयों तथा असफलताओं के बावजूद एक कुशल प्रशासक के रूप में इतिहास के पन्नों में अमर है।

6.6 रणजीत सिंह के बाद सिक्ख राजनीति तथा अंग्रेजों का हस्तक्षेप

अभी तक आपने अध्ययन किया कि किस प्रकार महाराजा रणजीत सिंह ने बिखरे हुए सिक्खों को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया ? यह राजनीतिक एकता व्यक्तिगत शौर्य पर आधारित थी इसलिए **1839** ई**0** में रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् सिक्ख साम्राज्य में राजनीतिक तथा आर्थिक अराजकता फैल गई। विभिन्न गुट जैसे डोगरा, सिंधनवालिया आदि का उद्भव हुआ और इन सेनानायकों ने राजा बनाने वालों की भूमिका निभानी शुरू कर दी। सैनिकों की संख्या में वृद्धि के साथ वेतन का बोझ बढ़ने से राज दरबार में गुटबाजी प्रारंभ हुई। सैनिको ने वेतन बढ़ाने तथा प्राप्त करने के लिए असैनिक प्रशासन पर दबाव बढ़ाना तथा अपनी वफादारी बदलना प्रारंभ किया। इस प्रकार सैनिक-असैनिक प्रशासन का समन्वय टूटा। पंजाब की राजनीति विभिन्न

गुटों की शक्ति परीक्षण का केन्द्र बन गया। एक-एक कर रणजीत सिंह के अयोग्य पुत्र गद्दी पर बैठते रहे और दरबार के षडयंत्र तथा हत्याओं का सिलसिला जारी रहा।

रणजीत सिंह के मरणोपरान्त उनका एक अयोग्य पुत्र खड़गसिंह जून **1839** ई**0** में गद्दी पर बैठा। दरबार में दो विरोधी दलों, सिंधनवालिया सरदार चैत सिंह, अत्तर सिंह, लौहन सिंह तथा उसके भतीजे अजीत सिंह और डोगरा बंधुओं- ध्यान सिंह, गुलाब सिंह और सुचेत सिंह की प्रतिद्वन्दिता के कारण पूरे पंजाब में अराजकता फैल गई। **8** अक्टूबर **1839** ई**0** को वजीर ध्यान सिंह के समर्थकों ने चैत सिंह की हत्या कर दी। खड़ग सिंह की मृत्यु **5** नवम्बर **1840** ई**0** को हो गई। रणजीत सिंह के पुत्र नौनिहाल सिंह को महाराजा घोषित किया गया। परन्तु शीघ्र ही वह षडयंत्र का शिकार हो गया। नौनिहाल सिंह की पत्नी चाँद कौर ने अपने होने वाले बच्चे को उत्तराधिकारी बनाने की मांग की। सिंधनवालिया सरदार उसका समर्थन कर रहे थे। रणजीत सिंह के एक अन्य पुत्र शेर सिंह ने इसका विरोध किया। अन्ततः शेर सिंह सफल रहा। **1843** ई**0** में शेर सिंह, उसके पुत्र प्रताप सिंह और वजीर ध्यान सिंह की हत्या कर दी गई। इस षडयंत्र में अंग्रेज एवं सिंधनवालिया सरदार सम्मिलित थे। सरदार हीरा सिंह ने सेना की सहायता से रानी जिन्दन कौर के पुत्र दलीप सिंह को महाराजा घोषित किया। दलीप सिंह नाबालिग था। अतः रानी जिन्दन संरक्षिका बनी। **1844** ई**0** में हीरा सिंह की हत्या कर दी गई। राज्य की शक्ति रानी के भाई और वजीर जवाहर सिंह और उसके प्रेमी लाल सिंह के हाथों में आ गयी। सभी व्यसनी तथा अक्षम थे। इस प्रकार **1845** ई**0** तक पंजाब की राजनीतिक स्थिति काफी खराब हो गई। दरबार विभाजित हो गया तथा षडयंत्र का अड्डा बन गया। ऐसी परिस्थिति अंग्रेजों के अनुकूल थी।

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् सिक्ख राज्य की कमजोरी उभर कर सामने गई। अंग्रेजों को स्वयं सिक्खों ने आमंत्रित किया और अंग्रेजों ने सिक्ख राजनीति में हस्तक्षेप किया तथा पंजाब को अपना शिकार बनाया।

6.7 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य तीव्र गति से उन्नीसवीं सदी में विस्तृत हुआ। सिंध विलय के पश्चात् अब केवल बड़ी शक्तियों मे पंजाब अंग्रेजों के प्रभुत्व से बाहर था। रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् पंजाब की राजनीतिक स्थिति खराब हुई और शीघ्र ही अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाने का प्रयास किया और पंजाब के साथ संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

6.7.1 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध के कारण

आंग्ल-सिक्ख युद्ध का मूल कारण ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति थी। पंजाब की सामरिक स्थिति तथा आर्थिक महत्व के कारण अंग्रेज इस पर अधिकार करने को आतुर थे। अफगानिस्तान

में मिली असफलता छुपाने के लिए भी अंग्रेज पंजाब पर अधिकार करना चाहते थे। एलनबरो ने सिक्ख शक्ति समाप्त करने की योजना बनानी शुरू की, परन्तु इसे कार्यान्वित नहीं कर पाया।

1844 ई**0** में एलनबरो की जगह हार्डिंग गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। वह एक प्रख्यात विस्तारवादी था। उसने पंजाब में अपनी सेना शक्तिशाली बनाना प्रारम्भ किया। पंजाब की राजनीतिक अस्थिरता को बहाना बनाकर अंग्रेजों ने पंजाब के विरूद्ध सैनिक तैयारी प्रारम्भ कर दीं। सिंध में भी सेना को सतर्क कर दिया गया कि जरूरत पड़ने पर मुल्तान की ओर से आक्रमण किया जा सके। लुधियाना स्थित कम्पनी के एजेण्ट ब्रॉडफुट ने घोषणा की कि दलीप सिंह की मृत्यु के पश्चात् सतलज पार के सभी राज्य जब्त कर लिए जाएंगे। फिरोजपुर एवं मुल्तान में भी अंग्रेजी सेना ने सीमा का उल्लंघन किया। अंग्रेजों ने सिक्खों में फूट डालकर ऐसी परिस्थितियाँ बनानी प्रारम्भ की जिससे सिक्ख स्वयं ही युद्ध के लिए तैयार हो गए।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंग्रेज बड़ी उत्सुकता से युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्रामाज्य विस्तार को पंजाब अधिकृत कर पूरा करना चाहते थे। उन्होंने अपनी तैयारियाँ पूरी कर लीं और सिक्ख सरदारों को उकसाना शुरू किया। उन्होंने सतलज पार के लगभग सभी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया तथा सिक्खों का अपमान करना जारी रखा। मेजर ब्रॉडफुट अपने प्रयास में कामयाब हुआ। तेज सिंह और गुलाब सिंह उसके मित्र थे। उसके प्रेरित करने पर तेज सिंह के नेतृत्व में सिक्ख सेना सतलज के किनारे तक आ गई और घोषणा की कि जब तक अंग्रेज लुधियाना और फिरोजपुर से आगे नहीं बढ़ेंगे तब तक वे स्थिर रहेंगे। अंग्रेज इस अवसर की तलाश में थे। उन्होंने मेरठ तथा अम्बाला से अपनी सेना को आगे बढ़ने के आदेश दे दिये। **13** दिसम्बर **1845** ई**0** को खालसा सेना ने सतलज पार किया और अपने ही क्षेत्र में छावनी बनाई। हार्डिंग को बहाना मिल गया और इस स्वर्णिम अवसर का लाभ उठाते हुए सिक्खों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आंग्ल-सिक्ख युद्ध का मूल कारण सिक्ख सेना का सतलज पार करना नहीं बल्कि अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति थी। इसमें सिक्ख सरदारों को व्यक्तिगत स्वार्थ ने भी प्रमुख भूमिका निभायी। अंग्रेजो के अथक प्रयास के बाद भी सिक्खों ने आक्रमण नहीं किया। केवल सतलज नदी को पार करने की घटना को अंग्रेजों ने बहाना बनाया और युद्ध की घोषणा कर दी।

6.7.2 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध की लड़ाइयाँ

इस प्रकार प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध **13** दिसम्बर **1845** ई**0** से प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध की प्रथम लड़ाई मुदकी में **18** दिसम्बर को लाल सिंह और हयू रोज के मध्य लड़ी गई। सिक्ख सेना बुरी तरह परास्त हुई। दूसरी लड़ाई **21** दिसम्बर को फिरोजशाह में हुई जहाँ तेज सिंह के नेतृत्व वाली सिक्ख सेना परास्त हुई। **21** जनवरी **1846**ई. को तीसरी लड़ाई बुदवाल में हुई। इस युद्ध में सिक्खों

का नेतृत्व रनजोर सिंह मजीठिया ने किया। इस बुदवाल युद्ध में सिक्खों की हार हैरी स्मिथ के हाथों हुई। चौथी लड़ाई अलीवाल में हुई जहाँ **28** जनवरी को हैरी स्मिथ ने सिक्खों को पराजित किया। इस प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध की अंतिम और निर्णायक लड़ाई **10** फरवरी **1846** ई**0** को सोबराँव में हुई। इस युद्ध में सिक्ख सरदारों ने ही षडयंत्र किया। केवल साम सिंह के नेतृत्व वाली सेना ने युद्ध किया। शेष सरदारों ने धोखा दिया और सिक्ख निर्णामक रूप से परास्त हो गए। अंग्रेजों ने सतलज पार कर **20** फरवरी को लाहौर पर अधिकार कर लिया और अपनी शर्तों पर संधि की। **01** मार्च **1846** ई**0** को लाहौर की संधि के साथ प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध समाप्त हुआ।

6.7.3 प्रथम आंग्ल - सिक्ख युद्ध के परिणाम

इस प्रकार प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध समाप्त हुआ, जिसमें अंग्रेजों की जीत हुई और अपनी इच्छानुसार अपनी योजनाओं के अनुरूप **01** मार्च **1845** ई. को लाहौर की संधि पर हस्ताक्षर करा लिए। इस संधि के प्रावधान निम्नांकित थे-

1. महाराजा दलीप सिंह ने सतलाज पार के समस्त क्षेत्रों से सदा के लिए अपने अधिकार और दावे छोड़ दिए।

2. महाराजा ने सतलज और व्यास नदी के बीच भूमि के सभी किलों, पहाड़ियों तथा भू-भाग से अपना अधिकार हटा लिया।

3. अंग्रेजों ने युद्ध में हुई क्षति की पूर्ति के लिए डेढ़ करोड़ रुपये सिक्खों के ऊपर थोपा। उसमें से **50** लाख नकद लिया गया तथा शेष के बदले व्यास एवं सिंध नदी के बीच का क्षेत्र ले लिया जिसमें कश्मीर तथा हजारा के प्रांत भी सम्मिलित थे।

4. महाराजा की सेना में **12000** घुड़सवार तथा **25** बटालियन पैदल सेना छोड़ कर शेष भंग कर दी जाएगी।

5. सिक्खों की सम्पूर्ण तोपें अंग्रेजों ने ले ली।

6. अंग्रेज सैनिकों को पंजाब की सीमा में प्रवेश करने की खुली छूट दे दी गई।

7. महाराजा ने किसी भी अमेरिकन तथा यूरोपीय को अंग्रेजों की अनुमति के बिना अपने यहाँ नौकरी नही देने का वायदा किया।

8. अवयस्क दलीप सिंह को राजा, रानी जिंदन को उसका संरक्षक तथा लाल सिंह को वजीर स्वीकार कर लिया गया।

9. अंग्रेजों ने सिक्ख राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया।

10. दलीप सिंह की रक्षा के लिए अंग्रेजी सेना पंजाब में रखी गयी।

11. हेनरी लॉरेन्स को लाहौर में रेजिडेण्ट नियुक्त किया गया।

इस संधि के दो दिन बाद एक पूरक संधि द्वारा ब्रिटिश सेना को **1846 ई0** के अंत तक लाहौर में रहने की स्वीकृति दी गयी। इस सेना पर होने वाले खर्च का भार सिक्ख दरबार उठाऐंगे।

इस प्रकार प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध के परिणाम स्वरूप पंजाब की शक्ति काफी कम हो गई। क्षेत्रीय नुकसान के साथ-साथ दरबार को अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्र में आना पड़ा। सही है कि अंग्रेजों ने पंजाब पर अधिकार नहीं किया, परन्तु इस युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेजों के लिए पंजाब पर अधिकार समय की बात है।

शीघ्र ही सिक्ख सरदारों को अपनी गलती का अहसास हो गया और मौके की तलाश करने लगे, जब गलती सुधारी जाए। अंग्रेजों ने रानी जिन्दन को कश्मीर विवाद पर संरक्षक मण्डल से हटा दिया। संरक्षक मण्डल अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गया। लाल सिंह ने कश्मीर में गुलाब सिंह के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था। इस विद्रोह को दबाकर अंग्रेजों ने **16** दिसम्बर **1846 ई0** को भैरोंवाल की संधि की। इस संधि के द्वारा सिक्ख प्रशासन की देखभाल करने के लिए अंग्रेज रेजिडेण्ट के नेतृत्व में आठ सरदारों की एक संरक्षक परिषद स्थापित की गई। लाहौर दरबार ने अपने यहाँ एक स्थायी अंग्रेजी सेना रखना और उसके व्यय के लिए **20** लाख रुपया प्रति वर्ष देना स्वीकार किया। रानी सिन्दन को पेंशन देकर अलग कर दिया गया। जॉन लारेंस को नया रेजिडेण्ट नियुक्त किया गया जो ज्यादा शक्तिशाली था।

6.8 द्वितीय आंग्ल - सिक्ख युद्ध एवं पंजाब का विलय

प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध के परिणाम स्वरूप पंजाब में अंग्रेजों का प्रभाव क्षेत्र बढ़ा तथा सरदारों की प्रतिष्ठा को झटका लगा। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की भूख समाप्त नहीं हुई, क्योंकि उसके लिए पंजाब पर सीधा अधिकार आवश्यक था। सिक्ख सरदार अपनी स्वाधीनता वापस चाहते थे। अतः दोनों में पुनः संघर्ष हुआ और पंजाब, ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया।

6.8.1 द्वितीय आंग्ल - सिक्ख युद्ध के कारण

प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध के बाद हार्डिंग के द्वारा की गई व्यवस्था अस्थायी सिद्ध हुई। इससे अंग्रेज एवं सिक्ख दोनों ही असंतुष्ट थे। अंग्रेजों ने 'फूट डालो एवं शासन करो' की नीति को पंजाब में नया आयाम दिया तथा मुसलमानों को अधिक सुविधाएँ प्रदान की। इससे सिक्ख सरदार नाराज थे। सेना से निकाले गए सैनिकों में भी असंतोष था क्योंकि उनकी जीविका का साधन समाप्त हो गया था। उन्हें यह विश्वास था कि उनकी पराजय सरदारों की गद्दारी से हुई है। इसलिए उनका मानना था कि पुनः युद्ध की स्थिति में वे अंग्रेजों को हरा देंगे। दरबार में अंग्रेज रेजिडेण्ट के हस्तक्षेप से भी सिक्ख सरदार तथा पदाधिकारी असंतुष्ट थे।

इसी असंतोष के वातावरण में जनवरी **1848 ई0** में डलहौजी गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। वह घोर साम्राज्यवादी था। उसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारत पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से ब्रिटिश सर्वोच्यता स्थापित करना था। पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के लिए एक बहाने की तलाश में था। पंजाब पर पुनः आक्रमण का अवसर मुल्तान के सूबेदार मूलराज के विद्रोह ने प्रदान किया। यह विद्रोह द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध का तात्कालिक कारण सिद्ध हुआ।

मूलराज इस समय मुल्तान का सूबेदार था। ब्रिटिश रेजिडेण्ट के दबाव में आकर उससे **20** लाख रूपया नजराना देने को कहा गया और रावी नदी के उत्तर का प्रदेश लाहौर दरबार को सौंप देने को कहा गया। यह निर्णय लिया गया कि मूलराज से जंग का जिला सदा के लिए ले लिया जाएगा और उसे लाहौर दरबार को कर के रूप में **25** लाख रुपया प्रथम वर्ष तथा बाद में **30** लाख रुपया प्रतिवर्ष देना पड़ेगा। मूलराज इसके लिए तैयार न था और उसने सूबेदारी से त्याग-पत्र दे दिया। ब्रिटिश रेजिडेण्ट फ्रेडरिक क्यूरी ने काहन सिंह को सूबेदार बनाकर दो ब्रिटिश पदाधिकारियों की देख-रेख में मुल्तान भेजा गया। दोनों अधिकारियों की हत्या कर दी गई तथा विद्रोह प्रारम्भ हो गया। विद्रोहियों ने मूलराज को अपना नेता मान लिया। शीघ्र ही विद्रोह पूरे पंजाब में फैल गया। शेर सिंह के नेतृत्व में लाहौर-दरबार ने विद्रोह दबाने के लिए एक सेना भेजी। परन्तु वह विद्रोहियों से मिल गया। सिक्खों ने पेशावर शहर अफगानों को देकर उनकी मित्रता तथा सहायता प्राप्त कर ली और अंग्रेजों के विरूद्ध सक्रिय हो गए।

अभी भी अंग्रेज शांत रहे और विद्रोह को फैलने दिया तथा व्रिदोह दबाने का प्रयास नहीं किया गया, क्योंकि लाहौर-दरबार का विद्रोह करना या सम्मिलित होना जरूरी था। लाहौर अभी भी मित्र था, इसलिए उस पर अधिकार नैतिकता से परे था। अक्टूबर **1848 ई0** में डलहौजी ने सिक्ख विद्रोह दबाने तथा पंजाब पर अधिकार करने का निर्णय लिया। डलहौजी ने घोषणा की कि सिक्खों ने पूर्व चेतावनी के बिना अकारण ही युद्ध की घोषणा कर दी है। अतः युद्ध प्रतिशोध के रूप में लड़ा जाना है।

6.8.2 युद्ध

16 नवम्बर **1848 ई0** को जनरल ह्यू रोज तथा जनरल गॉफ ने नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने रावी नदी पार किया। **22** नवम्बर को रामनगर का युद्ध हुआ। इस युद्ध में ब्रिटिश सेना का नेतृत्व ह्यू रोज तथा सिक्खों का नेतृत्व शेर सिंह ने किया। शेर सिंह पराजित हुआ, परन्तु यह अनिर्णायक रहा। **13** जनवरी **1849 ई0** को चिलियाँवाला का भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में दोनों पक्षों का नुकसान हुआ, परन्तु निर्णय नहीं हो पाया। **22** जनवरी को अंग्रेजों ने मुल्तान पर अधिकार कर लिया। मूलराज ने आत्म- समर्पण कर दिया। इस बीच शेर सिंह तथा छत्तर सिंह की सेनाएँ मिल गई थी।

इसी समय चार्ल्स नेपीयर ने पंजाब में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व संभाला। अंतिम एवं निर्णायक युद्ध चिनाव नदी के किनारे गुजरात नामक स्थान पर हुआ। इसमें सिक्ख बुरी तरह परास्त हुए। अंग्रेजों ने **25** किलोमीटर तक उनका पीछा किया। **12** मार्च **1849** ई**0** को शेर सिंह, छत्तर सिंह तथा अन्य सरदारों ने आत्म समर्पण कर दिया। इस समय समस्त पंजाब अंग्रेजों की दया पर था।

6.8.3 द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध के परिणाम

इस प्रकार गुजरात युद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण पंजाब अंग्रेजों के समक्ष खुला हुआ था। डलहौजी के समक्ष कई विकल्प थे। युद्ध पूर्व की स्थिति बहाल की जा सकती थी, ब्रिटिश रेजिडेण्ट को और अधिक अधिकार दिया जाए अथवा पंजाब को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिला लिया जाए। इस समय गवर्नर जनरल डलहौजी था जिसका उद्देश्य भारत में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना करना था। उसने निदेशक मण्डल की अनुमति की प्रतीक्षा के बिना स्वयं जिम्मेदारी पर **29** मार्च **1849** ई**0** को सम्पूर्ण पंजाब को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसकी उद्घोषणा में कहा गया कि पंजाब का राज्य समाप्त हो गया है और अब तथा अब से आगे महाराजा दलीप सिंह का सम्पूर्ण राज्य अंग्रेजों के राज्य का एक भाग है। महाराजा दलीप सिंह को पेंशन देकर उसकी माँ रानी जिन्दन के संरक्षण में इंग्लैण्ड भेज दिया गया।

द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध के परिणामस्वरूप पंजाब पर अधिकार होने से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की सीमा भारत की प्राकृतिक भौगोलिक सीमाओं तक विस्तृत हो गई। अंग्रेज अब अफगानिस्तान के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आ गए? भारत में मुगल साम्राज्य के विखण्डन के पश्चात् उदित भारतीय शक्तियों में सिक्ख अंतिम शक्ति थे, जिनसे अंग्रेजों को खतरा हो सकता था, परन्तु **1849** ई**0** में उनकी निर्णायक हार ने इस खतरे को सदा के लिए समाप्त कर दिया। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय उपमहाद्वीप पर अंग्रेजों का अधिकार पूर्ण हो गया।

6.9 पंजाब का विलय

इस प्रकार द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध में विजय के पश्चात् डलहौजी ने नैतिकता तथा विधिक मान्यताओं को दरकिनार करते हुए **29** मार्च, **1849** ई**0** को एक घोषणा द्वारा सिक्खों के पंजाब राज्य को समाप्त करते हुए, पंजाब को भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग बना दिया। पंजाब को एक कमिश्नर प्रांत का दर्जा देते हुए, पंजाब का प्रशासन एक कमिश्नरों के बोर्ड को सौंप दिया, जिसमें लॉरेंस बंधुओं ने मुख्य भूमिका निभायी। अंग्रेजों ने पंजाब में फूंक-फूंक कर कदम रखा तथा अपने सुधार कार्यक्रमों से शीघ्र ही सिक्खों को अपना समर्थक बना लिया। यही कारण था कि **''1857** ई**0** विद्रोह के समय पंजाब न केवल शान्त रहा, अपितु सिक्ख सैनिकों ने उसे दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

पंजाब को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किये जाने पर विभिन्न मत दिए गए हैं। इतिहासकारों के एक मत के अनुसार सिक्खों ने विद्रोह करके डलहौजी को पंजाब पर अधिकार करने के लिए बाध्य कर दिया और ऐसा करना आवश्यक हो गया। दूसरे मत के अनुसार डलहौजी का यह कार्य सर्वथा अन्यायपूर्ण था। लाहौर-दरबार अंत तक अंग्रेजों के प्रति बफादार था तथा संरक्षक परिषद के आठ सदस्यों में से केवल एक ने उस विद्रोह में भाग लिया था तथा एक अन्य पर शक था। इस प्रकार अंग्रेज एक वैध सत्ता के समर्थन में लाहौर थे। अतः उस वैध सत्ता को समाप्त करना न्याय संगत नहीं था। इसके अतिरिक्त दलीप सिंह का तो कोई अपराध हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह नाबालिग था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का आधार सिक्खों का विद्रोह या नैतिक अथवा कोई अन्य न्याय संगत आधार न था। उसका मूल आधार डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति थी जिसका शिकार आर्थिक एवं सामरिक रुप से महत्वपूर्ण पंजाब हुआ।

इस प्रकार डलहौजी की नीति की आलोचना चाहे जितनी भी आलोचना की जाए उसकी नीति की सफलता पर कोई विवाद नहीं रहा। पंजाब को भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के पश्चात् पंजाब का प्रशासन तीन कमिश्नरों के एक बोर्ड के हाथ में सौंपा। बाद में उसका शासन केवल जॉन लॉरेन्स के हाथ में रहा। सिक्खों का शान्त करने तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का समर्थक बनाने में उसकी भूमिका सराहनीय रही। उसने कूटनीति एवं कठोरता से शासन किया तथा अनेक सुधार भी किए। उसके शासन की सफलता इस बात से स्पष्ट है कि पंजाब की जीत के अल्प अंतराल पर हुए **1857** ई**0** के विद्रोह में सिक्ख शान्त रहे और अंग्रेजों का साथ दिया।

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. सिक्ख राज्य की स्थापना।

2. रणजीत सिंह की जीवनी तथा उपलब्धियाँ।

3. रणजीत सिंह का प्रशासन।

4. रणजीत सिंह के शासनकाल तक अंग्रेजों से संबंध।

5. प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध के कारण एवं परिणाम।

6. द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध।

6.10 सारांश

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि भारत में मध्यकाल में हुए भक्ति आन्दोलन के दौरान पश्चिमोत्तर क्षेत्र में सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना गुरू नानक के द्वारा हुई। आर्थिक शोषण तथा धार्मिक उत्पीड़न के कारण सिक्ख धार्मिक सम्प्रदाय का सैनिक तथा राष्ट्रीय रूपान्तरण हुआ। विघटित होते मुगल साम्राज्य तथा लगातार हो रहे अफगान आक्रमण का लाभ उठाकर सिक्ख एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभर कर भारतीय राजनीतिक क्षितिज में चमकने लगे। यह एक ऐतिहासिक संयोग है कि ठीक इसी समय पूर्वी एवं दक्षिण भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपना व्यापारिक स्वरूप छोड़कर साम्राज्य निर्माण में लगी थी। उन्नीसवीं सदी में महाराजा रणजीत सिंह ने बिखरे हुए सिक्ख क्षेत्र को संगठित कर एक राष्ट्र निर्मित करने का प्रयास किया। द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध के दौरान अंग्रेजों का मित्रतापूर्ण संबंध सिक्खों के साथ स्थापित हुआ। सतलज पार के क्षेत्र को लेकर विवाद प्रारम्भ हुआ। रणजीत सिंह यथार्थवादी थे। उन्हें अपनी कमजोरी तथा अंग्रेजों की शक्ति का वास्तविक ज्ञान था। इसलिए अपने जीवनकाल (**1839 ई0**) तक अंग्रेजों से युद्ध टालता रहा। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सिक्ख राष्ट्र मण्डल की कमजोरियाँ सामने आ गईं। सिक्ख सरदार आपस में लड़ने लगे और अपने आपको राज दरबार की राजनीति में सम्मिलित कर लिया। राज दरबार ने सिक्ख सरदारों को कमजोर करने के उद्देश्य से सतलज पार कर अंग्रेजों से युद्ध के लिए उकसाया और आंग्ल-सिक्ख संघर्ष प्रारम्भ हुआ। **1845-46** ई0 में प्रथम तथा **1848-49** ई**0** में द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध सम्पन्न हुए और डलहौजी ने **1849** ई**0** में सम्पूर्ण पंजाब को अपने साम्राज्य का हिस्सा बना लिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी मनसा की पूर्ति के लिए अपने मित्र को भी नहीं छोड़ा और आखिरी महत्वपूर्ण भारतीय भक्ति पर अधिकार कर लिया। शीघ्र ही लॉरेंस बंधुओं ने सिक्खों को शान्त कर अपना समर्थक बना लिया।

6.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए **3.3** सिक्खों का उत्कर्ष।

2. देखिए **3.4** रणजीत सिंह का उत्थान एवं उपलब्धियां तथा **3.5.1** रणजीत सिंह का मूल्यांकन।

3. देखिए **3.4.1** रणजीत सिंह की प्रशासनिक व्यवस्था।

4. देखिए **3.5** रणजीत सिंह एवं अंग्रेजों के संबंध।

5. देखिए **3.7** प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध।

6. देखिए **3.8** आंग्ल-सिक्ख युद्ध एवं पंजाब का विलय।

6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Griffin, L. – Ranjit Singh.
2. Lunningham, J.D. – History of the Sikhs.

3. Singh, Khushwant – The Sikhs.
4. Bell, Evans – Annexation of the Punjab.
5. Banerjee – Anglo – Sikh Relations

6.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ग्रोवर एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास - एक नवीन मूल्यांकन
2. शर्मा, एल0पी0 - आधुनिक भारत।
3. Chhabra, G.S. – Advanced Study in the History of Modern India.
4. Chandra, Bipin – History of Modern India.
5. Aggarwal, J.C. – Modern Indian History.
6. Majumdar, Raychaudhuri and Datta – An Advanced History of India.

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. रणजीत सिंह की जीवनी तथा उपलब्धियाँ की चर्चा कीजिए।

2. रणजीत सिंह के शासन प्रबन्ध की समीक्षा कीजिए।

3. प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध के कारणों एवं परिणाम पर प्रकाश डालिए।

4. द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध के कारणों तथा परिणामों की चर्चा कीजिए।

5. रणजीत सिंह एवं अंग्रेजों के संबंधों का विश्लेषण कीजिए।

6. अंग्रेजों द्वारा पंजाब विजय की समीक्षा कीजिए।

इकाई सात

सिंध की विजय

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 सिंध की स्थिति
7.4 अंग्रेजों का सिंध के साथ आरंभिक संबंध
7.5 उन्नीसवीं सदी में सिंध के संबंध में अंग्रेजों की नीति
7.6 सिंध विजय का कारण
7.7 अंग्रेजों का सिंध के साथ युद्ध
7.8 सिंध का विलय
7.9 सिंध के विलय की आलोचना
7.10 सारांश
7.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
7.12 संदर्भ ग्रंथ
7.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.14 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अंग्रेजों का भारत विजय उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पूर्ण हुआ। पश्चिमोत्तर में कच्छ की खाड़ी से जुड़ें सिंध का सामरिक एवं व्यापारिक महत्व बहुत अधिक था। सिक्खों के साम्राज्य विस्तार तथा रूस - फ्रांसीसी विस्तार के भय ने अंग्रेजों की सिंध नीति में परिवर्तन किया। सिंध के शासक जिन्हें अमीर कहा जाता था, अंग्रेजों की सभी मांगे मानते रहे। परंतु आंग्ल-अफगान नीति के क्रम में अंग्रेजों ने **1843 ई0** में एक युद्ध के पश्चात सिंध को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यवाद का शिकार बना लिया।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में अंग्रेजों के सामा्रज्य स्थापना के क्रम में सिंध के विजय से अवगत कराना है। इस इकाई में आप निम्नांकित संबंधित विषयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे -

1. सिंध की स्थिति।

2. सिंध की प्रशासनिक व्यवस्था।

3. सिंध के साथ अंग्रेजों के संबंध।

4. सिंध के साथ की गई विभिन्न संधियां।

5. सिंध का ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में विलय।

7.3 सिंध की स्थिति

मुगल साम्राज्य के विखण्डन के पश्चात सिंध एक क्षेत्रीय राजनीतिक इकाई के रूप में उदित हुआ। अठारहवीं सदी में यहां कोल्लरों का शासन था। तालपुरा की बलोच जनजाति पहाड़ों से उतरकर यहाँ बसने लगी। उन्होंने कृषि एवं व्यापार से धन अर्जित कर लिया तथा राजनीति में हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया। अन्ततः **1783** ई**0** में इन्होंने सिंध पर अधिकार कर लिया तथा तीन प्रमुख अमीरों ने सिंध को आपस में बांट लिया। इस प्रकार मीर फतेह अली खान द्वारा सिंध पर वलूचियों का शासन स्थापित हुआ। **1800** ई**0** में सिंध में अमीरों का अधिकार क्षेत्र निर्मित हुआ। सिंध के उपरि भाग की राजधानी खैरपुर**,** निचले भाग की राजधानी हैदराबाद तथा दोनों के मध्य एक छोटा क्षेत्र जिसकी राजधानी मीरपुर थी। सिद्धान्त में हैदराबाद का अमीर सम्पूर्ण सिंध का मालिक था**,** परंतु व्यावहारिक रूप से अमीर स्वतंत्र थे और आपस में लड़ते रहते थे। इन अमीरों ने साम्राज्य विस्तार का प्रयास किया परंतु सिक्ख तथा अफगान शक्तियों ने इस पर रोक लगा दी। इस प्रकार सिंध राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नहीं था। परंतु सामरिक एवं व्यापारिक दृष्टि से सिंध काफी महत्वपूर्ण था।

7.4 अंग्रेजों का सिंध के साथ आरंभिक संबंध

भारतीय उपमहाद्वीप में अंग्रेजों ने पश्चिम समुद्र तट से ही अपना व्यापारिक संबंध प्रारंभ किया था और मुगल शासक से अनुमति लेकर विभिन्न फैक्टरियां स्थापित की थीं। **1630** ई**0** में अंग्रेजों सिंध क्षेत्र में भी फैक्टरियां स्थापित की थीं लेकिन विभिन्न कारणों से सिंध अंग्रेजों को आकर्षित नही कर पाया। **1758** ई**0** में अंग्रेजों ने थट्टा में एक बही फैक्टरी स्थापित की। अमीरों के हस्तक्षेप एवं कर लगाने के कारण **1775** ई**0** से व्यापार कम कर दिया तथा **1792** ई**0** में इसे बंद कर दिया गया। वेलेजली के शासनकाल में **1799** ई**0** में तालपुरा अमीरों के दरबार में भेजा गया व्यावसायिक मिशन अमीरों से छूट प्राप्त करने में असफल रहा। इसी समय नेपोलियन के आक्रमण के भय ने अंग्रेजों को सिंध के साथ अपने संबंध पर पुनर्विचार को बाध्य कर दिया। **1801** ई**0** सिंध के अमीरों से एक मित्रता की संधि हुई जिसमें अमीरों ने वायदा किया कि वे अपने क्षेत्र में फ्रांसीसियों को नहीं बसने देंगे। इस प्रकार अठारहवीं सदी तक अंग्रेजों की सिंध में कोई विशेष रूचि नहीं थी परंतु उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही संबंध में परिवर्तन आया एवं अंग्रेजों की लालची दृष्टि सिंध पर पड़ी।

7.5 उन्नीसवीं सदी में सिंध के संबंध में अंग्रेजों की नीति

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में भारतीय तथा यूरोपीय राजनीति में हुए परिवर्तन ने सिंध के संबंध में अंग्रेजों की नीति में परिवर्तित किया। भारत में द्वितीय आंग्ल - मराठा युद्ध के पश्चात् मराठा शक्ति का पतन केवल समय की बात थी। पंजाब के सिक्ख शासक रणजीत सिंह से मित्रता थी। पश्चिमोत्तर सीमा पर फ्रांसीसी तथा रूसी दबाब बढ़ रहा था। इसलिए अंग्रेजों ने अब अपना ध्यान पश्चिमोत्तर सीमा पर केन्द्रित किया और सिंध से संबंधित तटस्थता की नीति का परित्याग किया। **1809** ई**0** में मिन्टो के शासनकाल में सिंध के अमीरों के साथ चिरंतन मित्रता की संधि हुई जिसका नवीनीकरण **1820** ई**0** में हुआ। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के प्रमुख एलनबरो के निर्देश पर एलेग्जैण्डर बर्न्स ने **1831** ई**0** लाहौर जाते हुए सिंधु नदी के सामरिक तथा व्यापारिक महत्व को उजागर किया। इस यात्रा के पश्चात अंग्रेजों ने सिंध पर अधिकार का बहाना खोजना प्रारंभ किया। इस यात्रा को देखकर एक सैयद ने कहा था, "सिंध अब अंग्रेजों के अधीन गया क्योंकि अंग्रेजों ने सिंध के विजय राजमार्ग सिंधु नदी को देख लिया"। यह उक्ति शत प्रतिशत सच साबित हुई।

7.6 सिंध विजय के कारण

सिंध से मित्रता के बाबजूद अंग्रेजों ने **1843** ई**0** में सिंध को भारतीय साम्राज्य में मिला लिया। सिंध पर अंग्रेजों के आक्रमण एवं अधिकार के कारणों की व्याख्या निम्नवत की जा सकती है -

सिंध पर सिक्ख शासक महाराजा रणजीत सिंह की साम्राज्यवादी मनसा को रोकने के लिए अंग्रेजों नें सिंध पर नियंत्रण करना उचित समझा। विलियम बैंटिंक के समक्ष **1831** ई**0** में रोपड़ में महाराजा रणजीत सिंह ने प्रस्ताव रखा था कि सिंध को जीत कर आपस में बांट लिया जाय। बैंटिंक ने महाराजा रणजीत सिंह को रोकने के उद्देश्य से कर्नल पोटिंगर को **1832** ई**0** सिंध भेजा। कर्नल पोटिंगर ने अमीरों को भयभीत कर एक संधि की, जिसकी शर्तें निम्नवत थीं -

1. अंग्रेज व्यापारियों तथा पर्यटकों के लिए सभी स्थल तथा जलमार्ग खोल दिए जाय।

2. अंग्रेज इन रास्तों का उपयोग युद्ध सामग्री भेजने के लिए नहीं करेंगे तथा नदियों से कोई युद्धपोत नहीं गुजरेगा।

3. पर्यवेक्षकों को पहचान पत्र रखना होगा तथा सिंध में बसने का अधिकार नहीं होगा।

4. आयात - निर्यात कर की दरें निर्धारित होगीं, जिसमें परिवर्तन अमीरों के द्वारा किया जा सकता है।

5. अंग्रेज किसी भी प्रकार का सैनिक कर अथवा सहायता सिंध से नहीं लेंगे।

6. अमीर समुद्री डाकुओं पर नियंत्रण रखेंगे।

7. पूर्व में की गई मित्रता की संधियों की पुनः पुष्टि की गई तथा एक दूसरे की सीमा का उल्लंघन नहीं करने का वचन दिया गया।

8. भविष्य में वार्ता जारी रहेगी।

इस प्रकार अंग्रेजों को सिंध में पहली सफलता मिली। सिंध ने अफगानिस्तान से सहायता मांगी परंतु कोई लाभ नहीं मिला। इस संधि के आधार पर **1834** ई**0** में व्यापारिक संधि के द्वारा करों का निर्धारण किया गया और कच्छ के रेजिडेन्ट कर्नल पोटिंगर को राजनैतिक एजेण्ट नियुक्त किया गया। कम्पनी ने संधि के शर्तों का उल्लंघन करते हुए सिंध नदी पर लगाए गए चुंगी कर में हिस्सा मांगना प्रारंभ कर दिया।

महाराजा रणजीत सिंह ने पुनः सिंध पर आक्रमण की योजना बनाई। रणजीत सिंह ने सीमा पर स्थित रोझन नामक शहर पर अधिकार कर लिया था। भारत के गवर्नर जनरल ऑकलैण्ड ने कर्नल पोटिंगर को हैदराबाद भेजा। पोटिंगर ने सिक्खों के आक्रमण का भय दिखाकर सहायता का प्रस्ताव रखा। इसके लिए सिंध क्षेत्र में सेना की एक टुकड़ी रखी जाएगी। मजबूर होकर **1838** ई**0** में अमीरों ने एक संधि के द्वारा सिक्खों के साथ झगड़े में ब्रिटिश मध्यस्थता स्वीकार कर ली तथा एक ब्रिटिश रेजिडेण्ट रखने को राजी हो गए। इस प्रकार सिंध अब अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। दबाव में की गई इस संधि के लिए अंग्रेजों पर अनैतिकता का आरोप ब्रिटिश लेखक जैसे चार्ल्स नेपियर**,** पी**0**ई**0** रॉबर्ट्स तथा वी**0**ए**0** स्मिथ लगाते हैं। इस प्रकार सिक्ख आक्रमण के बहाने सिंध की स्वतंत्रता पर काले बादल मंडराने लगे।

अंग्रेजों के द्वारा सिंध पर विजय अफगान समस्या के समाधान के क्रम में किया गया। अफगान समस्या के समाधान के उद्देश्य से अंग्रेजों ने महराजा रणजीत सिंह तथा अफगान के भगोड़े शासक शाहशूजा के साथ त्रिपक्षीय संधि की। इस संधि के द्वारा रणजीत सिंह ने सिंध के अमीरों से झगड़े में कम्पनी की मध्यस्थता स्वीकार कर ली तथा सिंध के अमीरों से नजराने का शेष राशि मिलने पर शाहशुजा सिंध पर अपना दावा छोड़ने को तैयार हो गया।

शाहशूजा ने अमीरों पर दावा पहले ही छोड़ दिया था परंतु अंग्रेजों ने अपने अफगान अभियान के लिए धन एकत्र करने के उद्देश्य से शेष राशि का मुद्दा उठाया। इस शेष राशि का निर्धारण अंग्रेजों के द्वारा किया जाना था। अंग्रेजों ने इसे **25** लाख रुपये निर्धारित किया और कर्नल पोटिंगर को हैदराबाद भेजा गया। वास्तव में अंग्रेजों की योजना अफगान अभियान में सिंध को आधार कैंप तथा आपूर्ति पंक्ति के रूप में उपयोग करने की थी। ऐसा करना अंग्रेजों की मजबूरी भी थी क्योंकि रणजीत सिंह ने ब्रिटिश सेना को पंजाब से गुजरने की अनुमति नहीं दी थी। पोटिंगर ने अमीरों पर धन देने के लिए दबाव बनाना शुरू किया तथा पूर्व में की गई संधि जिसके द्वारा सिंध होकर ब्रिटिश सेना या युद्धपोत नहीं जायेंगे रद्द करने की मांग की। पोटिंगर ने स्पष्ट कर दिया की अंग्रेजों की शर्तें नहीं मानने पर सिंध को समाप्त कर दिया जाएगा। अमीरों ने शाहशूजा को धन देने की मांग को गलत बताया**,** क्योंकि वह अपना दावा पहले ही छोड़ चुका था। पोटिंगर ने तर्क दिया**,**

"जिस राजा को आप विगत **25** वर्षों से रोटी दे रहें हैं**,** उसकी ओर से मांग आपकी मांग है न कि शाह की।"

ठीक इसी समय जॉन कीन एक सेना लेकर हैदराबाद पहुंच गया। इस दबाब में आकर अमीर अब सारी शर्तें मानने को तैयार हो गए। फरवरी **1839** ई**0** में शिकारपुर तथा भक्कड़ में ब्रिटिश सेना रखने तथा सेना के रख-रखाव के लिए धन देने पर अमीर राजी हो गए। संधि के इस दस्तावेज को ऑकलैण्ड ने अपने अनुसार बदला और **11** मार्च **1839** ई**0** को नहीं चाहते हुए अमीरों को इस पर हस्ताक्षर करने पड़े। यह एक सहायक संधि थी जिसका अर्थ था अमीरों के द्वारा अपनी स्वतंत्रता को अंग्रेजों के अधीन करना। इस संधि की शर्तें निम्नांकित थी -

1. ब्रिटिश सेना सिंध क्षेत्र में रखी जाएगी।

2. इस सेना के रख - रखाव के लिए अमीर **3** लाख वार्षिक कर देंगे।

3. भक्कड़ तथा शिकारपुर का किला अंग्रेजों को दिया जाएगा।

4. करांची अंग्रेजों को दे दिया गया।

5. एक स्थायी ब्रिटिश रेजिडेण्ट की नियुक्ति की जाएगी।

6. अमीर अपनी क्षमता अनुसार अंग्रेजों को सैनिक तथा अन्य सहायता देंगें।

7. अंग्रेज सिंध क्षेत्र का उपयोग किसी भी उद्देश्य के लिए करेंगे।

8. अंग्रेज आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा बाह्य आक्रमण की स्थिति में सिंध की रक्षा करेंगे।

इस प्रकार सिंध के अमीरों पर अमानवीय एवं अनुचित दबाब बनाकर ऑकलैण्ड ने संधि पर हस्ताक्षर करा लिये। सिंध अब ब्रिटिश संरक्षण में आ गया और अमीरों की स्वतंत्रता जाती रही। केवल नाम के लिए सिंध पर अधिकार करना शेष रह गया। इसी समय करांची पर लगभग अधिकार कर लिया था।

अंग्रेजों द्वारा सिंध की विजय का कारण आंग्ल - अफगान युद्ध (**1839 - 42** ई**0**) भी था। प्रोफेसर आर**0**सी**0** मजूमदार के शब्दों में "सिंध की विजय अफगान युद्ध से संबंधित ही नहीं बल्कि उसका परिणाम भी थी।" इसी प्रकार सिंध की विजय का मुख्य नायक चार्ल्स नेपियर ने लिखा है: "सिंध विजय अफगान तूफान की पूंछ थी"। अफगान युद्ध के दौरान पुरानी संधियों को तोड़ते हुए अंग्रेजों ने युद्ध के लिए सिंध का उपयोग किया। अमीरों को सैनिक तथा आर्थिक भार उठाना पड़ा। कर के अतिरिक्त उन्हें धन तथा सामान देना पडा़ तथा सिंध के कई हिस्सों पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिए। अंग्रेजों का प्रभाव क्षेत्र विस्तृत हो गया। इस बफादारी के बाबजूद अंग्रेजों ने अमीरों पर षड्यंत्र करने तथा असहयोग का आरोप लगाया तथा सिंध पर अधिकार करने की योजना बनानी प्रारंभ कर दी। अफगान युद्ध में अंग्रेजों को हुई क्षति के पश्चात उन्होने अपनी छवि सुधारने एवं प्रतिष्ठा बचाने के लिए भी सिंध पर अधिकार करना जरूरी समझा।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों से अंग्रेजों ने सिंघ पर विजय की योजना का कार्यरूप देना प्रारंभ किया। ठीक इसी समय एलनबरो भारत का गवर्नर जनरल बनकर भारत आया और उसने शीघ्रता से इस योजना को कार्यरूप दिया।

7.7 अंग्रेजों का सिंध के साथ युद्ध

एलनबरो को **1842** ई**0** में भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया। उसने कार्यभार ग्रहण करते ही सिंध के विलय की योजना को कार्यरूप देना शुरू कर दिया। उसने आउट्रम के स्थान पर चार्ल्स नेपियर को हैदराबाद में रेजिडेण्ट नियुक्त किया और इसे समस्त सैनिक, असैनिक तथा राजनयिक अधिकार प्रदान कर दिए गए। सिंध के अमीरों पर लगाए गए आरोपों के अलावा भी नए आरोप लगाए गए। नेपियर घोर विस्तारवादी और विलयवादी था। अपने नए आरोप पत्र में उसने अमीरों पर अंग्रेजों के प्रति वफादार नहीं होने का आरोप लगाया। प्रमुख अंग्रेज इतिहासकार एवं आई**0**सी**0**एस**0**, वी**0**ए**0** स्मिथ का मानना है कि नेपियर सिंध के विलय के लिए प्रतिबद्ध था इसलिए उसने आक्रामक नीति अपनाई। उसने जल मार्ग पर नियंत्रण का बहाना बनाया।

खैरपुर के अमीर रूस्तम खां पर आरोप लगाया गया कि उसने संधि की धाराओं का उल्लंघन करते हुए विदेशी शक्तियों से बात की है, अंग्रेज व्यापारियों तथा पदाधिकारियों के साथ दुर्व्यवहार किया है, सिंधु नदी से यातायात में बाधा डाली है तथा ब्रिटिश नागरिकों को अवैध रूप से बंधक बना रखा है। हैदराबाद के नासिर खां पर यह आरोप था कि अंग्रेजों के मित्र एवं अधीनस्थ मीर पुर के शेर मुहम्मद के साथ सीमा विवाद में सेना एकत्र कर रखी है। साथ ही अमीर पर अंग्रेजों के विरूद्व गुप्त आक्रामक तथा रक्षात्मक संधियां करने का आरोप लगाया गया।

गवर्नर जनरल एलनबरो की राय से चार्ल्स नेपियर ने एक संधि का प्रस्ताव रखा जिसमें भविष्य में अधिक नजराना देने तथा की गई गलती एवं अपराध के बदले कुछ नए प्रदेश सौंपने की बात की गई। नेपियर ने अमीरों से मांग की कि -

1. सिक्के ढालने का अधिकार अंग्रेजों को दे दें।
2. सिंध नदी में स्थित अंग्रेजी जहाजों को कोयले की आपूर्ति कर दें।
3. करांची, थट्टा, सक्खर, भक्कर तथा रोहरी के बीच के सभी भाग अंग्रेजों को दे दें।
4. **1845** ई**0** के पश्चात कम्पनी सिंध के जो नए सिक्के ढालेगी उनमें एक ओर इंगलैण्ड की साम्राज्ञी की प्रतिमा होगी।

इसी समय खैरपुर में उत्तराधिकार का विवाद प्रारंभ हुआ। खैरपुर के अमीर रूस्तम खां ने अपने पुत्र मीर मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। परंतु नेपियर ने अमीर के भाई अली मुराद को उसका उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। नेपियर ने **20** जनवरी **1843** ई**0** को खैरपुर पर आक्रमण कर दिया और इस प्रकार सिंध के साथ युद्ध छिड़ गया। खैरपुर के अमीर भी हैदराबाद

चले गए ताकि मिलकर विद्रोह कर सकें। शेष अमीरों ने उपरोक्त संधि पर न चाहते हुए भी हस्ताक्षर कर दिए।

इस प्रकार नेपियर द्वारा निरन्तर अमीरों का अपमान किए जाने और सेना के साथ आगे बढ़ने के कारण हैदराबाद ने भी विद्रोह कर दिया। नेपियर तेजी से आक्रमण करना चाहता था। जिससे कि ग्रीष्म काल से पहले सिंध पर अधिकार हो जाए। उसने इमामगढ़ दुर्ग पर आक्रमण कर जनवरी **1843** ई**0** में ही जीत लिया। बलूची सैनिकों ने हैदराबाद में विद्रोह कर आउट्रम के आवास पर धाबा बोल दिया। आउट्रम को भागकर अपनी जान बचानी पड़ी। नेपियर ने भागकर जहाज पर शरण ली और कार्यवाही शुरू की। **17** फरवरी **1843** ई**0** को नेपियर ने बलूचियों को मियानी तथा **24** मार्च **1843** ई**0** को दाबो नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया। इस युद्ध में मीरपुर का अमीर शेर मुहम्मद भी परास्त हुआ। अप्रै्ल **1843** ई**0** तक समस्त सिंध पर अंग्रेजों ने बलात् अधिकार कर लिया था। सभी अमीर लगभग घुटने टेक चुके थे। **4** अप्रै्ल को नेपियर ने गवर्नर जनरल एलनबरो को सूचित किया, "मैनें सिंध ले लिया है।" शेर मुहम्मद ने एक प्रयत्न और किया, परंतु **14** जून को पुनः उसकी पराजय हुई और वह भाग गया। इस प्रकार सिंध युद्ध समाप्त हुआ और सिंध पर अधिकार पूर्ण हुआ।

7.8 सिंध का विलय

इस प्रकार युद्ध प्रारंभ होने के लगभग पांच महीने के अंतर्गत ही समस्त सिंध अंग्रेजों के अधीन था। विरोध एवं विद्रोह शांत हो गए। गवर्नर जनरल एलनबरो ने अगस्त **1843** ई**0** में सिंध को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिलाने की घोषणा कर दी। इस प्रकार असहाय सिंध ब्रिटिश सामा्रज्य में विलीन हो गया। लेपिटनेण्ट जनरल डब्ल्यू**0**एफ**0**पी**0** नेपियर ने चार्ल्स नेपियर के सिंध विजय की प्रशंसा की है, "इस प्रकार उसने हमारे एंग्लो-इण्डियन साम्राज्य को पश्चिम में एक अधिक छोटी तथा सुरक्षित सीमा प्रदान की और सिंध नदी पर अधिकार दिलाकर मध्य एशिया के लिए सीधा व्यापारिक मार्ग खोल दिया तथा एक बड़े प्रदेश में अंग्रेजी शक्ति की धाक जमा दी।" परन्तु सिंध विजय की आलोचना भी काफी प्रबल है।

7.9 सिंध के विलय की आलोचना

एलनबरो द्वारा सिंध के विलय की आलोचना समकालीन तथा परवर्ती इतिहासकारों तथा राजनीतिज्ञों ने की है। सिंध विलय की आलोचना इस घटना के नायक चार्ल्स नेपियर की डायरी से प्रारंभ होती है। नेपियर ने लिखा है: "हमें सिंध को अपने अधीन करने का अधिकार नहीं है, फिर भी हम ऐसा करेंगे और यह एक बहुत लाभदायक, उपयोगी तथा मानवतापूर्ण नीचता होगी।" हैदराबाद के पूर्व रेजिडेण्ट आउट्रम ने भी इस नीति की आलोचना की। उसके अनुसार ताकत का उपयोग सबसे आसान था परंतु अफसोस की बात की ताकत का उपयोग हमने अच्छे काम में नहीं किया। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट तथा पत्रों में भी इस नीति की आलोचना हुई। एक पक्ष तो सिंध वापस अमीरों को लौटाने के पक्ष में था। परंतु साम्राज्यवादी बाध्यता ने सिंध विलय को उचित माना।

वास्तव में सिंध पर अधिकार करना अनुचित था, क्योंकि सिंध के साथ मित्रता की संधियां की गई थीं। समय-समय पर अंग्रेजों द्वारा संधियों मे किए गए एक तरफा बदलाव को भी सिंध के अमीरों ने स्वीकार किया। अमीरों ने अफगान युद्ध के समय भी पूर्ण सहयोग किया परंतु अंग्रेजों की लालची निगाहें तृप्त न हो पायीं। साथ ही अफगान युद्ध में अमीरों ने यथाशक्ति अंग्रेजों को अपना सहयोग प्रदान किया, परंतु अंग्रेजों ने अमीरों पर विविध निराधार एवं मन गढ़न्त आरोप लगाए। इस प्रकार सिंध मित्र के रूप में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा रहा था। परंतु अंग्रेजों ने नैतिकता की परवाह न करते हुए सामरिक एवं आर्थिक महत्व के कारण सिंध को अपनी साम्राज्यवादी नीति का शिकार बना लिया। अफगान में खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से भी सिंध पर अधिकार कर लिया गया।

इस प्रकार पश्चिमोत्तर में स्थित सिंध को **1843** ई**0** में ब्रिटिश भारतीय सामा्रज्य का हिस्सा बना लिया गया। डॉ ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "सिंध के अमीर ब्रिटिश सामा्रज्यवाद के ऐसे अभागे शिकार थे, जो कहीं अपील भी नहीं कर पाए।"

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1. अंग्रेजों की सिंध विजय।

2. सिंध विजय अफगान युद्ध के परिणाम के रूप में।

7.10 सारांश

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि सिंध, भारतीय ब्रिटिश सामा्रज्य के पश्चिमोत्तर में स्थित एक स्वतंत्र राज्य था, जहां बलूची जनजातियों ने अपना शासन स्थापित किया था। यहां के शासक अमीर कहलाते थे। अंग्रेजों का सिंध के साथ गहरे संबंध की शुरूआत एलेग्जेण्डर बर्न्स की सिंध यात्रा से शुरू हुई जब सिंध का आर्थिक तथा सामरिक महत्व सामने आया। अंग्रेज शक्तिशाली सिक्ख शासक महाराजा रणजीत सिंह तथा अफगानिस्तान से बचाने के बहाने सिंध से विभिन्न सुविधाएं प्राप्त करते रहे और मित्र बनने का ढोंग करते रहे। परंतु प्रथम आंग्ल - अफगान युद्ध में अंग्रेजों की बुरी स्थिति तथा एलनबरो की विस्तारवादी नीति का शिकार बना सिंध और एक छोटे संघर्ष के उपरांत अगस्त **1843** ई**0** में सिंध को भारतीय सामा्रज्य में मिला लिया गया। सिंध की विजय अनैतिक कदम था। परंतु आर्थिक एवं सामरिक महत्व के कारण अंग्रेजों ने चार्ल्स नेपियर के आक्रामक सिंध नीति का समर्थन करते हुए इसे उचित बताया।

7.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 7.**1** प्रस्तावना, 7.**4** अंग्रेजों का सिंध के साथ आरंभिक संबंध, 7.**5** उन्नीसवीं सदी में सिंध के संबंध में अंग्रेजों की नीति, 7.**6** सिंध विजय का कारण, 7.**7** अंग्रेजों का सिंध के साथ युद्ध तथा 7.**8** सिंध का विलय।

2. देखिए 7.**6** सिंध विजय का कारण**,** 7.**7** अंग्रेजों का सिंध के साथ युद्ध।

7.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. Lambrick, H.T. – Sir Charles Napier and Sind.
2. Khera, P.N. – Annexation of Sind.
3. William Napier – Conquest of Sind.
4. Dodwell, H.H. – Cambridge History of India.
5. Smith, V.A.- Oxford History of India.
6. Roberts, P.E. - History of British India.

7.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. यशपाल एवं ग्रोवर - आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन।
2. शर्मा**,** एल**0**पी**0 -** आधुनिक भारत।
3. Chhabra, G-S – Advanced Study in the History of Modern India, Vol. 2
4. Aggarwal, J.C. – Modern Indian History.
5. Majumdar, Raychaudhuri and Datta – An Advanced History of India.

7.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. अंग्रेजों द्वारा सिंध की विजय की चर्चा कीजिए।
2. “हमें सिंध को अपने अधीन करने का अधिकार नहीं है**,** फिर भी हम ऐसा करेंगे और यह एक बहुत लाभदायक**,** उपयोगी तथा मानवतापूर्ण नीचता होगी।” इस कथन की व्याख्या कीजिए।

इकाई आठ

1857 का विद्रोहः 1857 के पूर्व के विद्रोह, 1857 का विद्रोहः कारण, प्रमुख नेता, घटनाऐं एवं प्रसार, प्रकृति ,असफलता के कारण एवं परिणाम

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 1857 से पहले के विद्रोह
8.4 कारण
8.4.1 दीर्घकालिक कारण
8.4.1.1 किसानों का शोषण
8.4.1.2 परंपरागत आर्थिक ढांचे का विनाश
8.4.1.3 राज्य हड़प की नीति और अवध का विलय
8.4.1.4 धार्मिक- सामाजिक मान्यताओं में हस्तक्षेप
8.4.1.5 विदेशी शासन और नस्लीय भेदभाव
8.4.1.6 मध्य एवं उच्च वर्गों की उपेक्षा
8.4.1.7 एकक्षत्र राजनीतिक प्रभुसत्ता बनाने के प्रयास
8.4.1.8 तात्कालिक कारण: चर्बीदार कारतूस
8.5 1857 का विद्रोह
8.5.1 मेरठ छावनी में विद्रोह
8.5.2 दिल्ली कूच
8.5.3 विद्रोह का क्षेत्रीय तथा सामाजिक विस्तार
8.5.4 विद्रोह का नेतृत्व तथा विभिन्न केंद्र
8.5.4.1 बहादुरशाह ज़फर
8.5.4.2 नाना साहेब एवं तातियाँ टोपे
8.5.4.3 रानी लक्ष्मीबाई
8.5.4.4 कुंवर सिंह
8.5.4.5 मौलवी अहमदुल्लाह
8.5.4.6 खान बहादुर खां
8 .5.4.7 बेगम हज़रत महल एवं बिरजीश कादिर
8.5.4.8 शहजादा फ़िरोज़
8.5.4.9 असंख्य अज्ञात सिपाही एवं नागरिक

8.6 विद्रोह का दमन
8.7 असफलता के कारण
8.7.1 विचारधारा एवं कार्यक्रम का अभाव
8.7.2 तकनीक एवं संसाधनों की कमी
8.7.3 भारतीयों की आपसी फूट और वैमनस्य
8.7.4 नेताओं की आपसी जलन एवं प्रतिस्पर्धा
8.7.5 ब्रिटिश सेना की अद्वितीय शक्ति
8.7.6 शिक्षित भारतीयों द्वारा विरोध
8.8 विद्रोह की प्रकृति
8.9 परिणाम
8.10 सारांश
8.11 पारिभाषिक शब्दावली
8.12 सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची
8.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

1857 का विद्रोह भारत के औपनिवेशिक इतिहास का पहला व्यापक जनप्रतिरोध था। जिसने भारत में कुछ समय के लिए ब्रिटिश राज की चूलें हिला दीं। यह विद्रोह इतना व्यापक था कि लगभग समूचा उत्तर औरमध्य भारत इसकी चपेट में आ गए। भले ही इस विद्रोह की शुरुआत मेरठ छावनी में कुछ सिपाहियों की खुली बगावत से शुरू हुयी थी, इस विद्रोह का स्वरुप कहीं ज्यादा व्यापक था। एक बार चिंगारी भड़कते ही लाखों-लाख किसान, दस्तकार, हस्तशिल्पी, दिहाड़ी मजदूर और जमींदार – सब अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ने में जुट गए। और, लगभग एक साल तक बहादुरीपूर्ण तरीके से हर मोर्चे का सामना किया। यह **19** वीं सदी में किसी भी उपनिवेशवादी सत्ता के विरुद्ध सबसे बड़ा जनविद्रोह था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको **1857** के विद्रोह के बारे में विस्तार से अवगत कराना है। संयोगवश भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की औपचारिक शुरुआत-**1757** के प्लासी के युद्धके ठीक सौ साल बाद कम्पनी शासन के विरुद्ध यह ताकतवर जन प्रतिरोध खड़ा हुआ था। इस इकाई में आप इस विद्रोह के कारणों, घटनाओं , क्षेत्रीय विस्तार, नेतृत्व, विद्रोह के पतन , उसकी असफलता के कारणों और इस विद्रोह के परिणामस्वरूप उभरने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे।

8.3 1857 से पहले के विद्रोह

कम्पनी राज में विद्रोह कोई अनोखी बात नहीं थी। शायद ही ऐसा कोई वर्ष रहा हो जब उसे स्थानीय स्तरों पर विद्रोह का सामना न करना पड़ा हो। **1763** से लेकर **1856** तक कंपनी के अधीन राज्य में तकरीबन **40** बड़ेविद्रोह हुए थे। इस आंकड़े में सैंकड़ों छोटे विद्रोह शामिल नहीं हैं। पहला सिपाही विद्रोह भी बक्सर की लड़ाई के वर्ष यानि **1764** में बंगाल में फूटा था। जिसे अभूतपूर्व सख्ती के साथ कुचल दिया गया था। **30** सैनिकों को तोपकी नाल से बांधकर उड़ा दिया गया था। **1806** में वेल्लोर का प्रसिद्द सैनिक विद्रोह हुआ, जो केवल एक दिन ही चला था। दोनों ही तरफ से भयानक-खून खराबा हुआ और सैकड़ों सैनिकों को इस विद्रोह में अपनी जान से हाथधोना पड़ा। इस विद्रोह की जडें भी धार्मिक मान्यताओं में कम्पनी सरकार के हस्तक्षेप में छुपी थीं। इसके बाद, **1824** में बैरकपुर की**47** वीं रेजिमेंट ने उस वक़्त बर्मा जाने से इनकार कर दिया जब आंग्ल- बर्मा युद्ध (**1824-26**) चल रहा था। मैदान में इकठ्ठा बागी रेजिमेंट पर तोपों से गोले बरसाए गए और आर्मी लिस्ट से पूरी की पूरी रेजिमेंट का नामो- निशान मिटा दिया गया। **1825** में आसाम के तोपखाने में सैनिक विद्रोह पर उतर आये। फिर **1844** का साल कम्पनी के लिए बड़ी परीक्षा बन कर आया। इस साल सेना की कुल **7** बटालियनों में विद्रोह हुए बहरहाल, इन विद्रोहों की प्रकृति अपने मूल स्वरुप में सैनिक विद्रोह की ही बनी रही। जनता की सहानुभूति के बावजूद ये विद्रोह किसानों और मजदूरों तथा अन्य वर्गों तक नहीं फ़ैल सके। **1857** के विद्रोह के साथ इनविद्रोहों की चर्चा करने का उद्देश्य सैनिक विद्रोहों की परंपरा का उल्लेख- मात्र करना है। इनको किसी भी रूप में **1857** के विद्रोह की पूर्वपीठिका नहीं माना जा सकता।

8.4 कारण

8.4.1 दीर्घकालिक कारण

8.4.1.1 किसानों का शोषण

भले ही **1857** के विद्रोह की शुरुआत एक सैनिक विद्रोह से हुयी थी, उसकी जडें कृषक असंतोष में छुपी हुयी थीं। दरअसल, सैनिक भी उसी समाज का हिस्सा थे जिसका अंगरेजी शासन द्वारा पिछले **100** सालों में भयानक शोषण किया गया था। बिपन चन्द्र के शब्दों में कहें तो "सैनिक वर्दीधारी किसान" थे। सर जेम्स आउट्रम ने लिखा भी है- "अवध का हर किसान परिवार, बिना किसी अपवाद के, अपने परिवार के एक आदमी को सेना में भेजता ही था". इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि कम्पनी की कुल सेना में **75,000** सिर्फ अवध के थे।

वास्तव में, खेती की अवनति ने किसान परिवारों को आय के दूसरे साधन तलाशने के लिए मजबूर किया था। इस तरह, सैनिकों की चिंताएं वस्तुतः देश के बाकी वर्गो से भिन्न नहीं थीं। **1857** विद्रोह

के ठीक पहले करीब **14,000** याचिकाएं सैनिकों की ओर से दायर की गयी थी जिनमें भूराजस्व व्यवस्था के खिलाफ असंतोष ज़ाहिर किया गया था।

अंग्रेजों की भूमि और भूराजस्व संबंधी नीतियों ने किसान को ज़मीन के मालिकाना हक़ से वंचित कर दिया था। वे अब काश्तकार की से हैसियत से गिरकर बंटाईदार बनकर रह गए थे। अब लगान न चुकाए जाने की स्थिति में ज़मींदार किसानों की ज़मीनें नीलाम करा सकता था। परन्तु, ज़मींदार को भी निर्धारित लगान न वसूलने की स्थिति में अपनी ज़मींदारी से हाथ धोना पड़ता था। ज़मींदारों से छीनी गयी ज़मीनों को और ऊंचे दामों पर नीलाम कर और अधिक लगान वसूलने की कोशिश की जाती थी। एक अनुमान के मुताबिक़ **1794** और **1807** के बीच ज़मींदारों की लगभग आधी ज़मीनें बेच दी गयी थीं। ऐसी ज़मीनों पर मनचाही बोलियाँ लगाकर ज़मीनें खरीदने वाले लोग गावों के यथार्थ से कटे हुए शहरी, संपन्न लोग होते थे। जो अपने बिचौलियों के माध्यम से लगान की तय रकम वसूलने के सब हथकंडे अपनाते थे। इस नए चलन ने "दूरस्थ ज़मींदारी" को बढ़ावा दिया। जिससे कि गाँव के प्रशासन में बाहरी लोगों का आविर्भाव हुआ, जिनका ग्रामीणों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था।

सूर्यास्त क़ानून जैसी दमनकारी परम्पराएं चलायी गयी थीं। जिसमें लगान चुकाने की आख़री तारीख को सूर्यास्त के साथ ही किसान की ज़मीन की बोली लगा दी जाती थी। तिस पर भी उन्हें अपने खेतों में मनचाही फसल उगाने का अधिकार नहीं था। कम्पनी सरकार उनसे कच्चा कपास, कच्चा रेशम और नील जैसी फसलें उगाने को बाध्य करती थी, जिनकी अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में खासी मांग थी। इस तरह खेती का वाणिज्यीकरण एक नयी प्रवृत्ति बन गया।

इस तरह, ज़मींदार,महाजन और बिचौलियों के तिहरे मकडजाल में उलझा किसान कर्जे के दलदल में डूबता जा रहा था। लगभग पूरे साल भुखमरी की कगार पर रहकर अपनी ज़िन्दगी चलाना उनकी नियति बन गया था। इस स्थिति में पड़ने वाले अकालों में मरने वालों की संख्या बहुत बढ़ जाती थी।**1770** और **1857** के बीच तकरीबन **12** भीषण और अनेकों छोटे अकाल पड़े थे।

8.4.1.2 परंपरागत आर्थिक ढांचे का विनाश

अंग्रेजों ने भारत के अधिकतम आर्थिक दोहन के लिए परंपरागत आर्थिक ढांचे का विनाश किया था। भारत का सूती कपडा उद्योग, जिसकी गुणवत्ता और कम कीमत की दुनिया भर में धाक थी, इस शोषण का सबसे बुरा शिकार बना। लन्दन और मैनचेस्टर के कारखानों में बनने वाले सूती कपड़े के आयात को बढ़ावा देने के लिए भारत में कम्पनी सरकार ने ब्रिटिश माल के आयात पर शुल्क में भारी कटौती कर दी थी। जिससे यह लगभग मुक्त व्यापार की वस्तु बन गयी थी। विदेश में मशीन से बने कपड़े के सामने हथकरघा उद्योग प्रतियोगिता में टिक न सका। यही नहीं, ब्रिटिश

साम्राज्य में हर कहीं भारतीय माल पर बहुत अधिक आयात शुल्क थोप दिए गए। भारतीय बुनकरों को कम्पनी ने बेहद कम दाम में अपना उत्पाद बेचने पर मजबूर किया गया। **1813** में ब्रिटिश सूती कपडे का जो आयात **11,00,000** पौंड था, **1856** तक बढ़कर **63,00,000** पौंड हो गया था। और फिर, कच्चे कपास की बिक्री पर कम्पनी के एकाधिकार के बाद हथकरघा उद्योग की दम निकल गयी। कम्पनी के बेहद घाटे वाले सौदों से आजिज़ आकर अपने अंगूठे काट लेने वाले ढाका के बुनकरों की कहानियां तो प्रसिद्द हैं। भारतीय उद्योगों के इस पतन को विऔद्योगीकरण कहा जाता है। लगभग यही हाल अन्य हस्तशिल्पों का भी हुआ जोकि कम्पनी शासन से पहले भारतीय राज्यों के संरक्षण में फल-फूल रहे थे। एक साथ कृषि और उद्योग दोनों की अवनति ने रोजगार और आजीविका का घोर संकट पैदा किया। जो कि कम्पनी राज की मजबूती के साथ और बढ़ता गया। दरअसल, प्रत्येक किसान, दस्तकार और हस्तशिल्पी , जिनमें से बहुतेरे आंशिक रूप से दस्तकार भी थे और किसान भी, दोहरा अभिशाप भुगत रहे थे।

8.4.1.3 राज्य हड़प की नीति और अवध का विलय

डलहौजी ने कम्पनी राज्य के विस्तार के लिए एक नीति चलायी थी, जिसे अब राज्य हड़प की नीति कहा जाता है। इस नीति के अंतर्गत **1848** में सतारा और **1854** में झाँसी और नागपुर को वाजिब उत्तराधिकारी न होनेकी वजह से हड़प लिया गया। **1856** में अवध का विलय भी कम्पनी राज में हो गया। यह ऐसा राज्य था जिसने कम्पनी राज के प्रति निष्ठां और वफादारी निभाने में कभी कोई कोर-कसर नहीं छोडी थी। इसके बाद लोगों में यह भावना घर करने लगी थी कि कम्पनी से वफादारी का कोई मोल नहीं है। कम्पनी का दावा था कि वह नवाब के कुशासन से लोगों को निजात दिलाएगी। लेकिन उन्होंने आते ही शोषण के सब औजार खोल दिए थे।कम्पनी सैनिकों में कम्पनी के इस कदम को लेकर जबरदस्त गुस्सा था। इस अधिग्रहण के फलस्वरूप अवध के **21,000** तालुकेदार सम्पत्तिविहीन हो गए थे। उनकी ज़मीनें ज़ब्त कर ली गयी थीं। वे भी कम्पनी राज केप्रति नफरत की आग से जल रहे थे। इस तरह कम्पनी सरकार के प्रति एक अविश्वसनीयता ने जन्म लेना शुरू कर दिया था।

8.4.1.4 धार्मिक- सामाजिक मान्यताओं में हस्तक्षेप

1820 के बाद कम्पनी राज ने सेना को समरूप बनाने के लिए सैनिकों के धार्मिक- सामजिक मामलों में हस्तक्षेप करने शुरू कर दिए थे। कम्पनी सरकार को लेकर एक बहुत गंभीर शिक़ायत ईसाई मिशनरी गतिविधियोंऔर सामाजिक सुधारवादी क़दमों से जुडी थी। ईसाई मिशनरी कम्पनी सरकार और प्रशासन के प्रोत्साहन से काफी मुखर ढंग से हिन्दू और मुस्लिम सामाजिक मान्यताओं की तीखी खिल्ली उड़ाते थे। ईसाई मिशनरियोंका मुख्या उद्देश्य लोगों का धर्म परिवर्तन कराके उन्हें

ईसाई बनाना हुआ करता था।**1850** में एक क़ानून के द्वारा धर्म परिवर्तन से ईसाई बनने वाले लोगों को उनकी पैत्रक संपत्ति में हिस्सा कानूनी बना दिया गया। सेनामें कम्पनी के खर्चे पर रखे गए ईसाई धर्मप्रचारकों को लेकर सिपाहियों में भी बहुत गुस्सा था। दूसरी ओर, भारतीय समाजसुधारकों की मदद करते हुए भारतीय सामाजिक कुरीतियों जैसे सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह,शिशु- हत्या और मानव बलि आदि को गैर- कानूनी घोषित करने की उपयोगितावादी नीति ने भी परंपरागत भारतीय समाज को यकीन दिलाया कि उनका दीन- धर्म खतरे में है। सैनिकों की गंभीर शिकायतें हस्तक्षेपकारी सेवा- शर्तों और उनकी अपनी धार्मिक और जातीय पहचान से भी जुडी थीं। बंगाल आर्मी में ब्राह्मण बहुतायत से थे। **1856** में कम्पनी ने उनसे समुद्र पार सेवा की जमानत लेने को मजबूर किया। एक अन्यआदेश में कहा गया कि पंजाब और सिंध जाने वाले सैनिकों को विदेश- सेवा भत्ता नहीं दिया जाएगा। कम्पनी की देश- विदेश की भले अपनी परिभाषाएं थी, लेकिन सिपाहियों के लिए अवध ही उनका वतन था। फिर धार्मिक प्रतीकों जैसे तिलक, माला, दाढी आदि को लेकर सिपाहियों के पुराने आग्रह थे ही।

8.4.1.5 विदेशी शासन और नस्लीय भेदभाव

अंग्रेजों का समूचा रहन- सहन, पहनावा, रोब- दाब भारतीयों को हरदम उनके विदेशी होने का अहसास कराता था। पूरा का पूरा तंत्र नस्लीय भेदभाव पर आधारित था। भारतीय सिपाहियों को गोरे़ सिपाहियों से बहुत कम वेतन मिलता था । भारतियों को सेना या प्रशासन में कोई ऊंचा ओहदा नहीं दिया जाता था। कितनी ही बहादुरी और वफादारी के बाद भी, एक भारतीय सूबेदार से ज्यादा कुछ नहीं बन सकता था। उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था और रोज़मर्रा के मामलों में भी उन्हेंअपमानजनक विशेषण और गालियाँ सुननी पड़ती थीं।

8.4.1.6 मध्य एवं उच्च वर्गों की उपेक्षा

कम्पनी राज के स्थापित होने के साथ ही वे सारे वर्ग जो देशी राज्यों के संरक्षण में आबाद थे, सत्ता और शक्ति से दूर होते चले गए। इनमें उच्च प्रशासनिक ओहदों पर रहने वाले लोग, बुद्धिजीवी, साहित्य, कला तथा अन्यक्षेत्रों से जुड़े लोग शामिल थे। ये न केवल राज्य के आश्रय से बेदखल कर दिए गए वरन इनके सामने आजीविका का संकट भी आन खड़ा हुआ। कम्पनी राज के अंतर्गत सेना और प्रशासन के सभी ऊंचे पद भारतीयों के लिएबंद थे। धर्मगुरु- पंडित और मौलवी- भी एक प्रभावशाली तबका हुआ करता था, जिसे अनिवार्य रूप से लगभग हर राज्य ने संरक्षण प्रदान किया था। इन सभी वर्गों ने अपने विशेषाधिकारों पर हुयी चोट का बदला कम्पनीराज की घोर मुखालफत करके चुकाया। ये धार्मिक वर्ग, जिनका समाज में अपना सम्मान था, घूम- घूम कर राज- विरोधी चेतना का प्रचार कर रहे थे।

8.4.1.7 एकक्षत्र राजनीतिक प्रभुसत्ता बनाने के प्रयास

कम्पनी ने डलहौजी के नेतृत्व में राज्य विस्तार की आक्रामक नीति अपनाई थी। **1849** में ही डलहौजी ने स्पष्ट कर दिया था कि बहादुरशाह ज़फर के बाद मुगलों को लालकिला खाली कर देना होगा। **1856** में कैनिंग ने बहादुरशाह के बाद सम्राट की पदवी किसी मुग़ल वंशज को न देने की घोषणा कर दी। दूसरी ओर, नाना साहेब की पेशवा होने के नाते दी जा रही पेंशन बंद कर दी गयी और उन्हें कानपुर के पास बिठुर में बसने को मजबूर किया गया था। यह पुराने शासक वर्गों- मुगलों और अन्य स्थानीय शासकों- की वैधानिक सर्वोच्चता को सीधी चुनौती थी।

8.4.1.8 तात्कालिक कारण: चर्बीदार कारतूस

सेना में इनफील्ड रायफल में इस्तेमाल होने वाली कारतूसों को भरने से पहले दांत से काटना पड़ता था। कलकत्ता के पास दमदम से यह अफवाह फ़ैली कि कारतूसों में इस्तेमाल की जाने वाली ग्रीस गाय और सूअर कीचर्बी से तैयार की जाती है। जल्द ही यह खबर सेना के कई हलकों में आग की तरह फ़ैल गयी। हिन्दू और मुस्लिम दोनों सैनिकों को यह बात नागवार गुजरी। वैसे भी बंगाल आर्मी में ब्राह्मण, राजपूत और भूमिहारों कीबहुतायत थी। इस खबर ने घटनाओं की एक ऐसी श्रृंखला को जन्म दिया, जिससे सैनिकों के सब्र का बाँध टूट गया।

8.5 1857 का विद्रोह

8.5.1 मेरठ छावनी में विद्रोह

मेरठ छावनी में विद्रोह भड़कने से तकरीबन एक महीना पहले **29** मार्च, **1857** को बैरकपुर छावनी में मंगल पाण्डे को अपने सार्जेंट मेजर पर हमला करने और विद्रोह की घोषणा करने की वजह से फांसी से दी गयी थी। असली बगावत मेरठ छावनी में तब भड़की जब **24** अप्रैल को तीसरी घुड़सवार सेना के **90** से ज्यादा सैनिकों ने चर्बीदार कारतूसों का इस्तेमाल करने से खुला इनकार कर दिया। इस घटना ने सिपाहियों में आम विद्रोह भड़का दिया और उन्होंने खुली बगावत करते हुए अपने साथी सैनिकों को जेल से छुड़ा लिया। अधिकारियों को मार डाला गया और लगभग पूरे शहर से ब्रिटिश सत्ता का नामोनिशान मिट गया। लोग जैसे कि इसी पल के इंतज़ार में बैठे थे, गावों से लोगों के हुजूम चल पड़े और सैनिक बाज़ार, अधिकारीयों के बंगले समेत हर वो चीज जो ब्रिटिश सत्ता का प्रतीक थी, आग के हवाले कर दी गयी।

8.5.2 दिल्ली कूच

मेरठ के सैनिकों के अगले कदम ने विद्रोह के पूरे चरित्र को बदल दिया। रात में ही सैनिक दिल्ली की ओर कूच कर गए। दिल्ली के सैनिक उनसे आ मिले। दिल्ली के पॉलिटिकल एजेंट साइमन फ्रेज़र तथाअन्य ब्रिटिश अधिकारियों को

मौत के घात उतार दिया गया। पूरा शहर घेर लिया गया और, **10** मई की सुबह लालकिले पर पहुच कर उन्होंने बहादुरशाह को शहंशाह-ए-हिंदुस्तान घोषित कर दिया। उनकी यह समझ इस बात का परिचायक थी कि मुग़ल बादशाह भारत की राजनीतिक एकता का सर्वमान्य प्रतीक था। इसके अलावा, इसने हिन्दू- मुस्लिम एकता की मिसाल पेश की और सिद्ध किया कि उस वक़्त लोगोंमें हिन्दू और मुसलमानों के एक- दूसरे से भिन्न होने की भावना नहीं थी।

8.5.3 विद्रोह का क्षेत्रीय तथा सामाजिक विस्तार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह विद्रोह अपने क्षेत्रीय स्वरुप में बहुत व्यापक था। भारत के उत्तर में यह पूर्वी पंजाब तक फ़ैल गया था। दक्षिण में नर्मदा तक इसका विस्तार था। पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक इस विद्रोह ने ब्रिटिश राज को लगभग उखाड़ फेंका था। देखते ही देखते विद्रोह कानपुर, लखनऊ, बरेली तथा रूहेलखंड, जगदीशपुर (बिहार), झाँसी, अलीगढ़, इलाहाबादतथा ग्वालियर तक के इलाके इसकी ज़द में आ गए।लेकिन देश के बाकी हिस्सों में इस विद्रोह के प्रति गहरी हमदर्दी थी। यहाँ तक हैदराबाद और बंगाल में भी विद्रोह की घटनाएं सामने आई। रजवाड़े, जिन्होंने काफी हद तक खुद को इस विद्रोह से दूर रखा, की सेनाएं मौका पाते ही विद्रोहियों के साथ आकर मिल गए। इंदौर के अनेक सिपाहियों ने विद्रोह की राह पकड़ ली और ग्वालियर के सिंधिया की सेना के तकरीबन **20,000** सिपाही झांसी की रानी के साथ संघर्ष में उतर पड़े।

इस विद्रोह को सिपाही विद्रोह से कहीं ज्यादा एक जनविद्रोह का स्वरुप उन किसानों, दस्तकारों, हस्तशिल्पियों, दिहाड़ी मजदूरों, दुकानदारों और अवध के उन ज़मींदारों ने दिया, जो हर तरह से अंगरेजी शासन के विरुद्ध डट कर लड़े। यही लोग विद्रोह की ताकत बने। जिनकी वजह से गाँव-गाँव तक कम्पनी शासन की ज़द से कुछ समय के लिए बाहर निकल गया था। इन्होंने ब्रिटिश सत्ता के प्रतिष्ठानों- थाना, कचहरी, चुंगी, बंगले आदि- सहित सूदखोरों, महाजनों बिचौलियों और दूरस्थ जमींदारों पर हमले किये। बही-खाते तथा अन्य लिखा-पढी के दस्तावेज जल दिए गए। लोगों की जनभागीदारी का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अवध में विद्रोह और उसके दमन के दौरान शहीद हुए तकरीबन **1,50,000** लोगों में **1,00,000** नागरिक थे।

8.5.4 विद्रोह का नेतृत्व तथा विभिन्न केंद्र

बहादुरशाह ज़फर

एक बार विद्रोहियों के दिल्ली पहुँचते ही यह विद्रोह का स्वाभाविक केंद्र बन गया। क्योंकि भारत की सार्वदेशिक एकता के प्रतीक सम्राट बहादुरशाह ज़फर यहाँ लालकिले में मौजूद थे। **82** वर्षीय वृद्ध बहादुरशाह ज़फर विद्रोह में विद्रोह के का प्रतीकात्मक एकता का प्रतीक बन गए।

नाना साहेब, तातियाँ टोपे एवं अजीमुल्लाह (कानपुर)

नाना साहेब (वास्तविक नाम धोंधू पन्त) अंतिम पेशवा बाजीराव **II** के दत्तक पुत्र थे। उन्होंने स्वयं को मुग़ल बादशाह का पेशवा घोषित कर दिया। **5** जून, **1857** को कानपुर से अंग्रेजी सेना खदेड़ दी गयी। तात्याँ टोपे उनके विश्वस्त सेनापति थे। उनकी वीरता, स्वामीभक्ति और ब्रिटिश- विरोध की दास्तानें मशहूर हैं। अजीमुल्लाह नाना साहेब के एक अन्य विश्वसनीय सहायक थे।

रानी लक्ष्मीबाई (झाँसी)

अपने गोद लिए पुत्र को उत्तराधिकारी न मानने के कारण विद्रोह में उतरी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। उनकी सेना में स्त्रियों ने भी कंधे से कन्धा लड़ाकर अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया था। झांसी को आज़ाद कराने के बाद रानी ने अंग्रेजों के वफादार सिंधिया पर तात्याँ टोपे और अपनी अफगान टुकड़ी की मदद से ग्वालियर पर हमला कर दिया। इस हमले सेघबराकर सिंधिया भाग खड़ा हुआ था।

कुंवर सिंह (बिहार)

आरा (बिहार) के पास जगदीशपुर के कुंवर सिंह ने अस्सी वर्ष के करीब का होते हुए भी जिस रणकौशल का परिचय दिया, उससे उन्हें **1857** के विद्रोह का संभवतः सबसे प्रमुख सेनापति तथा रणनीतिज्ञ माना गया है। उन्हें आम जनता "बिहार का सिंह" के नाम से पुकारती थी। वे रोहतास, मिर्जापुर, रीवा, बांदा और लखनऊ तक लड़े। अपने अंतिम

युद्ध में भी उन्होंने अंग्रेजों को बुरी तरह हराया था। लेकिन इसी युद्ध में जख्मी होने की वजह से **26** अप्रैल, **1857** को वे काल कवलित हो गए।

मौलवी अहमदुल्लाह (फैज़ाबाद)

विद्रोह के पहले ही मौलवी अहमदुल्लाह के खिलाफ कम्पनी ने अपनी एक सेना भेजी थी। अंग्रेज उनकी बहादुरी और चतुरता से इतना भयाक्रांत थे कि उन पर **50,000** रुपये का नगद इनाम घोषित कर रखा था। जो उस समय के

हिसाब से बहुत बड़ी रकम थी। फैजाबाद और आस- पास के इलाकों में वे विद्रोह के सबसे बड़े नेता थे।

बख्त खान (बरेली)

बख्त खान ब्रिटिश सेना के तोपखाने में एक मामूली सूबेदार थे। उन्होंने बरेली में विद्रोह का नेतृत्व किया और सैनिकों के साथ दिल्ली कूच कर दिया था। बख्त खान विद्रोह के बाद राज- काज चलाने के लिए बनी नियंत्रण समिति के नेता तथा बहादुरशाह के निकट सहयोगी थे।

बेगम हज़रत महल एवं बिरजीश कादिर (लखनऊ)

लखनऊ में अवध की बेगम हज़रत महल ने अपने अल्पायु पुत्र बिरजीश कादिर को नवाब घोषित किया और लखनऊ रेजीडेन्सी पर धावा बोल दिया। उनके बाद बेगम ने मौलवी अहमदुल्लाह के साथ शाहजहाँपुर तक विद्रोह का नेतृत्व किया।

असंख्य अज्ञात सिपाही एवं नागरिक एवं स्थानीय नेता

परन्तु विद्रोह के इन ज्ञात नायकों के अलावा असंख्य सिपाही, नागरिक और छोटे ज़मींदारों जिन्होंने स्थानीय स्तरों पर विद्रोह को नेतृत्व और संसाधन मुहैय्या कराए, इस विद्रोह की रीढ़ थे। स्थानीय स्तरों पर **1857** की धमक छोटे-छोटे कस्बों और गावों तक सुनायी देती है। विद्यार्थी अपने शहर का डिस्ट्रिक्ट गजेटिएर खोज कर अपने जिले में इस दौरान हुयी गतिविधियों को जान सकते हैं। इस विद्रोह से प्रेरित होकर देश के कुछ अन्य इलाकों में भी विद्रोह खड़े करने के प्रयास हुए। असाम में ठीक इसी समय दीवान मनीराम दत्त ने वहां के अंतिम राजा के पोते को राज घोषित कर विद्रोह कर दिया। कोटा (राजस्थान) में कुछ सिपाहियों ने अंग्रेज एजेंट की हत्या कर दी। उड़ीसा में संबलपुर के राजकुमारों ने विद्रोह किया। उड़ीसा में ही गंजाम जिले भी विद्रोह हुआ। पंजाब के अजनाला में घुड़सवार सेना के सैनिक वजीर खान ने बगावत का बिगुल फूँक दिया। कुल्लू जैसे पर्वतीय क्षेत्र में राणा प्रताप सिंह और वीर सिंह ने विद्रोह का नेतृत्व किया। यहाँ तक दक्षिण भारत में भी हैदराबाद, सतारा और कोल्हापुर में विद्रोह हुए। लेकिन ये विद्रोह तुरंत कुचल दिए गए। अधिकांश मामलों में ये इतने अल्पजीवी थे कि विद्रोह का रूप नहीं ले सके।

8.6 विद्रोह का दमन

लेकिन दुनिया की सबसे ताकतवर सैन्य ताकत के सामने बरछे, भाले, तलवारों, कम्पनी शस्त्रागार से लूटी हुयी बन्दूकों और कभी- कभी लाठी- डंडों से लड़ने वाली विद्रोही बहुत लम्बे समय तक टिक न सकी। अचानक हुए विद्रोह से घबराए अंग्रेजों ने सँभालते ही अपने साम्राज्य की रक्षा के संगठित और सुनियोजित प्रयास कर दिए। ब्रिटेन की सरकार इन मामलों में गहरी दिलचस्पी ले रही थी। उसकी विकासमान पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपने उपनिवेशों के अंधाधुंध आर्थिक शोषण पर टिकी थी। **20** सितम्बर, **1857** को यानि तकरीबन साधे चार महीने बाद अंगरेजी सेना ने दिल्ली पर फिर से अधिकार कर लिया। बहादुरशाह हुमायूँ के मकबरे से बंदी बना लिए गए और लेफ्टिनेंट हडसन ने उनके पुत्रों को गोली से उड़ा दिया। बाद में बादशाह को रंगून निर्वासित कर दिया गया। इसके पहले ही विद्रोहियों की हालत कानपूर, आगरा और लखनऊ जैसे केन्द्रों में बहुत कमजोर हो चुकी थी। दिल्ली हाथ से निकलने के बाद विद्रोह का सांकेतिक पतन हो गया था। उसके बाद झांसी की रानी **17** जून, **1858** को जनरल ह्यू रोज़ से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गयी। बेगम हजरत महल नेपाल भाग गयीं जहाँ उनकी गुमनाम मौत हुयी। **1859** तक बख्त खान, कुंवर सिंह, मौलवी अहमदुल्लाह आदि भी वीरगति को प्राप्त हो चुके थे। नाना साहेब लगातार पराजय झेलते हुए नेपाल चले गए। तात्यान टोपे मध्य भारत के जंगलों में अप्रैल **1859** तक छापामार युद्ध लड़ते रहने के बाद एक ज़मींदार मित्र के विश्वासघात के कारण पकडे गए। **15** अप्रैल को उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया। हालाँकि अंगरेजी सेना को सिर्फ विद्रोही सेनाओं से ही नहीं बल्कि गावों-गावों तक लड़ना पड़ा। इस जनप्रतिरोध के दमन के लिए पूरे के पूरे गाँव जला दिए गए और, गाँवों- शहरों में निर्मम कत्लेआम मचाया गया।

8.7 असफलता के कारण

8.7.1 विचारधारा एवं कार्यक्रम का अभाव

विद्रोहियों के पास किसी उपनिवेशवाद- विरोधी विचारधारा का अभाव था। और, न ही वे किसी वैकल्पिक कार्यक्रम के आधार पर संचालित थे। हालाँकि विद्रोह के दौरान उन्होंने न केवल संगठन बनाने का प्रयास किया था, बल्कि

नियंत्रण समिति जैसे नए प्रयोग भी किये। लेकिन उनका नेतृत्व जिन सामंती तत्वों के हाथ था, वे अलग उद्देश्यों के लिए संघर्षरत थे। उनमें से अधिकाँश अपनी पुरानी सत्ता और रुतबे के छिन जाने से क्षुब्ध थे। उनसे किसी भविष्योन्मुख नवीन व्यवस्था की उम्मीद नहीं की जा सकती थी।

8.7.2 तकनीक एवं संसाधनों की कमी

विद्रोही धन और संसाधन की भारी समस्या से जूझते रहे। अधिकांशतः तो उनके भोजन का प्रबंध भी शहर और गाँव के लोगों द्वारा किया जाता था। हथियार और गोला- बारूद की भारी कमी थी और उनके नियंत्रण और संयोजन के लिए कोई प्रभावी तंत्र मौजूद नहीं था।

8.7.3 भारतीयों की आपसी फूट और वैमनस्य

दक्षिण, पूर्व और पश्चिम भारत इस विद्रोह से लगभग अछूता रहा। रूद्रांशु मुख़र्जी बताते हैं कि अवध के सारे तालुकेदार भी इस विद्रोह में शामिल नहीं हुए थे। कुछ वफादार बने रहे, कुछ ने बीच की राह पकड़े रखी। रजवाड़ों ने विद्रोह का दमन करने में अंग्रेजों की पूरी मदद की। कैनिंग ने उनकी भूमिका की तुलना "तूफ़ान में बाँध" से की थी। उच्च और मध्य वर्ग इस विद्रोह के कटु आलोचक थे। व्यापारियों ने जल्द ही अपने हाथ खींच लिए क्योंकि विद्रोह का खर्चा उन्हीं से वसूला जा रहा था। वे सामान्य लूट- पाट का शिकार भी बन रहे थे। सेना के अन्दर भी पंजाबी और गोरखा बटालियनों ने विद्रोह के दमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दिल्ली को फिर से जीतने वाली अंग्रेज सेना में महज **1700** ब्रिटिश थे, जबकि भारतीयों की संख्या **3200** थी।

8.7.4 नेताओं की आपसी जलन एवं प्रतिस्पर्धा

विद्रोही नेता आपस में एक दूसरे से जलन एवं प्रतिस्पर्धा रखते थे, यह एक बड़ी समस्या था। बहादुरशाह स्वयं विद्रोहियों से हमेशा सशंकित रहे। मुग़ल राजकुमारों का हाल तो और भी ख़राब था। बेगम हज़रत महल और मौलवी अहमदुल्लाह में नहीं बनती थी। नाना साहेब भी मुग़ल बादशाह की ओर से खुद के लिए खतरा महसूस करते रहे। इस तरह, अपनी पद और प्रतिष्ठा के पुराने संघर्ष विद्रोही नेताओं के दिलो- दिमाग पर हावी थे।

8.7.5 ब्रिटिश सेना की अद्वितीय शक्ति

सबसे बढ़कर, विद्रोहियों का सामना एक ऐसी सत्ता से था, जिसके पास उपनिवेशवाद की एक बेहतर समझ और रणनीति थी। पूंजीवाद के विकास से अर्जित राज्य-संसाधन और युद्ध की नवीनतम तकनीक से युक्त ब्रिटिश सेना पूरी दुनिया में अपना सिक्का जमाये हुए थी। उसके पास एक विशाल, प्रशिक्षित और अनुशासित और केंद्रीय कमान युक्त सेना थी। उनकी नौसैनिक ताकत तो दुनिया भर में बेजोड़ थी। उनके पास साजो- सामान और गोला- बारूद की कोई कमी नहीं थी।

8.7.6 शिक्षित भारतीयों द्वारा विरोध

अंग्रेजी शिक्षा और विचारों से प्रभावित मध्यवर्गीय शिक्षित भारतीय यकीन करते थे कि ब्रिटिश राज भारतीयों को आधुनिकता की ओर ले जाएगा। इसलिए उन्होंने विद्रोह से दूरी कर ली और

उसकी जोरदार मुखालफत की। जबकि यह तबका विद्रोह को एक नयी दिशा प्रदान करने में सक्षम था।

8.8 विद्रोह की प्रकृति

सवाल उठता है कि यह विद्रोह किसी सुनियोजित योजना का परिणाम था या स्वतःस्फूर्त ढंग से लोग अपनीअपनी वजहों से बगावत में कूद पड़े थे। यहाँ हमें इतिहास में स्रोतों की अनिवार्यता को समझने में मदद मिल सकती है। बागी सैनिकों और नागरिकों ने गैर- कानूनी होने और अंग्रेजों द्वारा पकडे जाने के डर से लिखित दस्तावेज नहीं छोड़े या अधिकांशतः उन्हें नष्ट करते गए। गाँव- गाँव तक कमल और चपाती के माध्यम से बगावत का सन्देश देने की कहानियां हमें सुनायी देती हैं। लेकिन उन्हें अब तक ऐतिहासिक रूप से पुष्ट नहीं किया जा सका है। यह भी कहा जाता रहा है कि नाना साहेब और तात्याँ टोपे भी गुप्त रूप से संगठन का प्रयास करते रहे थे। लेकिन इस मामले में भी स्रोत चुप हैं। भारतीय पक्ष को समझने के लिए हमारे पास स्रोतों का अभाव है या वे अभी तक उद्घाटित नहीं हुए है। इसलिए हमारी समझ का मूल आधार औपनिवेशिक दस्तावेज हैं। जैसे राष्ट्रीय अभिलेखागार में संरक्षित 'म्युटिनी पेपर्स' आदि जो कि इस पहलू पर ज्यादा रौशनी नहीं डालते।

दूसरा प्रश्न विद्रोह के सैनिक- विद्रोह, जन-विद्रोह या राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम होने से सम्बंधित है? उपनिवेशवादी इतिहासकारों तथा अधिकारियों ने इस विद्रोह को महज एक सिपाही विद्रोह सिद्ध करने का प्रयास किया है। जेम्स आउट्रम, ब्रिटिश सेना के महत्वपूर्ण सेनापति थे जिन्होंने विद्रोह का दमन करने में बड़ी भूमिका निभाई थी, की समझ में यह विद्रोह "एक मुस्लिम षड़यंत्र था जिसने हिन्दुओं की नाराजगी का फायदा उठाया"। ठीक इसी तरह एल० ई० आर० रीज़ ने इसे "कट्टरपंथियों का ईसाइयों के विरुद्ध" और टी० आर० होम्ज़ ने ""सभ्यता और बर्बरता के विरुद्ध संघर्ष" कहा। समकालीन अधिकारियों की इस समझ को सबसे पहली चुनौती बेंजामिन डिजरैली की ओर से मिली। उन्होंने इसे कई कारकों की उपज बताया और पूछा- "यह एक सैन्य विद्रोह है या फिर राष्ट्रीय विद्रोह?" कार्ल मार्क्स ने भी १८५७ पर टिप्पणी करते हुए सिपाही विद्रोह से ज्यादा इसके राष्ट्रीय चरित्र पर बल दिया था। कर्नल जी बी मालेसन , जो कि भारत में नियुक्त एक ब्रिटिश अधिकारी थे, के अनुसार विद्रोह की शुरुआत भले ही सिपाही विद्रोह से हुयी थी लेकिन जल्दही वह एक राष्ट्रीय विप्लव में तब्दील हो गया। थॉमस मेटकाफ का निष्कर्ष है कि १८५७ के विद्रोह का स्वरुप राष्ट्रीय से कम और सिपाही से ज्यादा था। विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी किताब "द हिस्ट्री ऑफ़ द वार ऑफ़ इंडियन इंडिपेंडेंस" में १८५७ के विद्रोह को 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष' बताया। विद्रोह के आधिकारिक विद्वान् एस एन सेन के अनुसार "जो कुछ धर्म के लिए लड़ाई के रूप में शुरू हुआ, वहस्वतात्रता संग्राम के रूप में समाप्त हुआ".

जनविद्रोह की अवधारणा को सबसे ज्यादा पुख्ता बनाया एस बी चौधरी ने। उन्होंने विद्रोह में किसानों की व्यापक भागीदारी पर जोर दिया और कहा कि यह विद्रोह सही मायनों में जनता का उभार था। तालमिज़ खलदून ने इसके चरित्र को और क्रांतिकारी बताते हुए कहा कि लोग इस संघर्ष में न सिर्फ अंग्रेजों से लड़े बल्कि उन्होंने सामंती चरित्र से भी लड़ने का प्रयास किया। दूसरी तरफ, ताराचंद और पर्सीवल स्पीयर विद्रोह के सामंती पहलू को ज्यादा अहमियत देते हैं। वे इसे एक पुरानी, जीर्ण- शीर्ण व्यवस्था द्वारा खुद की खोई हुयी प्रतिष्ठा को फिर से हासिल करने की आखिरी कोशिश की तरह देखते हैं। परन्तु आर सी मजुमदार इस विद्रोह को महज सिपाही विद्रोह से ज्यादा कुछ नहीं मानते।

हालिया अध्ययनों में सबाल्टर्न इतिहासकार जूडिथ ब्राउन एवं एरिक स्ट्रोक्स इस विद्रोह को अभिजात्य चरित्र का मानते हैं। क्योंकि विद्रोह का नेतृत्व उच्च वर्गों के पास था और वही निर्णय लेने के हक़दार थे। रणजीत गुहा का मानना है कि बागियों ने इसलिए हथियार उठाये ताकि वह सब कुछ बचाया जा सके जो उनके पुश्तैनी अधिकार- क्षेत्र में आता था। हालाँकि स्ट्रोक्स ने विद्रोह को किसानों की ऋणग्रस्तता से जोड़कर उसके सामाजिक आधार को व्याख्यायित करने का प्रयास किया। वहीं बिपन चन्द्र के अनुसार विद्रोह का रुझान निश्चित तौर पर पीछे की ओर लौटने वाला था, लेकिन उनका स्वरुप लोकप्रिय था।

8.9 परिणाम

1857 का विद्रोह इतना प्रबल था, जिसने भारत में कम्पनी स्वरुप में आमूलचूल परिवर्तन किये।

सत्ता का हस्तांतरण

कम्पनी के भारतीय साम्राज्य की सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश क्राउन में समाहित हो गयी। **1858** के एक्ट अनुसार भारत का शासन एक सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट के हाथों में आ गया जो कि ब्रिटिशसंसद के प्रति उत्तरदायी था।

सेना में परिवर्तन

विद्रोह से सबक लेते हुए सेना में भारतीय और ब्रिटिश सैनिकों का संतुलन बदल दिया गया। बंगाल आर्मी, जिसने बगावत शुरू की थी, में यह अनुपात **1:2** यानि एक यूरोपीय पर दो हिन्दुस्तानी कर दिया गया। जबकिअन्य में यह **2:5** का हो गया। तोपखाना एवं अन्य ख़ास जगहों पर सिर्फ यूरोपीय नियंत्रण की नीति अपनाई गयी। सेना की साम्राज्य में पकड़ बढ़ाने के लिए कैंटोनमेंट एरिया (कैन्ट) बनाये जाने लगे। जिनकीस्थापना महत्वपूर्ण रणनीतिक स्थानों पर की जाती थी। भारतीय सेना के

संगठन में "बांटो और राज करो" की नीति अपनाई गयी और उन्हें जाति, समुदाय और धर्म के आधार पर बाँट दिया गया।

बांटो और राज करो की नीति

इसके तहत भारतीय जनता की एकता को तोड़ने के लिए सांप्रदायिक नीति का सहारा लिया गया। विद्रोह की जबर्दस्त हिन्दू- मुस्लिम को तोड़ने के लिए आपस में बंटवारे पैदा करने और आपसी फूट का फायदा उठाना इस नीति का मुख्य उद्देश्य था। जिसकी वजह से ही साम्प्रदायिकता का उदय और विकास हुआ। जिसकी चरम परिणति **1947** में भारत के विभाजन के साथ हुयी।

समर्थक वर्ग बनाने की नीति

भारतीय रजवाड़ों के प्रति विजय और विलय की पुरानी नीति का त्याग कर दिया गया। अब उन्हें वारिस न होने कीस्थिति में गोद लिए बच्चे को राज्य का वारिस बनाने का अधिकार मिल गया। ब्रिटिश भारत में रजवाड़ोंका विलय न करना भी राज्य- नीति का हिस्सा बन गया। ज़मींदार, भूस्वामी और अन्य ऐसे वर्ग जो ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रह सकते थे, उन्हें भी असंतुष्ट न करना इस नीति का अंग था। इन प्रतिक्रियावादी तत्वोंको संरक्षण देने की नीति ने ही बाद में शिक्षित भारतीयों को यह अहसास दिलाया कि ब्रिटिश शासन का भारत में एकमात्र उद्देश्य किसी तरह अपने राज्य को बनाये रखना है।

8.10 सारांश

इस तरह, **1857** का विद्रोह औपनिवेशिक नीतियों और दृष्टिकोण से उपजे भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों की स्वाभाविकअभिव्यक्ति था। अपनी सारी सीमाओं के बावजूद इस विद्रोह ने भारत में अंग्रेजी राज की चूलेंहिला दी थीं। जिससे एक ओर न केवल ब्रिटिश नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन हुआ बल्कि भविष्य के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के वैचारिक आधारों की भी आधारशिला पड़ी।

8.11 पारिभाषिक शब्दावली

उपनिवेशवाद- किसी ताकतवर देश द्वारा किसी अन्य कमजोर देश पर राजनीतिक- आर्थिक अधिकार,जो हर मामले में पहले के फायदे और दूसरे के विनाश के लिए काम करता हो, उपनिवेशवाद कहलाता है।

उपयोगितावाद-ब्रिटिश दार्शनिक जेरेमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रवर्तित दर्शन जिसमें किसी भी चीज़ या काम का ठीक होना उसकी उपयोगिता के आधार पर तय किया जाता था। इसका उद्देश्य ज्यादा सेज्यादा लोगों के लिए ज्यादा से ज्यादा खुशी प्राप्त करना था।

दूरस्थ ज़मींदारी- गाँवों में रहने वाले ज़मींदारों की ज़मीनें नीलाम करके उन्हें शहरों में रहने वाले या दूरदराज के धनी वर्गों को ठेके पर देने से उपजा ज़मींदार वर्ग।

मुक्त व्यापार- किन्हीं दो देशों के बीच बिना किसी आयात शुल्क तथा अन्य करों के व्यापार। ब्रिटिश राज ने भारत के साथ इकतरफ़ा मुक्त व्यापार की नीति अपनाई थी। जिसमें ब्रिटेन का माल भारत में बिना किसी शुल्कके जबकि भारत का माल विदेशों में भारी आयात शुल्क के साथ बेचा जाता था।

वाणिज्यीकरण- किसी भी वस्तु को बाज़ार की ज़रुरत के साथ जोड़ देने की नीति।

विऔद्योगीकरण- पहले से स्थापित उद्योगों को नष्ट करना। भारत में ब्रिटेन की आर्थिक नीतियों के सन्दर्भ में प्रयुक्त शब्द।

साम्प्रदायिकता- एक ऐसी विचारधारा, जो लोगों के हितों को धर्म के आधार पर तय करती हो और मानती हो कि एक धर्म के लोगों के हित दूसरे धर्म के लोगों के हितों की कीमत पर पर ही पूरे किये जा सकते हैं।

8.12 सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची

1. चन्द्र, बिपन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,

2. चन्द्र, बिपन, आधुनिक भारत, एनसीईआरटी

3. बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक, ओरिएंट ब्लैकस्वान

4. Chattopadhyay, Harprasad, The Sepoy Mutiny- A Social Study and Analysis

8.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Chaudhury, S.B., Civil Rebellion in the Indian Mutinies
2. Joshi, P.C, editor, Rebellian 1857: A Symposium
3. Mukherjee, Rudrangshu, Awadh in Revolt
4. Sen, S. N., Eighteen Fifty Seven

5. Stokes, Eric, The Peasants and the Raj, Cambridge University Press

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1857 विद्रोह के कारणों की समीक्षा कीजिये।

2.1857 का विद्रोह मात्र सैनिक विद्रोह नहीं था। टिप्पणी कीजिये तथा इसकी असफलता के कारणों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

इकाई नौ

लोकप्रिय प्रतिरोध: संथाल विद्रोह(1857) , नील विद्रोह(1860) , डेक्कन दंगे(1875)

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 कारण
9.4 1857 के पहले के विद्रोह
9.4.1 सन्यासी एवं फ़कीर विद्रोह
9.4.2 पागलपंथी, फैराज़ी और तहरीक-ए-मुहम्मदिया
9.4.3 वहाबी आन्दोलन
9.4.4 रामोसी एवं गडकरी विद्रोह
9.4.5 उड़ीसा का खोंड विद्रोह
9.4.6 कोल विद्रोह
9.4.7 संथाल विद्रोह
9.5 1857 के बाद के विद्रोह
9.5.1 कूका आन्दोलन
9.5.2 फड़के आन्दोलन
9.5.3 मोपला विद्रोह
9.5.4 पाबना
9.5.5 नील विद्रोह
9.5.6 दक्कन के दंगे
9.5.7 लगान नाअदायगी आन्दोलन
9.5.8 मुण्डा विद्रोह
9.5.9 ताना भगत आन्दोलन
9.5.10 चेंचू एवं रम्पा
9.6 प्रकृति
9.7 सारांश
9.8 सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची
9.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को जनता के विभिन्न वर्गों की ओर से हमेशा तीखे प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। बंगाल पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के शुरुआती दिनों से ही किसान और आदिवासी औपनिवेशिक नीतियों के शोषण का जवाब अपने- अपने ढंग से देने लगे थे। इन सभी विद्रोहों की मूल जडें कहीं न कहीं ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों में छुपी हुयी थीं। जिन्होंने स्थानीय स्तरों पर भूस्वामी वर्ग को अपना स्वाभाविक मित्र मानकर उनके माध्यम से किसानों पर शोषण का शिकंजा कास दिया था। भूराजस्व की ज्यादा से ज्यादा उगाही, अनुचित अव्वाब यानि उप-करों का बोझ, जमीन से किसान की बेदखली के प्रावधान, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बाहरी तत्वों- महाजन और साहूकार- का प्रवेश और क़ानून- पुलिस के माध्यम से इस समूची व्यवस्था को वैधानिक बनाने के प्रयास इस असंतोष की मूल वजह थे। आदिवासी इलाकों में भी समस्याएं लगभग इसी तरह थीं। बस फर्क इतना था कि वहां जंगल पर आदिवासियों के स्वाभाविक अधिकारों को चुनौती देना असंतोष का एक अन्य बड़ा कारण था।

9.2 उद्देश्य

पिछली एक इकाई में आपने भारत में 1857 के महान विद्रोह के बारे में जानकारी हासिल की। इसे भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का पहला व्यापक प्रतिरोध आन्दोलन माना जाता है। लेकिन इस इकाई का उद्देश्य आपको अन्य जन आन्दोलनों की परंपरा से परिचित कराना है, जिसने स्थानीय स्तरों पर प्रतिरोध की मिसालें कायम की थी। इनमें किसान एवं आदिवासी विद्रोह प्रमुख हैं। जिन आन्दोलनों का नेतृत्व धार्मिक समूहों के हाथ में था, उनका सामाजिक आधार भी कृषक असंतोष पर आधारित था। इस इकाई के माध्यम से आप जानेंगे-

- भारत के विभिन्न हिस्सों में हुए कृषक और आदिवासी विद्रोहों के कारण
- महत्वपूर्ण किसान और आदिवासी विद्रोहों की जानकारी
- इन विद्रोहों की प्रकृति और विशेषताएं
- ब्रिटिश राज- स्थानीय भूस्वामी वर्ग और किसानों- आदिवासियों के हितों के मध्य अन्तर्विरोध

9.3 कारण

उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियाँ के प्रति समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त असंतोष औपनिवेशिक भारत में हुए विद्रोहों का सबसे बड़ा कारण थे। अंग्रेजों ने भारत के अधिकतम आर्थिक शोषण के लिए एक नयी भूराजस्व व्यवस्था और प्रशासनिक तंत्र का निर्माण किया था। इस नयी व्यवस्था के तहत नए तरह के भूराजस्व बंदोबस्त किये गए थे। जिन्हें हम रैयतवारी या अस्थायी बंदोबस्त,

इस्तमरारी या स्थायी बंदोबस्त और महालवारी बंदोबस्त के नाम से जानते हैं। इन तीनों व्यवस्थाओं में एक सामान्य बात यह थी कि वे किसानों से अधिकाधिक भूराजस्व वसूलने का प्रयास करती थी। लगान से माफ़ी ब्रिटिश राज में एक नामुमकिन बात थी। किसान को मौसम और प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा और बाढ़ की मार से जूझते हुए भी भूराजस्व से कोई राहत प्राप्त नहीं होती थी। लगान न चुकाने की दशा में उनकी जमीन नीलाम कर दी जाती थी। इस नीलामी में बोली लगाने वाले संपन्न लोग दूरदराज के शहरों से आये होते थे। यानि जमीन पर किसानों के मालिकाना हक़ को गुलाम भारत में एक वैधानिक काम बना दिया गया था। जिसे पुलिस, प्रशासन और कानून का संरक्षण प्राप्त था।

अपनी जमीन की नीलामी से बचने के लिए किसान कर्ज लेने पर मजबूर कर दिए जाते थे। कर्ज देने वाले तत्व भी बाहर से आये मारवाड़ी- गुजराती आदि संपन्न लोग होते थे। ये लोग खाता- बहियों में तमाम तरह की धांधलियाँ करके किसानों का और अधिक आर्थिक दोहन करते थे। मूलधन पर ब्याज पहले से ही बहुत ऊँचा होता था, किसान ब्याज ही चुकाने की स्थिति में नहीं रहता था। उस पर से भूराजस्व की नियमित वसूली और अधिक कर्ज लेने पर मजबूर करती थी। इस ऋण- जाल में उलझकर किसान पूरे साल लगभग भुखमरी और अभाव के कगार पर खड़े रहते थे। ऐसी स्थिति में अंततः महाजन और साहूकार किसान की नीलामी करके अपने कर्जे की वसूली करते थे। इस तरह, दूरस्थ जमींदार, महाजन- साहूकार और उनके बिचौलिए भारत की ग्रामीण जनता के आक्रोश की एक बड़ी वजह बन गए थे।

अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार को ध्यान में रखते हुए खेती के वाणिज्यीकरण कर दिया गया था। नील, अफीम और कपास आदि नकदी फसलों की खेती किसानों से जबरदस्ती करवाई जाती थी। भारत को कच्चे माल का निर्यातक और बने- बनाए माल का आयातक बना दिया गया था। बेहद कम दाम मिलने और घाटे का सौदा होने की वजह से किसान इन फसलों की बजाय अनाज उगाना पसंद करते थे जो कि उनका पेट भरने का साधन हुआ करता था। भारत में रोजगार और आय के वैकल्पिक साधन जैसे हथकरघा जैसे उद्योग भी औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की भेंट चढ़ाए जा चुके थे। इनकी जगह पर कोई उद्योग पैदा नहीं किये गए बल्कि भारत को ब्रिटिश उत्पादों का बाज़ार बनाने की नीति अपनाई गयी।

आदिवासी समाज की स्थितियाँ भी इसी प्रकार जटिल थी। ब्रिटिश शासन ने लगभग पूरे भारतीय समाज को समरूप आर्थिक नीतियों से शोषित कर रखा था। आदिवासी, जो कि अपने विशिष्ट आदिवासी अधिकारों को लेकर अत्यधिक संवेदनशील थे, जमीन के साथ जंगल पर अपने अधिकारों से भी वंचित कर दिए गए। औपनिवेशिक तत्वों के उनकी अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप ने कमोबेश वही जटिलताएं आर तत्व पैदा किये थे, जो कृषक अर्थव्यवस्था में कमोबेश हर जगह पैदा हुए थे।

इस तरह, विदेशी शासन ने भारतीय समाज में एकसमान सामाजिक तनाव पैदा कर दिया था। जो न केवल विदेशी शासन के प्रति बल्कि उसकी सहयोगी हर चीज से उनके मन में नफरत और आक्रोश पैदा करता था। जो अलग- अलग समय पर, अलग- अलग क्षेत्रों में और अलग- अलग रूपों में नागरिक, आदिवासी और किसान विद्रोहों के रूप में व्यक्त होता रहा।

इस इकाई में नागरिक, किसान और आदिवासी विद्रोहों को अलग- अलग हिस्सों में न बांटकर उनका एक साथ विश्लेषण किया गया है। जिन्हें मूल रूप से दो कालखंडों- 1857 से पहले और 1857 के बाद- में विभाजित करने का आधार उनके स्वरुप में आये कुछ परिवर्तनों से है। पहले कालखंड के विद्रोह औपनिवेशिक शोषण के प्रति ख़ालिस हिंसक प्रतिक्रियाएं हैं। लेकिन 1857 के विद्रोह के दमन के पश्चात हमें प्रतिरोध के कुछ अन्य नायाब तरीके देखने को मिलते हैं। दूसरे, ये विद्रोह पहले के विद्रोहों के विपरीत सक्रिय प्रतिरोध के साथ- साथ कानून का सहारा भी लेते हुए दिखाई देते हैं। तीसरी महत्वपूर्ण बात, उनमें से कुछ आन्दोलनों का मुख्यधारा के राष्ट्रीय संघर्ष यानि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ संपर्क भी उन्हें विशिष्ट बनाता है।

9.4 1857 के पहले के विद्रोह

9.4.1 सन्यासी एवं फ़कीर विद्रोह

सन्यासी एवं फ़कीर विद्रोह हिन्दू एवं मुस्लिम धार्मिक समूहों द्वारा उत्तरी बंगाल से लेकर बिहार के सीमावर्ती इलाकों तक 1763 से 1800 के मध्य किये गए थे। सन्यासी विद्रोही वास्तव में दसनामी सन्यासी थे, जो स्वयं को शंकराचार्य का अनुयायी मानते थे। जिन्हें हिन्दू नागा और गिरि सन्यासी कहा जाता था। ये सशस्त्र धार्मिक समूह, जो अत्यंत गुस्सैल और आक्रामक माने जाते थे, स्थानीय स्तरों पर सामाजिक- आर्थिक दृष्टि से काफी मजबूत थे। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था ने उनके हितों को चोट पहुंचाई थी। बंकिमचंद्र चटर्जी का प्रसिद्द उपन्यास "आनंदमठ" इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है। वारेन हेस्टिंग्स ने एक लम्बे सैन्य अभिया के बाद इस विद्रोह को कुचलने में सहायता प्राप्त की थी।

फ़कीर विद्रोह, मुसलमाओं के एक धार्मिक समूह, जो फ़कीरी में विश्वास रखते थे और घुमंतू स्वभाव के होते थे, के नेता मजनूँशाह के नेतृत्व में हुआ था। एक सूफी सिलसिले से सम्बंधित ये फ़कीर मुगलों के समय से ही करमुक्त जमीन के हकदार होते थे। औपनिवेशिक राज ने इनके सामाजिक- आर्थिक विशेषाधिकारों को चोट पहुंचाई थी। परिणामस्वरूप, इस सशस्त्र धार्मिक समूह ने अंगरेजी राज को अपने इलाकों से उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। मजनूँशाह की मौत के बाद चिराग अली ने विद्रोह का नेतृत्व संभाला। विद्रोह को समाज के अन्य वर्गों का समर्थन भी प्राप्त था।

9.4.2 पागलपंथी, फैराज़ी और तहरीक-ए-मुहम्मदिया

फ़कीर एवं सन्यासी विद्रोहों के दमन के बाद पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह जिले के शेरपुर परगना में एक अन्य धार्मिक आन्दोलन फूट पड़ा। जिसका नेतृत्व पहले करीमशाह और फिर उनके शिष्य टीपू शाह द्वारा किया गया। सत्य, समानता और भाईचारे के सिद्धांतों के आधार पर संगठित इस आन्दोलन ने गारोस, हजांग और हादी आदिवासियों के बीच अपना आधार बनाया। इन इलाकों में भी औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध किसान असंतोष बहुत तीव्र था। 1824 में टीपू ने एक नयी सरकार और करों के बोझ से मुक्ति के नाम पर एक सशक्त विद्रोह छेड़ दिया। जमींदारों के गढ़ों पर हमले किये गए। एक समय यह विद्रोह इतना शक्तिशाली था कि टीपू ने अपने प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण करना शुरू कर दिया था। 1833 में यानी करीब 9 साल बाद ही अंग्रेज इस विद्रोह को कुचलने में सफल हो सके।

हाजी शरियतुल्लाह के नेतृत्व में पूर्वी बंगाल में ही एक अन्य धार्मिक आन्दोलन चला, जिसे फैराज़ी आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इसके नेता हाजी शरीयतुल्लाह थे। यह इस्लाम में गैर- इस्लामी विश्वासों और परम्पराओं से शुद्धि का आन्दोलन था। इस आन्दोलन के झंडे तले गरीब मुस्लिम किसानों ने ज़मींदारों, साहूकारों, निलहों और ब्रिटिश अधिकारियों पर हमला किया। 1839 में हाजी शरीयतुल्लाह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र दूधू मियां ने नेतृत्व सम्भाला और आन्दोलन को संगठित किया। उन्होंने स्थानीय प्रशासन के संगठन का निर्माण करने का प्रयास किया। 1862 में उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र नया मियां ने आन्दोलन की कमान संभाली।

तहरीक-ए-मुहम्मदिया की विचारधारा वहाबी आन्दोलन से काफी प्रभावित थी। इसके नेता टीटू मीर थे। चौबीस परगना जिले में इन्होनें इस्लाम का प्रचार- प्रसार करते हुए गरीब मुस्लिम किसानों और बुनकरों को संगठित हुआ। इसके सदस्य एक खास तरह की वारी पहनते और दाढ़ी रखते थे। ज़मींदारों ने किसानों का हौसला तोड़ने के लिए दाढ़ी रखने पर भी कर लगा दिया। इस कदम की मुखालफत करते हुए टीटू मीर और उनके अनुयायियों ने समानान्तर सरकार की स्थापना कर ली और कर तक वसूलने लगे। अंततः सरकार ने सेना भेजकर नवम्बर, 1831 में विद्रोह को कुचल दिया।

9.4.3 वहाबी आन्दोलन

यह मूल रूप से मुस्लिम सुधारवादी आन्दोलन था जो कि उत्तर पश्चिम, मध्य और पूर्वी भारत तक फैला हुआ था। इसका उद्देश्य को इस्लाम को अन्य धार्मिक परम्पराओं, प्रतीकों और संस्कारों से मुक्त करना था। इसके संस्थापक अब्दुल वहाब थे। लेकिन इस आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने का श्रेया सैय्यद अहमद रायबरेलवी को जाता है। 1820 से लगभग 1870 तक चले इस आन्दोलन ने पंजाब में सिखों (तब तक पंजाब में कम्पनी शासन की शुरुआत नहीं हुयी थी) और बंगाल में अंग्रेजों को उखाड़कर मुस्लिम साम्राज्य की पुनर्स्थापना का स्वप्न देखा था। इन धार्मिक अनुयायियों ने स्वयं को एक सैन्य शक्ति की तर्ज पर संगठित किया। सैय्यद अहमद ने तो एक समय पेशावर पर

कब्ज़ा कर लिया था और अपने नाम के सिक्के भी चलवाए थे। लेकिन 1831 में उनकी मृत्यु के साथ ही पंजाब में यह आन्दोलन कमजोर पड़ गया। बाद में विलायत अली, इनायत अली और मौलवी कासिम के नेतृत्व में पटना इस आन्दोलन का मुख्या कार्यक्षेत्र बना।

9.4.4 रामोसी एवं गडकरी विद्रोह

महाराष्ट्र में संगठित हुए ये दोनों विद्रोह दरअसल मराठा सेना के अपदस्थ सैनिक और पदाधिकारियों के असंतोष का परिणाम था। रामोसी विद्रोह 1822 में मराठा सेना के बेरोजगार हुए सैनिकों द्वारा भूमिकर के विरोध में किया गया था। मूलतः कृषक परिवारों से ताल्लुक रखने वाले ये सैनिक अब खेती- किसानी पर ही आश्रित रह गए थे। लेकिन वहां अंग्रेजी राज की शोषणकारी भूराजस्व नीतियों एवं करों के दबाव से जूझते ने महाराष्ट्र के सतारा इलाके में जमकर लूटपाट मचाई। इस विद्रोह के नेता चित्तर सिंह थे। बाद में 1825 में पड़े भीषण अकाल ने स्थितियों को और कठिन बना दिया . और, एक बार फिर रामोसी विद्रोह उमाजी के नेतृत्व में भड़क उठा। रामोसी विद्रोह की पृष्ठभूमि में भील आदिवासी किसानों का असंतोष भी काम कर रहा था। भील मराठा प्रदेश के खानदेश क्षेत्र की पहाड़ियों पर बसे आदिवासी 1818 में यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन आ गया था और यहाँ भी अन्य जगहों की तरह बाहरी तत्व आकर आदिवासियों का शोषण कर रहे थे। इस विद्रोह के तकरीबन बीस साल बाद कोल्हापुर में लगभग इन्हीं परिस्थितियों में गडकरी विद्रोह हुआ। जिसका नेतृत्व मराठा सरदार फोंड सावंत कर रहे थे। गडकरी भी मराठा राज्य में किलों में कार्यरत आनुवांशिक कर्मचारी थे। यह विद्रोह बहुत शक्तिशाली था। इन विद्रोहों में स्थानीय कृषक आबादी ने जमकर भाग लिया था। इसलिए इनका मूल चरित्र कृषक विद्रोहों का था।

9.4.5 उड़ीसा का खोंड विद्रोह

उड़ीसा के विद्रोहों में चक्र बिसोई के नेतृत्व में लड़ा गया खोंड विद्रोह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने 1837 से ही पुलिस को छकाते हुए घुमसर और बाउद में प्रशासन की नींद हराम कर रखी थी। खोंड विद्रोह का प्रमुख कारण आदिवासियों पर नए करों का आरोपण, जमींदारों और साहूकारों का आदिवासी अर्थव्यवस्था में प्रवेश और उनके मानव बलि के अधिकार पर प्रतिबन्ध था। बाद में राधाकृष्ण दण्डसेन के नेतृत्व में पारलियाखेमेड़ी में सवारा विद्रोह हुआ। इसका सम्बन्ध चक्र बिसोई के विद्रोह से जोड़ा जाता रहा लेकिन इस सम्बन्ध में पक्की तौर पर कुछ भी कह सकना ऐतिहासिक तौर पर संभव नहीं है।

9.4.6 कोल विद्रोह

1832 से 37 तक चले इस आदिवासी विद्रोह का मूल कारण था- आदिवासियों की भूमि पर उनका अधिकार छीनकर मुस्लिम तथा सिख किसानों को स्थानातरित किया जाना। इससे क्षुब्ध

आदिवासियों ने रांची, सिंहभूमि, हजारीबाग, मानभूम और पालामाऊ के इलाके में जबरदस्त विद्रोह किया।

9.4.7 संथाल विद्रोह

आदिवासी विद्रोहों में संथालों का हूल विद्रोह सबसे जबरदस्त था। संथाल आबादी मुख्यतः भागलपुर से राजमहल के बीच, जिसे दामन-ए-कोह के नाम से जाना जाता था, बसी हुयी थी। लेकिन उनका विस्तार कटक, धालभूम, मानभूम, छोटा नागपुर, पलामू, हज़ारीबाग, मिदनापुर, बांकुरा और बीरभूम तक फैला हुआ था। संथाल गैर- आदिवासी लोगों को दिकु नाम से पुकारते थे। उनके भीतर औपनिवेशिक राज द्वारा किये जा रहे हस्तक्षेप के प्रति जबरदस्त असंतोष व्याप्त था। भूमिकर अधिकारी उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे। पुलिस उनके दमन का साधन बन गयी थी। जमींदार और साहूकार वसूलियाबी के लिए तरह - तरह के हथकंडे अपनाती थी। संथालों की जमीनों पर भूराजस्व नीतियों के चलते गैर- संथाल जमींदारों और साहूकारों का कब्ज़ा होता जा रहा था। इन इलाकों में रेलवे के विस्तार के लिए भी प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा था। संथाल इस पूरे वर्ग को अपना दुश्मन समझते थे, जो उनका शोषण करने पर उतारू था।

यह आन्दोलन आकस्मिक रूप से नहीं फूटा था। विद्रोह के क़रीब एक साल पहले ही स्थानीय आदिवासी मुखिया विद्रोह की संभावनाएं तलाश रहे थे। 30 जून,1855 को करीब 400 गाँवों के 10,000 संथाल इकट्ठे हुए और विद्रोह की घोषणा कर दी। तीर और धनुष से लैस संथालों ने बाहरी तत्वों और उनके अंग्रेजी संरक्षकों को बाहर खदेड़ने और 'सतयुग' की स्थापना करने की घोषणा कर दी। लगभग पूरे संथाल इलाके से अंगरेजी राज का सफाया हो गया। ढोल- नगाड़ों के शोर में संथालों ने घूम- घूमकर आज़ादी के गीत गाये। जमींदारों, साहूकारों, थाना सहित हर वो चीज जो दिकु शोषण और अंगरेजी राज का प्रतीक थी, उस पर हमला किया गया। संथालों के इस विद्रोह में गैर आदिवासी निम्नजातीय किसानों और गरीब दिकु लोगों ने भी जमकर हिस्सा लिया।

इस विद्रोह का नेतृत्व सीदो और कान्हू नाम के दो नेताओं ने किया। उन्होंने अपने भीतर दैवीय शक्तियों के होने का दावा किया और कहा कि उन्हें ठाकुरजी (आदिवासी ईश्वर को इसी नाम से संबोधित करते थे) का आदेश प्राप्त है। आन्दोलन की तीव्रता को देखते हुए सरकार ने विद्रोह को कुचलने के लिए एक बड़ा सैनिक अभियान चलाया। उपद्रवग्रस्त इलाकों में मार्शल लॉ लगा दिया गया। संथालों के गाँव के गाँव जल दिए गए। तकरीबन 60,000 आदिवासी विद्रोहियों में से 15,000 से 20,000 इस संघर्ष में शहीद हो गए। अगस्त, 1855 में सीदो को पकड़ कर मार डाला गया। फ़रवरी, 1866 में कान्हू भी पकड़ कर मौत के घात उतार दिए गए। संथाल गजब जीवट वाले लोग थे। जाबांज संथालों ने मरते दम तक हार न मानी। लगभग 6 महीने चले इस संघर्ष में आत्मसमर्पण की एक भी घटना सामने नहीं आयी।

9.5 1857 के बाद के विद्रोह

9.5.1 कूका आन्दोलन

1860 से लेकर 1870 के बीच चला यह आन्दोलन सिख धार्मिक समुदाय द्वारा शुरू किया गया सुधारवादी आन्दोलन था। जिसका प्रारंभिक उद्देश्य सिख धर्म में व्याप्त बुराइयों और अंधविश्वासों से सिख धर्म को मुक्त करना था। इसका नेतृत्व भगत जवाहरमल कर रहे थे जिन्होंने अंग्रेजों के राज को उखाड़कर सिख राज्य की पुनर्स्थापना का स्वप्न देखा था। बाद में बालक सिंह और रामसिंह कूका इस विद्रोह के नेता बने। 1863 में इस आन्दोलन के खतरे को पहचानकर उसका दमन कर दिया गया।

9.5.2 फड़के आन्दोलन

वासुदेव बलवंत फड़के का विद्रोह वास्तव में रामोसी विद्रोह का विस्तार था। रामोसी उमाजी के नेतृत्व में हुए विद्रोह के लगभग पचास साल बाद 1876- 77 में फड़के ने एक बार फिर रामोसी किसानों को संगठित कर बगावत का बिगुल फूँक दिया। इसकी पृष्ठभूमि में पश्चिम भारत के अकालों से हुयी भारी तबाही थी, जिससे किसानों का असंतोष भड़क उठा था। यह आन्दोलन भी राष्ट्रीय आन्दोलन की जागृति से प्रभावित था। माना जाता है कि फड़के जस्टिस रानाडे के भारत के आर्थिक शोषण के सम्बन्ध में दिए गए भाषणों से बहुत प्रभावित थे। वे पूना के चितपावन ब्राह्मण होने के नाते उभरती हुयी राष्ट्रवादी चेतना के गहरे संपर्क में भी थे। उन्होंने हिन्दू राज की पुनर्स्थापना के लिए व्यापक स्तर पर लूटपाट और डकैतियों की योजना बनाई। उन्होंने चालीस लोगों का एक दल संगठित कर लिया। जिसमें कुछ चितपावन ब्राह्मणों के अलावा रामोसी और ढांगर युवक शामिल थे। इन्हें ग्रामीण जनता का अपार संरक्षण और सहयोग प्राप्त था। 1880 में फड़के गिरफ्तार कर लिए गए जहाँ जेल में ही तीन साल बाद उनकी मृत्यु हो गयी। हालाँकि दौलता रामोसी के नेतृत्व में रामोसी विद्रोहियों का दल अगले कुछ सालों तक सक्रिय रहा। फड़के को राष्ट्रवादी चेतना से संचालित क्रान्तिकारी गतिविधियों के लिहाज से प्रथम क्रांतिकारी माना जाता है।

9.5.3 मोपला विद्रोह

केरल के मालाबार में रहने वाले मोपला मुस्लिम किसान थे। इनमें से कुछ अरब से आकर मालाबार में बस गए थे, जबकि शेष यहाँ के स्थानीय मलयाली भाषी लोग थे जिन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। ये लोग केरल के उच्चवर्गीय जेन्मी यानि हिन्दू नम्बूदरी एवं नायर भूस्वामियों के यहाँ बटाईदार या आसामी काश्तकार के तौर पर काम करते थे। जेन्मियों को ब्रिटिश शासन का पूरा संरक्षण प्राप्त था। संपन्न तबका होने के नाते ये लोग क़ानून- कचहरी को भी अपने ढंग से तोड़ते- मरोड़ते रहते थे। पुलिस, अदालत और कानून का सहारा लेकर जेन्मियों ने मोप्पलाओं पर अपना शोषण और नियंत्रण का शिकंजा इतना कस लिया कि उन्नीसवीं सदी में मोप्पलाओं को बार- बार

ब्रिटिश शासन और भूस्वामियों के खिलाफ विद्रोह करने पर मजबूर होना पड़ा। इन गरीब, अनपढ़ और मेहनती किसानों पर इस्लामिक धार्मिक नेताओं, जिन्हें थंगल कहा जाता था, का गहरा प्रभाव था। इस धार्मिक वर्ग और ब्रिटिश अधिकारियों ने इस वर्गीय संघर्ष को सांप्रदायिक रंग देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। क्योंकि इस संघर्ष में भूस्वामी हिन्दू और किसान मुस्लिम थे। यह ब्रिटिश राज की एक चाल थी ताकि वास्तविक मुद्दों से लोगों का ध्यान भटकाया जा सके। 1849 के मोपला विद्रोह में पहली बार बड़ी संख्या में हिन्दू भी विद्रोहियों का निशाना बने। इस आन्दोलन का चरित्र उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते- आते पूरी तरह साम्प्रदायिक ही गया। इस परिस्थिति में आर्य समाज के हस्तक्षेप से स्थितियां पूरी तरह ध्रुवीकृत हो गयीं।

19 वीं सदी के ये विद्रोह प्रथम मोपला विद्रोह के नाम से जाने जाते हैं। वैसे तो मोपलाओं के विद्रोह एकदम आम बात हो गयी थी, लेकिन 1836 से 1854 के बीच हुए मोपला विद्रोह, 1849, 1873, एवं 1880 के विद्रोह और 1883 से 1885 के बीच हुए मोपला विद्रोह सबसे प्रबल थे। इनमें 1884 के विद्रोह ने तो लगभग समूचे मोपला क्षेत्र को ही तहस- नहस कर दिया था।

9.5.4 पाबना

पूर्वी बंगाल के रैयतवारी बंदोबस्त के इलाकों में 1859 के एक अधिनियम के द्वारा रैयतों को अपनी जमीन पर दखल अधिकार दिए गए थे। जो उन्हें बेदखली और करों की असीमित वृद्धि से संरक्षण प्रदान करते थे। लेकिन ज़मींदार और साहूकार गठजोड़ तमाम गलत तरीकों से उनके इन अधिकारों का हनन करता था। किसानों पर अव्वाब (उप- कर) लगाकर उन पर करों का बोझ बढ़ाया जाता था। जमीन की पैमाइश में धांधली करना, उन्हें बेवजह मुकदमेबाजी में फंसाना और किसी भी तरह मौका पाकर उनको जमीन से बेदखल करने के बहाने ढूंढना उनकी फितरत बन गए थे। इन अन्यायपूर्ण तरीकों से आज़िज आकर 1873 में पाबना के यूसुफजाही परगना के किसानों ने एक कृषक लीग की स्थापना की। पाबना के किसान इस लड़ाई को क़ानूनी तरीकों से लड़ना चाहते थे। इसलिए इस लीग का काम चन्द इकठ्ठा करना, गाँव- गाँव घूमकर जनसभाओं को संबोधित करना और कई बार लगान न चुकाने का अभियान चलाना था। यह शांतिपूर्ण तरीकों से कानून की सीमा में रहकर चलाया जाने वाला आन्दोलन था। जो अपनी विचारधारा में अंगरेजी राज को चुनौती नहीं देता था। बल्कि इस आन्दोलन का नारा था- हम महारानी की रैयत होना चाहते हैं। यानि उनका आन्दोलन कर देने के खिलाफ नहीं, भ्रष्टाचार के खिलाफ था। धीरे- धीरे यह आन्दोलन आस- पास के जिलों ढाका, राजशाही, बाकरगंज, फरीदपुर और बोगरा आदि तक लोकप्रिय हो गया।

लगभग एक दशक तक चले इस आन्दोलन ने जनभागीदारी के लिए नायाब तरीके आजमाए। जिनमें शंख बजाकर, ढोल पीटकर और रात में सामूहिक रूप से शोर मचाकर एकता का प्रदर्शन किया जाता था। ज़मींदार- समर्थक समाचार- पत्रों जैसे हिन्दू पेट्रियट और अमृत बाज़ार पत्रिका ने इस आन्दोलन का विरोध किया और इसे मुस्लिम काश्तकारों का हिन्दू ज़मींदारों के खिलाफ साम्प्रदायिक आन्दोलन सिद्ध करने के प्रयास भी किये। पाबना की 70% आबादी मुस्लिम थी।

लेकिन इस आन्दोलन में हिन्दू और मुस्लिम काश्तकार कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ रहे थे। क्योंकि दोनों ही ज़मींदारों और साहूकारों के शोषण से एकसमान रूप से पीड़ित थे। इस आन्दोलन को आर० सी० दत्त जैसे प्रख्यात विद्वान् की सराहना मिली थी और इण्डियन एसोसिएशन जैसे संगठनों ने भी इस आन्दोलन को अपना समर्थन दिया था।

9.5.5 नील विद्रोह

पूर्वी भारत में नील बागानों की स्थापना ईस्ट इण्डिया कम्पनी कम्पनी के शासन की देन थी। यूरोपीय नील बागान मालिक किसानों को अपनी जमीन के एक हिस्से पर नील की खेती करने के लिए बाध्य करते थे। नील एक नकदी फसल थी जिसकी अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में जबरदस्त मांग थी। लेकिन किसानों के साथ नील की खेती की शर्तें और तौर- तरीके इतने स्वेच्छाचारी, निर्मम और कठोर होते जिनसे किसानों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता था। गैर- कानूनी ढंग से अपहरण, बंदी बनाना, मार- पीट, फसलें लूट लेना या उनमें आग लगा देना और औरतों- बच्चों के साथ बदसलूकी रोजमर्रा की बात थी। यहाँ तक कि किसान अपनी जरूरत भर का अनाज भी उत्पादन नहीं कर पाते थे। इन वजहों से किसानों के भीतर नील की खेती को लेकर जबरदस्त असंतोष व्याप्त था। आज़िज आकर 1859 से किसानों ने नील की खेती न करने का निर्णय लिया। जिन जिलों में नील की खेती करवाई जाती थी, वहां किसानों ने अपने संगठन विकसित किये और नील बागान मालिकों और उनके लठैतों के अत्याचार के खिलाफ सड़कों पर उतर पड़े। दंगों की शुरुआत बंगाल के नदिया जिले से हुयी और जल्द ही पूरे इलाके में फ़ैल गयी। नील कारखाने, पुलिस थाने और अन्य शोषणकारी तंत्र विद्रोहियों के निशाने पर आ गया। इसी की साथ, किसानों ने मुकदमेबाजी से निपटने के लिए चन्दा लगाकर पैसा इकट्ठा करना भी शुरू कर दिया। द बंगाली और हिन्दू पेट्रियट जैसे समाचार- पत्रों ने इस विद्रोह को शिक्षित समुदाय तक पहुँचाया और आन्दोलन को खूब लोकप्रियता प्राप्त हुयी।

रैयतों ने अभूतपूर्व एकता का प्रदर्शन किया। प्रतिरोध की तीव्रता को देखते हुए नील बागान मालिक अपना कारोबार समेटने लगे। 1860 में एक सरकारी अधिसूचना में किसानों से नील की जबरन खेती पर रोक लगा दी गयी और कहा गया कि समस्त विवादों का निपटारा कानूनी प्रक्रिया के तहत होना चाहिए। यह एक महान सफलता थी। नील विद्रोह भारतीय जनता के उपनिवेशवाद- विरोधी प्रतिरोध की दृष्टि से मील का पत्थर साबित हुआ।

9.5.6 दक्कन के दंगे

महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर जिलों में फैले दक्कन के दंगे एक मामले में अन्य किसान विद्रोहों से भिन्न थे। इनका नेतृत्व संपन्न मराठा किसानों द्वारा किया गया था। इस असंतोष की जडें भी औपनिवेशिक भूराजस्व नीतियों में छुपी थीं। रैयतवारी बंदोबस्त के अधीन इन इलाकों में भूराजस्व

की दरें काफ़ी ऊंची थीं। किसान को किसी भी आपदा के समय लगान से माफ़ी नहीं मिलती थी। यह कपास उत्पादक क्षेत्र अमेरिकी गृह युद्ध के चलते यूरोप में कपास निर्यात के माध्यम से समृद्ध हुआ था। लेकिन 1864 में अमेरिकी गृह युद्ध समाप्त हो गया और दकन से कपास निर्यात पर बहुत बुरा प्रभावपड़ा। पहले से ही भूराजस्व की अधिकता में पिस रहे किसान के लिए यह त्रासदी बन गया और उन्हें महाजन- सूदखोर की शरण में जाना पड़ा। ये वर्ग जो मूलतः गुजराती थे, सिर्फ अपने मुनाफे से मतलब रखते थे। कर्ज के बोझ तले दबे किसानों की जमीनें गिरवीं रखकर, हिसाब- किताब में हेरा- फेरी करके ये लोग किसानों को ऋण के जाल में फंसा लेते थे। भारी संख्या में किसानों की जमीनें जब्त हो गयीं और असंतोष बढ़ता रहा। दिसंबर, 1874 में सिरुर तालुका से साहूकार- विरोधी दंगों की शुरुआत हो गयी। पटेलों के नेतृत्व में किसानों ने ऋण बंध- पत्र यानी रुक्कों, डिग्रियों और खाता- बहियों को लूटकर जला दिया। जहाँ साहूकारों ने आनाकानी की, वहीं हिंसा का प्रयोग किया गया। इस विद्रोह को जल्द ही सेना और पुलिस ने मिलकर कुचल दिया। लेकिन इस उपद्रव की जांच के लिए बने आयोग ने इसके लिए किसानों की ऋणग्रस्तता को मूल वजह माना। इस आयोग की संस्तुतियों के आधार पर 1879 में एक कृषक- राहत अधिनियम पारित हुआ, जिसने किसानों को जेल जाने और जमीन की जब्ती से कुछ हद तक कानूनी संरक्षण प्रदान किया।

9.5.7 लगान नाअदायगी आन्दोलन

आसाम के कामरूप और दरांग जिलों में एक अनोखा लगान नाअदायगी आन्दोलन 1893- 94 में सामने आया। दरअसल इससे वर्ष एक नए राजस्व व्यवस्था के तहत लगान में तकरीबन 50 से 70 प्रतिशत की वृद्धि कर दी थी। यह इलाके अस्थायी बंदोबस्ती वाली रैयतवारी व्यवस्था के अंतर्गत आते थे। गाँवों के प्रभावशाली तबकों- ब्राह्मणों, गोसाईं और डोलोइस के नेतृत्व में तुरंत ही राइज मेल यानि गांववालों की सभाएं बुलाई गयीं और नागान न अदा करने की मुहीम छेड़ दी गयी। आन्दोलन में एकरूपता लाने के लिए लगान चुकाने वालों के सामाजिक बहिष्कार की घोषणा ने इस आन्दोलन की सौ प्रतिशत सफलता सुनिश्चित कर दी। इस लगभग शांतिपूर्ण आन्दोलन में कुछ हिंसा भी हुयी और बाज़ार फूंकने जैसी घटनाएं सामने आयीं। दो मौकों पर पुलिस ने गोली चलाकर भीड़ को तितर- बितर किया। लेकिन सरकार को इस आन्दोलन के दबाव में किसानों को तत्काल राहत देनी पड़ी। इसी प्रकार का एक अन्य लगान नाअदायगी आन्दोलन महाराष्ट्र में 1896-97 और 1899-1900 के बीच पूना सार्वजनिक सभा के तत्वावधान में चलाया गया था। जिसके प्रणेता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रसिद्द नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे।

9.5.8 मुण्डा विद्रोह

1857 के बाद के आदिवासी विद्रोहों में 1899 से 1900 के मध्य बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में हुआ मुण्डा विद्रोह या उल्गुनान सबसे व्यापक और प्रबल विद्रोह था। मुण्डा आदिवासी सरदार पिछले काफी समय से अपनी खुंटकट्टी (एक प्रकार की सामुदायिक खेती की प्रथा) व्यवस्था पर ब्रिटिश

राज के हस्तक्षेप से नाराज़ थे। व्यापारी, जागीरदार, ठीकादार और साहूकार के आदिवासी व्यवस्था में प्रवेश के बाद आदिवासियों का अपनी जमीन और जंगल से सम्बंधित अधिकारों पर ख़त्म होता जा रहा था। बेगार और ठेकेदारी जैसी प्रथाएं इस नए परिवर्तन की दें थी। आदिवासियों ने प्रारम्भ में अदालत का सहारा लेने की कोशिश की। आदिवासी संघर्ष की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण बात थी। कुछ सरदारों ने कलकत्ता के वकीलों की मदद से बेठ बेगारी (बलात श्रम) के खिलाफ 1890 की शुरुआत में मुकदमा लड़ने का प्रयास किया। लेकिन यह प्रयास विफल रहे। अंततः बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में क्रिसमस की पूर्वसंध्या पर एक शक्तिशाली बगावत उठ खड़ी हुयी। बिरसा मुण्डा 1874 में एक गरीब आदिवासी परिवार में जन्मे थे। जिन्होंने 1895 में 21 में खुद को देवदूत घोषित कर दिया। उनका दावा था कि ईश्वर ने उनको अद्भुत शक्तियों से नवाज़ा है। जल्द ही हजारों की तादाद में आदिवासी और उनके सरदार बिरसा के इर्द- गिर्द इकट्ठा हो गए। धार्मिकता की पृष्ठभूमि में खेती-किसानी, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दे भी उपदेशों का विषय बन गए। बिरसा को षड़यंत्र करने के आरोप में दो साल के लिए जेल में डाल दिया गया। लेकिन वापस आकर तो उनकी लोकप्रियता आसमान छूने लगी। बिरसा गाँव- गाँव घूमकर और लोगों को संबोधित करके "मुंडा राज की स्थापना" और ठीकादार, जागीरदार, राजाओं, हाकिमों और ईसाईयों की हत्या का फरमान जारी करने लगे। सतयुग की स्थापना के नारे के साथ तकरीबन 6,000 की मुण्डा फ़ौज जो बरछे- भाले, तलवार, तीर- कमान और कुल्हाड़ियों से लैस थी अंगरेजी राज और उसके हर अंग पर धावा बोलने लगी। लेकिन बिरसा को जल्द ही फरवरी, 1900 में गिरफ्तार कर लिया गया और विद्रोह असफल हो गया। लेकिन बिरसा और उल्गुनान भारतीय जनता के प्रतिरोध का प्रतीक बन गए।

9.5.9 ताना भगत आन्दोलन

ताना भगत आन्दोलन आदिवासियों और राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा के बीच सम्बन्ध का प्रतीक है। बिरसा के आन्दोलन की तरह उराँव आदिवासियों के मध्य ताना भगत का आन्दोलन मूलतः एक धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन की तरह शुरू हुआ। जोकि कुरुख धरम यानी उराँवों के असली धर्म की स्थापना के लिए शुरू हुआ था। 1914 में जात्रा भगत के नेतृत्व में यह एक शुद्धतावादी आन्दोलन की तरह शुरू हुआ जिसमें मदिरा और माँस के त्याग जैसे आह्वान भी शामिल थे। ताना भगत के नेतृत्व में इसमें एकेश्वरवाद का सिद्धांत भी जुड़ गया। भगत (भक्त का अपभ्रंश रूप) दरअसल आदिवासी समुदायों के धार्मिक नेता हुआ करते थे। बाद में गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने आदिवासियों के मध्य अपने रचनात्मक कार्यक्रमों की शुरुआत की। इसके प्रभाव से भगत कांग्रेस के अधिवेशनों में जाने लगे और महात्मा गाँधी जैसे शीर्ष नेता से भी मिले। इन लोगों ने अपने क्षेत्र के ज़मींदारों को लगान देना बंद कर दिया और उनके खेतों में काम करने से भी इनकार कर दिया। शराब की दुकानों पर पिकेटिंग, सत्याग्रह में हिस्सा लेना जैसे गांधीवादी तरीकों के साथ

उराँव आदिवासियों ने खुद को मुख्यधारा की राजनीति से जोड़ने के प्रयास किये। कालांतर में यह आन्दोलन कई हिस्सों में टूटकर निष्प्रभावी हो गया।

9.5.10 चेंचू एवं रम्पा

चेंचू विद्रोह आन्ध्र प्रदेश के गुंटूर जिले में हुआ एक जंगल सत्याग्रह था। 1920 में हुए इस सत्याग्रह पर असहयोग आन्दोलन का सीधा प्रभाव था। चेंचू नेताओं ने प्रांतीय कांग्रेस नेताओं से संपर्क स्थापित किये थे और गांधीजी ने भी 1927 में इस इलाके का दौरा किया था। सत्याग्रह जैसे गांधीवादी तरीके को अपनाना स्वयं ही इस आन्दोलन पर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव का उदाहरण है। वहीं रम्पा विद्रोह भी आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले में हुआ था। वन कानूनों और ज़मींदारों और साहूकारों के शोषण के विरुद्ध हुए इस आन्दोलन के नेता अल्लूरी सीताराम राजू थे। इस विद्रोह की ख़ास बात यह थी कि अल्लूरी सीताराम राजू एक गैर- आदिवासी नेता होकर आदिवासी हकों की लड़ाई लड़ रहे थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्हें गांधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त हुयी थी। लेकिन हिंसा को संघर्ष का अनिवार्य अंग मानने वाले राजू की बंगाल के क्रांतिकारियों से भी बहुत प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने पुलिस थानों पर हमला करके ब्रिटिश राज के नियंत्रण को ख़त्म करने की रणनीति अपनाई थी। इस विद्रोह से निपटने के लिए 1922 में सेना को लगाया गया और विद्रोह का दमन कर दिया गया। अल्लूरी सीताराम राजू भी पकड़ लिए गए और उन्हें एक पेड़ से बांधकर बिना किसी ट्रायल के गोली मार दी गयी।

9.6 प्रकृति

अपनी मूल प्रवृत्ति में यह विद्रोह उपनिवेशवाद- विरोधी असंतोष के प्रतीक अवश्य थे लेकिन इनके पीछे कोई उपनिवेशवाद- विरोधी चेतना काम नहीं कर रही थी। उनकी समझ अधिकांशतः पीछे की ओर लौटने वाली, पुराने सामाजिक- आर्थिक ढाँचे को पुनर्स्थापित करने वाली और परम्परावादी थी। कई बार उनमें जाति, धर्म और इस तरह की अन्य पहचानों का बाहुल्य भी साफ़ देखा जा सकता है। जैसे सतनामी, वहाबी और कूका जैसे विद्रोह अपने- अपने धार्मिक राज्यों की स्थापना का उद्देश्य रखते थे और धर्म को ही लोगों को आंदोलित करने का माध्यम मानते थे। मोपला विद्रोह तो लगभग पूरी तरह साम्प्रदायिक चेतना की अभिव्यक्ति था। जिसने हिन्दुओं को भी अपना निशाना बनाया।

आदिवासी विद्रोह में टोटम- टटके और अंधविश्वासों की भरमार थी। ईश्वर के आदेश, हथियारों की चोट का असर न होने के दैवीय वरदान और तमाम तरह के अन्य मिथक इन विद्रोहों के पीछे काम कर रहे थे। इन विद्रोहों में किसी वैकल्पिक व्यवस्था का स्वप्न नहीं था। साहूकारों- महाजनों के अत्याचार और ब्रिटिश राज की भूराजस्व नीतियों के अन्य दुष्प्रभावों को मिटाना इनका उद्देश्य था। वे एक शोषणमुक्त व्यवस्था के लिए लड़ रहे थे, लेकिन उनके समाधान उपनिवेशवाद की व्यापक चौहद्दी को तोड़ने में सक्षम नहीं थे। मिसाल के तौर पर पाबना के किसानों का तो नारा ही था- हम

सिर्फ और सिर्फ महारानी की रैयत होना चाहते हैं। कई मामलों में तो इनका नेतृत्व ही पुराने सामंती तत्वों के हाथ में था, जो कि अपने व्यक्तिगत हितों पर हुए कुठाराघात से कुपित थे।

उन्नीसवीं सदी के दूसरे भाग में हमें कुछ नयी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। इसके पहले हिंसक तरीकों से उपनिवेशवादी व्यवस्था के अंगों पर हमला करके उन्हें नष्ट करना ही एक तरीका था। लेकिन बाद में लगान की नाअदायगी जैसे तरीके भी देखने को मिले। विद्रोहों की एक शुद्धतावादी प्रवृत्ति भी हमें देखने को मिलती है। जिसमें सामाज की बुराइयों से लड़ने और उन्हें ख़त्म करने का उत्साह भी दिखाई दिया। कानूनी ढंग से भी लड़ाई लड़ने के प्रयास भी किये गए। फिर स्वतःस्फूर्त विद्रोहों के साथ- साथ ग्रामीणों और आदिवासियों ने खुद को संगठित करना भी शुरू कर दिया था। बौद्धिक तबके में खासतौर पर बंगाली बुद्धिजीवी नील विद्रोह जैसे मामलों में खुलकर सामने आये। ताना भगत आदि आन्दोलनों में मुख्यधारा के राष्ट्रीय संघर्ष से जुड़ने की भी प्रवृत्ति दिखाई दी। यानि बाद के आन्दोलनों ने अपने स्थानीय स्वरुप से बाहर निकलकर राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ विकसित हुयी चेतना को अपनाना शुरू कर दिया था। इसी वजह से बाद में राष्ट्रीय आन्दोलन में किसान एक बड़ी परिवर्तनकारी शक्ति बनकर उभरे।

9.7 सारांश

ये विद्रोह ब्रिटिश राज की शोषण और अन्याय पर आधारित व्यवस्था के विरुद्ध आम जनता के असंतोष की उपज थे। भले ही इन विद्रोहों ने औनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेंकने में सफलता प्राप्त न की हो, इन्होने विदेशी शासन के प्रति घृणा को आम बनाया। अलग- अलग इलाकों में और अलग- अलग समय पर होने के बावजूद इनमें समानता थी। ये सभी शोषितों और शोषकों के बीच के संघर्ष थे। शोषक चाहे विदेशी उपनिवेशवाद हो या उपनिवेशवाद के स्थानीय सहयोगी, वे लोगों के निशाने पर थे। सरकार ने इन विद्रोहों के पीछे छुपे असंतोष को झुठलाने के लिए कभी इन्हें साम्प्रदायिकता की देन कहा तो कभी जातियों का आपसी संघर्ष। इन विद्रोहों ने भारत में उपनिवेशवाद विरोध की एक पृष्ठभूमि का निर्माण किया। जो अपने मूल चरित्र में पारंपरिक, ठहरा हुआ और यथास्थितिवादी होने के बावजूद ब्रिटिश राज के शोषणकारी चरित्र को उजागर करता था।

9.8 सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची

चन्द्र, बिपन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,

चन्द्र, बिपन, आधुनिक भारत, एनसीईआरटी

बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक, ओरिएंट ब्लैकस्वान

सरकार, सुमित, आधुनिक भारत

9.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

Dhanagre, D.N., Peasant Movement in India, 1920-1950

Desai, A. R., Peasant Struggles in India

Guha, Ranajit, Elementary Aspects of Peasant Insurgency In Colonial India

Singh, Suresh, The Dust-Storm and the Hanging Mist

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

औपनिवेशिक भारत में हुए किसान और आदिवासी विद्रोह वास्तव में शोषक और शोषितों के बीच का संघर्ष थे। सविस्तार टिप्पणी कीजिये।

इकाई दस

आधुनिक भारत में धर्म एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन

10.1. प्रस्तावना
10.2. उद्देश्य
10.3. सुधार आन्दोलनों के कारण एवं स्वरूप
10.4. कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलन
10.4.1. ब्रह्म समाज और राजा राममोहन रॉय
10.4.2 विधवा- पुनर्विवाह आन्दोलन एवं ईश्वरचंद्र विद्यासागर
10.4.3. यंग बंगाल आन्दोलन और हेनरी विवियन डेरोजियो
10.4.4. प्रार्थना समाज और महादेव गोविन्द रानाडे
10.4.5. आर्य समाज और स्वामी दयानंद सरस्वती
10.4.6. रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानंद
10.4.7. थियोसाफिकल सोसाइटी
10.4.8. अलीगढ़ आन्दोलन और सर सैयद अहमद खान
10.4.9. देवबंद आन्दोलन
10.4.10. अहमदिया आन्दोलन
10.4.11. अरव्विपुरम आन्दोलन
10.4.12. ज्योतिबा फूले एवं सत्यशोधक समाज
10.5. सामाजिक सुधार के परिणाम
10.6. सारांश
10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1. **प्रस्तावना**

भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना ने समाज में व्यापक वैचारिक उथल- पुथल को जन्म दिया था। **19** वीं सदी के बौद्धिक जगत में भारत की आंतरिक सामाजिक- सांस्कृतिक कमजोरियों के

प्रति एक आलोचनात्मकदृष्टिकोण का विकास हो रहा था। इस परिदृश्य में नवशिक्षित भारतीयों के बीच आधुनिक पश्चिमी विचारों की पहुँच से एक नयी विचारधारा का निर्माण हुआ, जो कि तमाम तरीकों से अपने समाज की अन्तर्निहित बुराइयोंको जड़ से मिटाना चाहती थी। यह कोई संगठित और सुनियोजित प्रयास नहीं था। बल्कि अलग- अलग इलाकों में अलग- अलग समय में कुछ व्यक्तियों के प्रयासों के मार्फ़त शुरू हुए ये आन्दोलन **19**वीं सदी के भारत कीखासियत बन गए। जिन्हें हम सामाजिक- धार्मिक सुधार आंदोलन या जागरण के नाम से जानते हैं।

10.2. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको **19**वीं सदी में देश के विभिन्न भागों में हुए सामाजिक- धार्मिक आंदोलनों की पृष्ठभूमि, उनकी प्रकृति, उनके प्रभाव और उनके वैचारिक आधार सहित कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलनों से परिचितकराना है। इस इकाई के अंतर्गत आप पढेंगे-

- सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलनों की जरूरत कैसे महसूस हुयी?
- इस आन्दोलनों का स्वरुप और वैचारिक आधार क्या थे?
- कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलनों और उनसे जुड़े व्यक्तित्वों के बारे में जानकारी
- आन्दोलन का परिणाम, एवं
- इतिहास पर उसका प्रभाव

10.3. सुधार आन्दोलनों के कारण एवं स्वरूप

सामाजिक- धार्मिक समाज सुधर आन्दोलनों पर औपनिवेशिक राज्य का क्या प्रभाव था, यह एक रोचक प्रश्न है। निश्चित रूप से अंगरेजी शासन प्रणाली के अंतर्गत भारत का राजनीतिक और प्रशासनिक रूप से एकीकरण कर दिया गया था। परन्तु यह किसी भले के उद्देश्य से नहीं किया गया था वरन उसके पीछे भारत के महत्तम आर्थिक दोहन का मंतव्य था। लेकिन समूचे देश पर इसके विरुद्ध हुयी प्रतिक्रिया लगभग एक सामान थी। बिपन चन्द्र के शब्दों में सारे देश के दुःख- दर्द एक समान हो गए थे। इस तरह ही सारे देश में पश्चिमी शिक्षा के संपर्क में आये शिक्षित भारतीय मध्यवर्ग के भीतर भी इस नयी औपनिवेशिक चुनौती की प्रतिक्रिया भी लगभग एक समान हुयी। सबसे पहले बंगाल और फिर महाराष्ट्र होते हुए अपने समाज के भीतर की कमजोरियों के विरुद्ध संघर्ष करने की समझ इसी प्रतिक्रिया का बौद्धिक उत्पाद थी। यानि भारतीय लोगों के बौद्धिक विकास की जो परिस्थितियां औपनिवेशिक राज्य के अंतर्गत उत्पन्न हुयी थी, भारतीय बुद्धिजीवियों ने उसे अपने सामाजिक ढाँचे की पुनर्रचना की दृष्टि विकसित करने के लिए इस्तेमाल कर लिया। कुल मिलाकर, भारत का सुधार आन्दोलन अंग्रेजी राज की कृपा का परिणाम नहीं था। सुशोभन सरकार ने दो टूक लिखा है- "विदेशी विजय और आधिपत्य शासित लोगों के उत्थान में सहायक नहीं बल्कि बाधाएं पैदा करने के लिए होता है।"

इस दिशा में भारत के प्राचीन इतिहास की खोज महत्वपूर्ण थी, जिसने लोगों को अपने अतीत के प्रति जागरूक बनाया। प्रच्यावादियों का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने प्राचीन

भारतीय धर्मों का महिमामंडन करके लोगों को उनकी क्षमताओं पर यकीन करना सिखाया। ईसाई मिशनरियों के हिन्दू और इस्लाम धर्मों के खिलाफ आक्रामक प्रचार ने भी धार्मिक ढांचों में सैकड़ों सालों में व्याप्त हो गयी बुराइयों और कुरीतियों को ख़त्म करने के लिए प्रेरित किया। इन तमाम परिस्थितियों में प्रबुद्ध वर्ग के बीच से अलग- अलग तरह की प्रतिक्रियाएं हुयी। जिन्होंने सुधार के अलग- अलग तरीके सुझाए और उन पर अमल किया। इनमें पहला तरीका आंतरिक सुधारों का था। यानि समाज के भीतर जागरूकता का प्रसार करना और उसकी चेतना को विकसित करना। मसलन राममोहन रॉय ने सती प्रथा को रोकने के लिए लोगों को समझाने- बुझाने, उन्हें प्राचीन धर्मशास्त्रों का हवाल यकीन दिलाने का काम किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के लिए कलकत्ता की सड़कों पर कई बार जान के जोखिम का सामना किया। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने उन पर हमले किये। लेकिन इसी सबके बीच लोगों में एक विधवा पुनर्विवाह को लेकर एक नयी तरह की चेतना भी विकसित हुयी। भीतर से सुधार की यह पद्धति वास्तव में सुधार आन्दोलनों की सबसे बड़ी पद्धति थी। दूसरा तरीका था कानूनी रोक के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को रोकना। जैसे राजा राममोहन रॉय के सती- प्रथा विरोधी अभियान के बाद लार्ड विलियम बैंटिक ने सटी प्रथा पर रोक लगा दी थी। लेकिन इस पद्धति के मुख्या प्रतिनिधि थे केशवचंद्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे और वीरेशलिंगम आदि। इन्होने क़ानून के सहारे सामजिक कुरीतियों से लोगों को विमुख करने के विचार की हिमायत की। लेकिन एक विदेशी राज्य में लोग ऐसे क़दमों को अपनी परंपरा में हस्तक्षेप मानते थे। **1857** में धार्मिक- जातीय मामलों में दखल का दुष्परिणाम अंग्रेज झेल चुके थे। इसलिए इस तरह के क़दमों की एक सीमा थी और यह ज्यादा प्रभावी तरीका नहीं सिद्ध हो सकता था। तीसरा तरीका था मिसाल बनाने का।इस तरीके में कुछ सुधारक अपनी ओर से परंपरागत रूढ़ियों को चुनौती देते हुए एक प्रतीक बन जाते थे और उम्मीद करते थे कि अन्य लोग भी उनकी देखा- देखी उनका अनुसरण करेंगे। इस धारा के महत्वपूर्ण सुधारक थेदक्षिणारंजन मुख़र्जी, राम गोपाल घोष और कृष्णा मोहन बनर्जी। ये तीनों ही डेरोजियो के अनुयायी थे और यंग बंगाल आन्दोलन से सम्बन्ध रखते थे। चौथा तरीका सामाजिक सेवा और कार्यों के माध्यम से लोगों के हृदयमें स्थान बनाने का था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन इस धारा का प्रतिनिधित्व करते थे। आर्य समाज ने स्कूल- कॉलेज के तंत्र के माध्यम से तो रामकृष्ण मिशन अस्पतालों, दवाखानों औरअनाथालयों के मार्फ़त लोगों की सेवा करके अपने सन्देश का प्रचार-प्रसार करते थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने तो अपना सबकुछ विधवा पुनर्विवाह के नाम पर दांव पर लगा दिया। मशहूर है कि भरे जाड़ों में भी उनके पासकभी कोई गर्म कोट नहीं रहा। क्योंकि किसी गरीब को देखते ही वे अपना कोट निकालकर उसे दे दिया करते थे। समाज सुधार अपने वैचारिक धरातल पर कुछ आधुनिक मूल्यों की स्थापना करता था। जिनमें महत्वपूर्ण थे-मानवतावाद,

तर्कवाद, सर्वहितवाद और प्रगतिशीलता। लगभग सभी सुधार आन्दोलनों ने इन मूल्यों पर बराबर जोर दिया। चाहे वे हिन्दू धर्म सुधार से सम्बंधित हो अथवा मुस्लिम धर्मसुधार से।

10.4. कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलन

10.4.1. ब्रह्म समाज और राजा राममोहन रॉय

राजा राममोहन रॉय को "आधुनिक भारत का पिता" कहा जाता है। वास्तव में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय समाज को मध्ययुगीन सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने का आह्वान किया। **22 मई, 1772** को बंगालके हुगली जिले में उनका जन्म हुआ था। वे कई भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्हें अरबी- फ़ारसी, संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, ग्रीक, लैटिन और हिब्रू जैसी भाषाओं पर अधिकार प्राप्त था। उनकी सामाजिक दृष्टि तमामधर्मों के अच्छे विचारों को गृहण करके निर्मित हुयी थी। उनकी सोच में प्रगतिशीलता के सभी तत्व विद्यमान थे। वे मानव समाज की मूलभूत समानता, स्त्रियों के नागरिक अधिकारों, और मानवमात्र की श्रेष्ठता केपैरोकार थे। यही नहीं उन्होंने भारत के लिए पूँजीवाद का समर्थन किया था। यानी उनकी सोच का परास एक तरफ पाश्चात्य विचारों से जुड़ता था तो दूसरी ओर उसकी जडें भारतीय सभ्यता में भी गहरे तक जुडी थी।

उनकी प्रसिद्द कृतियाँ है- तुल्फ़ात-उल-मुवाहिदीन (एकेश्वरवादियों को उपहार), मंजार्तुल अदयान (विभिन्न धर्मों पर फारसी में परिचर्चा) और , प्रीसेप्ट्स ऑफ़ जीसस। इसके अलावा उन्होंने वेदों और पांच उपनिषदों केबांगला अनुवाद किये और एकेश्वरवाद पर कई अन्य किताबें का लेखन भी किया। **1814** में उन्होंने कलकत्ता में कुछ नौजवानों की मदद से आत्मीय सभा की स्थापना की। उन्होंने मूर्तिपूजा, जातिगत भेदभाव, धार्मिकआडम्बरों, बहुविवाह, कुलीनवाद और सतीप्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध किया। अपने विचारों के समर्थन के लिए उन्होंने प्राचीन धार्मिक ग्रंथों का सहारा लिया। क्योंकि आम जनता इस तरह आसानी से समझ जाती थी।लेकिन उनके विचारों का मूल स्रोत था मानवतावाद और तर्कवाद। वे वेदान्त दर्शन में अगाथ आस्था रखते थे। यही नहीं, उन्हें भारत में पत्रकारिता का अग्रदूत भी माना जाता है और राजनीतिक मुद्दों पर भी उनके विचारऔर सक्रियता के कारण वे राजनीतिक जन आन्दोलनों के प्रवर्तक भी थे।

1829 में उन्होंने ब्रह्म सभा नामक धार्मिक संस्था की स्थापना की जो बाद में ब्रह्म समाज के नाम से जाना गया। इस नए पंथ में धार्मिक और जातीय कट्टरता के लिए कोई जगह नहीं थी। इसका उद्देश्य था- हिन्दू धर्म कोउसमें व्याप्त कुरीतियों से मुक्त बनाना, एकेश्वरवाद का प्रचार- प्रसार करना, सती प्रथा का विरोध करना और मानवमात्र की प्रतिष्ठा को स्थापित करना। इस संस्था के लोग वेद और उपनिषद का सहारा लेकर तर्क केआधार पर सामजिक कुरीतियों को गलत ठहराते थे। **1818** से उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध जनमत का निर्माण करने का अभियान छेड़ दिया। वे श्मशान घाट जाते और लोगों को सती प्रथा का पालन न करने के लिएसमझाते थे। बाद में इनके प्रयासों और फिर लार्ड विलियम बैंटिक द्वारा **1829** में सती प्रथा पर कानूनी पाबंदी लगाने से इस दिशा में काफ़ी

मदद मिली। बाद में देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचंद्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्मसमाज का काफी विस्तार हुआ।

10.4.2 विधवा- पुनर्विवाह आन्दोलन एवं ईश्वरचंद्र विद्यासागर

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह आन्दोलन के लिए कोई संगठित प्रयास नहीं किये, जिस तरह ब्रह्म समाज आदि ने सटी प्रथा आदि मुद्दों पर किये थे। लेकिन फिर भी उन्होंने समकालीन समाज सुधारआन्दोलन में महान योगदान किया। सती प्रथा के उन्मूलन के राजा राममोहन रॉय के प्रयासों ने यह धारणा स्थापित की कि पुरुष के बिना भी स्त्री को जीवन जीने के अधिकार प्राप्त हैं। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने उस दिशामें आगे बढ़ते हुए स्त्रियों के सम्मानजनक जीवन के लिए संघर्ष किया। बाल- विवाह, बहु- विवाह आदि कुप्रथाओं के मुखर विरोधी विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। यह उन्ही केप्रयासों का परिणाम था कि सरकार ने **1856** में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित किया। स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने स्कूलों के सरकारी निरीक्षक होने की हैसियत से बंगाल में अनेक बालिका विद्यालयखोले। बेथुन स्कूल के मंत्री होकर भी उन्होंने नारी शिक्षा के लिए अगाध प्रयत्न किये। ब्राह्मण जाति के संस्कृत पर एकाधिकार के विरोधस्वरूप उन्होंने संस्कृत कॉलेज में पढने के लिए गैर- ब्राह्मणों को भी पात्र बना दिया।वे स्वयं भी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे।

10.4.3. यंग बंगाल आन्दोलन और हेनरी विवियन डेरोजियो

इस आन्दोलन के प्रवर्तक एक नौजवान हेनरी विवियन डेरोजियो थे जो अपने विचारों में कहीं ज्यादा आधुनिक और मुखर थे। **1809** में जन्मे देरोजियो सत्रह साल की उम्र में एक धड़ीसाज के रूप में कलकत्ता आये थे। इसीउम्र में उन्होंने हिन्दू कॉलेज में पढ़ाना शुरू कर दिया और अपने इर्द-गिर्द अनुयायियों का एक दल संगठित कर लिया। वे फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरणा ग्रहण करते थे और अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए जाने जाते थे। ये प्रचंडदेशभक्त लोगों का दल ही यंग बंगाल कहलाया। डेरोजियो ने समाज सुधार के लिए कुछ अन्य संस्थाओं जैसे बंगहित सभा, एंग्लो-इंडियन हिन्दू एसोसिएशन, अकादमिक एसोसिएशन और सोसाइटी फॉर द एक्वीजीशनऑफ़ जनरल नॉलेज की स्थापना भी की। यंग बंगाल आन्दोलन के मुख्य मुद्दे थे- प्रेस की स्वतंत्रता, जमींदारों के अत्याचारों से रैयतों की रक्षा, उच्च सरकारी सेवाओं में भारतीयों के प्रतिनिधित्व की मांग, जूरी द्वारामुकदमों की सुनवाई। ये लोग नारी अधिकारों के घोर हिमायती थे। इन्होने सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार किये। भले ही डेरोजियो और उनके अनुयायी कोई बड़ा और संगठित आन्दोलन नहीं चला सके और सिर्फ **22**वर्ष की उम्र में ही वे चल बसे, उन्होंने बंगाल में तमाम जनहित के मुद्दों पर आन्दोलन खड़ा करके लोगों को सामाजिक- राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाया।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने डेरोजियो और उनके अनुयाइयों को "बंगाल मेंआधुनिक सभ्यता के अग्रदूत कहा था".

10.4.4. प्रार्थना समाज और महादेव गोविन्द रानाडे

प्रार्थना समाज की स्थापना महादेव गोविन्द रानाडे और डॉक्टर आत्माराम पांडुरंग ने केशवचंद्र सेन की महाराष्ट्र यात्रा से प्रभावित होकर **1867** में की थी। रानाडे को "पश्चिमी भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का अग्रदूत"कहा जाता है। बंगाल में समाज सुधार के विस्तार के बाद महाराष्ट्र में समाज सुधार की भावना भावना ने जोर पकड़ा। इस समाज का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों से जुड़े हुए मुद्दों पर जनचेतना का निर्माण, जातिगत संकीर्णता काप्रतिषेध, स्त्री शिक्षा का आरम्भ और बाल विवाह-विधवा पुनर्विवाह आदि विषयों पर काम करना था। रानाडे ने ही बाद में सार्वजनिक समाज की स्थापना की थी। इनके अभियान में विष्णु शास्त्री और जी० डी० कर्वे नेअमूल्य सहयोग प्रदान किया। कर्वे की मदद से ही **1867** में रानाडे ने एक विधवा आश्रम संघ की स्थापना की। **1870** में रानाडे और उनके साथियों ने मिलकर पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की। यह संस्था बाद मेंभारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्थाओं में गिनी जाती है जिसने एक अखिल भारतीय संगठन की नींव स्थापित की।

10.4.5. आर्य समाज और स्वामी दयानंद सरस्वती

सोलह वर्ष की आयु में ही संन्यास ग्रहण कर लेने वाले दयानंद सरस्वती ने **1875** में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। जिसका मुख्यालय बाद में लाहौर स्थानांतरित कर दिया गया था। आर्य समाज की स्थापनाके मूल उद्देश्य थे- वैदिक धर्म यानि वेदों पर आधारित धर्म को पुनः शुद्ध करना और उसे बाद के समय में आ गयी बुराइयों- कुरीतियों से मुक्त करना, समूचे भारत को धार्मिक एकता के सूत्र में पिरोना और उस पर पद रहेपाश्चात्य प्रभाव का निषेध करना। स्वामी दयानंद ने नारा दिया- "वेदों की ओर लौटो". वे मानते थे कि वेड भारतीय सभ्यता के आधार स्तम्भ हैं और उन्हें ही पुनर्स्थापित करके तत्कालीन बुराइयों से छुटकारा पाया जासकता है। वेदों की अपरिवर्तनीयता, शाश्वतता और दैवीयता पर यकीन करने वाले आर्य समाज ने हिन्दू धर्म पर बढ़ रहे इस्लामिक और ईसाई धर्मप्रचारकों के प्रभाव का मुकाबला करने के लिए आक्रामक नीति अपनाई।उन्होंने "सत्यार्थ प्रकाश" नामक अपनी पुस्तक में इन धर्मों की बुराइयों पर प्रहार किया। छुआछूत और जातिभेद को सिरे से नकारने वाले आर्य समाजियों द्वारा धर्मान्तरित हुए लोगों की हिन्दू धर्म में घर वापसी के लिएशुद्धि आन्दोलन चलाया। इसके अलावा दूसरा महत्वपूर्ण कार्यक्रम गौरक्षा से सम्बंधित था। इन दोनों ही मुद्दों ने बाद में मुस्लिम धर्मप्रचारकों के साथ सीधे मुकाबले में सांप्रदायिक राह पकड़ ली थी। आर्य समाज आन्दोलनकी पहुँच भारतीय समाज में इतनी गहरी थी कि विन्सेंट चिरोल ने अपनी किताब "द इंडियन अनरेस्ट" में आर्य समाज को "भारतीय अशांति का जन्मदाता" कहा था।स्वामी दयानंद की मृत्यु के बाद दयानंद एंग्लो- वैदिकशिक्षा आन्दोलन ने समूचे उत्तर भारत में शिक्षा के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

10.4.6. रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकनद कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर काली मंदिर के पुजारी स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। सभी धर्मों को सत्य मानने वाले और धर्म के रहस्यवादी आध्यात्मिक साधक परमहंस महान व्यक्तित्व थे।**1886** में परमहंस की मृत्यु के बाद चौबीस वर्षीय विवेकानंद ने समूचे भारत की यात्रा की और घोषित किया- "मैं जिस प्रभु में विश्वास करता हूँ वह सभी आत्माओं का समुच्चय है और सर्वोपरि है। मेरा प्रभु पतितों, पीड़ितोंऔर सभी प्रजातियों में निर्बलों का रक्षक और उद्धारक है।" **1893** में शिकागो में हुए विश्व धर्म सम्मलेन में उनके द्वारा दिए गए भाषण से उनकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच गयी। अमेरिकी अखबारों द्वारा उनके भाषण कीरिपोर्टिंग के बाद वे भारत में बहुत प्रसिद्द हो गए। **1897** में स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस मिशन ने देश भर में अनेक स्कूल, अस्पताल, अनाथालय और पुस्तकालय खोल कर लोगों की सेवाकरने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद का मुख्य जोर सेवा पर था और इसे ही उन्होंने मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र तरीका कहा था। स्वामी विवेकानंद की सामाजिक- राजनीतिक दृष्टि बहुत व्यापक थी। उन्होंने साफ़ शब्दोंमें कहा था- "जब तक देश में लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं, मैं ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही समझूँगा जिन्होंने उनकी मेहनत की कमाई से शिक्षा गृहण की पर उनकी परवाह नहीं करते।" उन्होंने छुआछूत,साम्प्रदायिकता और लगभग हर पहलू पर प्रहतिशील दृष्टि से विचार किया और कहा- "मैं ऐसे धर्म या ईश्वर को नहीं मानता जो विधवाओं के आँसू पोंछ सके, या किसी अनाथ को एक टुकड़ा रोटी भी न दे सके। वेद,कुरआन और अन्य सभी धर्म ग्रंथों को अब कुछ समय के लिए विश्राम करने दें।"

10.4.7. थियोसाफिकल सोसाइटी

थियोसाफिकल सोसाइटी की स्थापना मैडम ब्लावात्सकी और कर्नल आल्काट ने न्यूयार्क में **1875** में की थी। बाद में भारत आकर इन्होने मद्रास के करीब अडियार में अपना मुख्यालय बनाया। ये लोग प्राच्य धर्मों सेअत्यंत प्रभावित थे और इस सोसाइटी की स्थापना भी इन धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए की गयी थी। थियोसोफिस्ट हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक दर्शन और उसके कर्म सिद्धांत को मानते थे। इसीलिएपुनर्जन्म में भी उनकी गहरी आस्था थी। परन्तु जाति-पाति, साम्प्रदायिक या लैंगिक विभेदों से इतर थिओसोफिस्ट सार्वभौमिक बंधुत्व का प्रचार करते थे। इस आन्दोलन ने भले ही एक बड़े आन्दोलन का स्वरुप प्राप्त नकिया हो, भारतीय धर्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा ने भारतीयों में आत्मविश्वास का संचार किया। साथ ही इस आदोलन को पहचान इसकी नेता एनी बेसेंट के कामों से मिली। जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उत्साह कासंचार किया और उसकी अध्यक्ष तक बनीं। उन्होंने ही बाद में होम रूल लीग की स्थापना की थी। इसके

अतिरिक्त उन्होंने बनारस में एक केंद्रीय हिन्दू विद्यालय खोल था, जिसे बाद में मदन मोहन मालवीय के प्रयासों नेबनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप दिया।

10.4.8. अलीगढ़ आन्दोलन और सर सैयद अहमद खान

मुस्लिम धर्मसुधार की आन्दोलन की शुरुआत हिन्दू धर्मसुधार आन्दोलन की तुलना में देर से हुयी। कलकत्ता में **1863** में मुहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी के साथ ही इसकी औपचारिक शुरुआत मानी जा सकती है। परन्तुइस दिशा में सर सैयद अहमद खान का और उनके द्वारा चलाये गए अलीगढ़ आन्दोलन का योगदान सबसे प्रारम्भिक और महत्वपूर्ण था। आधुनिक वैज्ञानिक विचारों में यकीन रखने वाले सर सैयद अहमद नेमुसलामानों को पाश्चात्य शिक्षा की ओर प्रवृत्त किया। उन्होंने कुरआन को एकमात्र प्रमाणिक पुस्तक माना और उसकी व्याख्या समकालीन आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण से की। वे धर्म की गतिशीलता में विश्वास करतेथे। जीवन भर वे इस्लाम को अधिक उदार, तर्कसंगत और आधुनिक धर्म बनाने के प्रयास किये। वे मानते थे कि विचार की स्वतंत्रता अनिवार्य है और किसी भी तरह के कट्टरतावाद और संकुचित दृष्टिकोण के वे खिलाफथे। कहा जा सकता है कि वे इस्लाम के उदारवादी नेता थे जिन्होंने हिन्दुओं को काफिर मानने से इनकार कर दिया और हिन्दू- मुस्लिम एकता की जरूरत पर बल दिया। उन्होंने मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा केप्रचार-प्रसार के लिए **1875** में अलीगढ में मुहम्मदन एंग्लो- ओरिएण्टल कॉलेज की स्थापना की जो बाद में अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्द हुआ। बाद के दिनों में इस कॉलेज के प्रति अपने लगाव केचलते सर सैयद अहमद खान ने समाज सुधार के अपने प्रयासों को लगभग खत्म कर दिया। रूढ़िवादी मुसलमानों के विरोध को रोकने के लिए उन्होंने ऐसा किया था। वे मानते थे कि मुसलमानों की तरक्की आधुनिकशिक्षा के माध्यम से ही संभव है। साथ ही, मुस्लिम मध्य वर्ग के पिछड़ेपन को देखते हुए और हिन्दू मध्य वर्ग के तीव्र उत्थान ने उनके विचारों में कुछ विसंगतियां पैदा कर दी। जिन्होंने बाद में बहुत नुक्सान पहुँचाया। वेधीरे- धीरे हिन्दू और मुस्लिम एकता के खिलाफ बोलने लगे और कहा कि ऐसे किसी भी प्रयास से मुसलमानों का नुक्सान होगा और हिन्दुओं का वर्चस्व और बढ़ता जाएगा। साथ ही वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भी घोरआलोचक हो गए जो कि एक बहुधार्मिक राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयास कर रही थी।

10.4.9. देवबंद आन्दोलन

मुहम्मद कासिम ननौतवी और रशीद अहमद गंगोही - दो इस्लामिक धर्मशास्त्रियों ने उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देवबंद में **1867** में एक मदरसे की स्थापना की थी, जो बाद में विश्वप्रसिद्ध इस्लामिक केंद्र बना।इसका उद्देश्य कुरआन और हदीस के आधार पर इस्लामिक शुद्धतावाद का प्रचार- प्रसार करना था। इस मदरसे ने विदेशी शासन को एक कलंक माना और उसके खिलाफ मुसलमानों से जिहाद छेड़ देने का आह्वान किया।इसी वजह से देवबंद आन्दोलन अलीगढ़ आन्दोलन के विपरीत विदेशी शासन के खिलाफ संघर्ष का एक बड़ा केंद्र बना था। इस आन्दोलन ने भारत को एक राष्ट्र माना और इसके मौलानाओं ने आखिर तक मुसलमानों सेकांग्रेस में शामिल

होने और उसके साथ अंगरेजी राज के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान किया। देवबंद आन्दोलन की वजह से मुस्लिम लीग को मुसलमानों को अपने साथ जोड़ने में बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा।इसीलिए उसने बाद के वर्षों में पाकिस्तान की मांग मनवाने के लिए दंगों और अराजकता के तरीकों का सहारा लेना पड़ा था।

10.4.10. अहमदिया आन्दोलन

अहमदिया आन्दोलन के प्रवर्तक मिर्ज़ा गुलाम अहमद थे। इन्होने **1889** में खुद के मसीहा और महदी होने का दावा किया और बाद में वे खुद को कृष्ण और ईसामसीह का अवतार भी कहने लगे थे। दरअसल उनपरथिओसोफी**,** हिन्दू धर्म सुधार आन्दोलन और पश्चिमी सुधारवाद का प्रभाव था और वे मानवजाति के सर्वव्यापक धार्मिक सिद्धांतों में विश्वास करते थे। इस आन्दोलन ने मुसलमानों में आधुनिक विचारों के प्रचार- प्रसारके लिए स्कूल- कॉलेज खोले जाने पर बल दिया। उन्होंने एक ओर आर्य समाज और ईसाई धर्मप्रचारकों के विरुद्ध इस्लाम के रक्षक होने का दावा किया और दूसरी ओर दूसरे धर्मों के विरुद्ध संघर्ष का जोरदार विरोध भीकिया। आज के पाकिस्तान में अहमदियों को अपने उदारवादी विचारों के चलते तालिबान के जुल्म का सामना करना पड़ रहा है।

10.4.11. अरव्विपुरम आन्दोलन

सन **1888** में शुरू हुए इस आन्दोलन के प्रणेता केरल के समाज सुधारक श्री नारायण गुरु थे। ब्राह्मणवाद और पुरोहितों के द्वारा निम्न जातियों के शोषण के विरुद्ध छेड़ा गया यह आन्दोलन मंदिर सम्बंधित अनुष्ठानों परब्राह्मण जाति के पुरोहितों के वर्चस्व को तोड़ता था। इस आन्दोलन के तहत स्वयं श्री नारायण गुरु ने सारे ब्राह्मण निषेधों को ठुकराते हुए अरव्विपुरम मंदिर में शिवरात्रि के अवसर पर शिव की प्राण प्रतिष्ठा की। उनकेद्वारा शुरू किया गया यह आन्दोलन बाद के कई समाज सुधार आंदोलनों का प्रेरणा स्रोत बन गया। इसने मंदिर में प्रवेश के निषेध को लेकर निम्नजातियों में पनप रहे असंतोष को सामने ला दिया और बाद में मंदिर प्रवेशआन्दोलन केरल में एक महत्वपूर्ण सामाजिक- राजनीतिक गतिविधि बन गया।

10.4.12. ज्योतिबा फूले एवं सत्यशोधक समाज

ज्योतिबा फूले उन कुछ समाज सुधारकों में एक हैं जिन्होंने ब्राह्मणवाद और पुरोहिती- पाखण्ड पर सबसे जोरदार प्रहार किया। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था और हिन्दू धर्म की समग्र आलोचना की। उनका मानना था कि इसव्यवस्था के शोषण के न सिर्फ सामाजिक आयाम हैं बल्कि उसके आर्थिक आधारों को भी ज्योतिबा ने पहली बार चिन्हित किया। उनकी इस सोच ने उन्हें घोर ब्राह्मण- विरोधी बना दिया। वे गरीब भारतीय किसानों केजबरदस्त हिमायती थे। उन्होंने **1873** में सत्यशोधक समाज की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि दलित वर्गों को शिक्षित करके उन्हें जाति

की जकड़न से मुक्ति दिलाई जा सके। उनकी पुस्तक गुलामगीरी इस सन्दर्भ मेंलिखी गयी एक नायाब किताब है।

10.5. सामाजिक सुधार के परिणाम

सुधार आन्दोलनों ने भारत में एक नए युग का सूत्रपात किया था। यह नया युग दरअसल तर्कवाद की रौशनी में अपनी सामाजिक चुनौतियों से निपटने का प्रयास करता था। नए ज्ञान- विज्ञान, दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य मेंसमस्याओं के विश्लेषण और विवेचन की इस पद्धति ने सोच- विचार के नए तौर- तरीकों को जन्म दिया था। समाज सुधार की भावना से निकले कार्यक्रम का धीरे- धीरे विस्तार होता गया और कहा जा सकता है कि इसकीचौहद्दी में ही राजनीतिक कार्यक्रमों की आधारशिला निर्मित हुयी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पहले के तमाम समाज सुधारक बाद में कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेता भी बने। और काफी लम्बे समय तकउपनिवेशवाद- विरोधी राजनीतिक कार्यक्रम के लिए समाज सुधार कार्यक्रमों से दूर रहने वाली कांग्रेस के भीतर से ही गांधी के आगमन के बाद समाज सुधार के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इस तरह, समाज सुधारआन्दोलन और बाद में विकसित हुए राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच गहरा अंतर्संबंध था। राजा राममोहन रॉय जैसे प्रारम्भिक सुधारवादी भी राजनीतिक मुद्दों पर न सिर्फ अपनी बेबाक राय सामने रखने लगे थे, बल्कि उन मुद्दोंपर उन्होंने जनमत का निर्माण करने का तरीका भी अपनाया था। यानि सुधार कार्यक्रमों का एक राजनीतिक पहलू भी था, जिसने ही बाद में राजनीतिक चेतना का निर्माण किया।

मोटे तौर पर उन्नीसवीं सदी की अंतिम चौथाई तक आते- आते सुधार आन्दोलनों से निकली धारा तीन स्पष्ट धाराओं में विभाजित हो गयी। पहली धारा समाज सुधार और उपनिवेशवाद विरोधी चेतना के समुच्चय कापरिणाम थी। जिसने राष्ट्रवादी चेतना के निर्माण में अपनी ऊर्जा को खपाया। दूसरी धारा धार्मिक कट्टरपंथ की और बढती हुयी सांप्रदायिक चेतना में समाहित हो गयी। जिसका प्रतिनिधित्व आर्य समाज और अलीगढआन्दोलन करते हैं। तीसरी धारा जाति सम्बन्धी मुद्दों पर उपरोक्त दोनों प्रवृत्तियों से पृथक विकसित हो रही थी। जिसमें ज्योतिबा फूले, श्री नारायण गुरु आदि आते थे। यद्यपि अन्य धाराओं में भी जाती सम्बन्धी मुद्देप्रधान थे परन्तु इस प्रवृत्ति की दृष्टि अन्य आन्दोलनों से भिन्न थी। कुल मिलकर कहें तो, समाज सुधार आन्दोलन के भारतीय इतिहास में दूरगामी परिणाम हुए और इससे विकसित हुयी चेतना ने परवर्ती हर विचारऔर राजनीतिक आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

10.6. सारांश

इस प्रकार, सामाजिक- धार्मिक सुधार आन्दोलन औपनिवेशिक राज्य द्वारा उत्पन्न चुनौतियों पर भारतीय बौद्धिक वर्ग की प्रतिक्रिया थी। जिसने विभिन्न तरीकों से समाज के तत्कालीन रूढ़िवादी और पिछड़े सामाजिक ढाँचे को बदलने का प्रयास किया। जाति व्यवस्था, छुवाछूत,महिलाओं की अत्यंत दयनीय और गुलामों जैसी दशा, जाति व्यवस्था के अंतर्गत हो रहा शोषण, तमाम धार्मिक

आडम्बर, आधुनिक शिक्षा से दूरी और इस तरह के तमाम मुद्दे समाज सुधारकों द्वारा उठाये गए और उनके निस्तारण के प्रयास किये गए। इन समाज सुधार आन्दोलनों ने समाज में जिस चेतना का निर्माण किया उसने आधुनिक भारत के स्वरुप को काफी हद तक प्रभावित किया।

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चन्द्र, बिपन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष

चन्द्र, बिपन, आधुनिक भारत

बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक

10.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

Panikkar, K.N., 'Intellectual and Cultural History of Colonial India: Some Conceptual and Historiographical Questions' in S. Bhattacharya and Romila Thapar edited "Situating Indian History"

Panikkar, K.N., editor, Studies in History, Special Issue on 'Intellectual History of India', Volume 3, No. 1, January- June, 1987

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों की वैचारिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलनों पर प्रकाश डालिए?

इकाई ग्यारह

भू-राजस्व व्यवस्था एवं वन नीति

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 ब्रिटिश कालीन भू-राजस्व व्यवस्था के प्रकार
11.3.1 स्थायी बंदोबस्त
11.3.1.1 स्थानीय बंदोबस्त का प्रभाव/मूल्यांकन
11.3.1.2 स्थायी बंदोबस्त का क्षेत्र
11.3.2 रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त
11.3.2.1 रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त का प्रभाव
11.3.2.2 रैय्यतवाड़ी व्यवस्था का क्षेत्र
11.3.3 महालवाड़ी बंदोबस्त
11.3.3.1 महालवाड़ी व्यवस्था का प्रभाव
11 .4 समग्र भू-राजस्व व्यवस्था का मूल्यांकन/प्रभाव
11.4 स्वमूल्यांकित प्रश्न
11.5 सारांश
11.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
11.7 निबंधात्मक प्रश्न
11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के साथ ही भू-राजस्व बंदोबस्त का एक नया दौर प्रारंभ हुआ। भू-राजस्व प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। स्वाभाविक रूप से आप का सबसे बड़ा हिस्सा इससे से ही प्राप्त होता रहा है। भारत के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार करने के बाद कंपनी ने भू-राजस्व बंदोबस्त कायम करने का प्रयास किया और इस क्रम में वह विभिन्न प्रयोगों के दौर से गुजरा। भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये ये बंदोबस्त किये गये। इस बंदोबस्त में उपनिवेशवादी आवश्यकताओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। साथ ही यूरोप में प्रचलित बौद्धिक विचारधाराएं भी भूमि बंदोबस्त को लागू करने के क्रम में प्रभाव डाल रही थी। इस तरह ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था स्थानीय परिस्थितियो, उपनिवेशवादी आवश्यकताओं और यूरोप में प्रचलित विचारधाराओं के संयोग से उत्पन्न हुई। थी।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य ब्रिटिश कालीन भू-राजस्व व्यवस्था के गुण-दोषों से आपको अवगत कराना हैऋ साथ ही यह भी स्पष्ट करना है कि अंग्रेजों को इस भू-राजस्व व्यवस्था की आवश्यकता क्यों पड़ी? ब्रिटिश सत्ता, भू राजस्व की आप अपनी शक्ति की बदौलत लूट खसोट के जरिए भी प्राप्त कर सकती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इसके पीछे तीन कारण थे-

(1) इस प्रकार की लूट में लुटेरा लूट का माल अपने पास रख लेता है और सरकारी खजाने को इसका लाभ नहीं मिल पाता।

(2) इस प्रकार की गतिविधियों से या तो वह स्थान बिल्कुल कंगाल हो जाता है, या फिर लोग स्थान को छोड़कर चले जाते हैं।

(3) इस प्रकार की नीतियों से शोषण को लंबे समय तक बताए नहीं रखा जा सकता। यही कारण है कि किसी उपनिवेश से संसाधनों का दोहन लंबे समय तक तभी बनाया रखा जा सकता है जब वहाँ ऐसी व्यवस्था की जाए जो उपनिवेशवाद के दीर्घकालीन हित में हो। स्पष्टः ब्रिटिश उपनिवेशवाद का स्वरूप नादिरशाह या अहमदशाह अबदालीके शासन या आक्रमण के स्वरूप से भिन्न था।

11.3 ब्रिटिश कालीन भू-राजस्व व्यवस्था के प्रकार

11.3.1 स्थायी बंदोबस्त

स्थायी बंदोबस्त की संरचना तथा कार्य-विधि पर विचारधारा तथा दृष्टिकोण का प्रभाव माना जाता रहा है तथा ऐसा कहा जागा है कि यह ब्रिटिश अधिकारिक दृष्टिकोण में परिवर्तन का परिणाम थी। परीक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि विचारधारा तथा दृष्टिकोण के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः कार्नवालिस के आगमन से पूर्व 1770 के दशक में कंपनी के कुछ अधिकारी तथा टॉमस लॉ जैसे यूरोपीय चिंतकों ने इस बात पर बल देना आरंभ किया कि भू-राजस्व को स्थायी रूप से निश्चित किया जाना चाहिये। किंतु सक्ष्मतः देखने पर यह ज्ञात होता है कि विचारधारा व दृष्टिकोण की तुलना में अधिक निर्णायक भूमिका वित्तीय तथा आर्थिक कारक की रही। वस्तुतः बंगाल में स्थायी बंदोबस्त का विकास पिछले तीन दशकों के निरंतर प्रयोग एवं अनुभव का परिणाम था। इस काल में ब्रिटिश नीति का मुख्य बल भू-राजस्व की अधिकतम वसूली पर रहा था ताकि बंगाल के राजस्व से प्राप्त एक बड़ी रकम का निवेश वाणिज्य-व्यापार के लिये किया जा सके। जब कंपनी ने 1765 में बंगाल की दीवानी प्राप्त की तब कोई ऑफ डायरेक्टर्स ने कंपनी पर इस बात के लिये दबाव डाला कि कंपनी के निवेश को अधिकतम स्तर पर पहुँचाया जाना चाहिये।

किंतु, यह उम्मीद पूरी नहीं की जा सकी तथा कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की आशाओं पर पानी फिर गया। इस विफलता के लिये द्वैध शासन को उत्तरदायी माना गया। द्वैध शासन प्रणाली के तहत रशा खान को उप-नशीम के पद पर नियुक्त किया गया था तथा साथ ही वह दीवान के पद को भी सुशोभित करता था। इस प्रणाली के तहत भू-राजस्व की वसूली का अधिकार देशी अधिकारियों को पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण का अधिकार दिया गया। किंतु इन अधिकारियों के भ्रष्टाचार तथा स्थानीय परिस्थितियों के ज्ञान के अभाव के कारण बंगाल की कृषि व्यवस्था को गहरा धक्का लगा। यह 1769-70 में होने वाले बंगाल के अकाल का महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ। अतः 1771 में यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी तथा अगले वर्ष 1772 में वारेन हेस्टिंग्स ने पंचसाला योजना पर आधारित ‘फार्मिंग पद्धति की शुरुआत की इसके अंताति राजस्व की वसूली अब यूरोपीय कलेक्टर को दिया गया तथा फिर राजस्व वसूली का अधिकार नीलामी पद्धति के आधार पर आवंटित किया जाने जगा। किंतु यह पद्धति भी समस्या को सुलझाने में असफल रही।

इसी संकटपूर्ण स्थिति में भू-राजस्व व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के लिये 1784 में कार्नवालिस का आगमन हुआ। कार्नवालिस ने 1790 में भू-राजस्व में एक व्यवस्था को जन्म दिया जो ‘जमींदारी/ईस्तमराटी/स्थायी बंदोबस्त के नाम से जानी गयी। प्रारंभ में यह प्रबंधन 10 वर्षों के लिये किया गया परंतु 1793 में इसे ‘स्थीय बंदोबस्त में तब्दील कर दिया गया।

इस संबंध में एरिक स्टोक्स का कहना है कि 19वीं सदी के आरंभ में इंग्लैंड में बौद्धिक क्षेत्र पर उपयोगिताबादी, उदारवादी जैसी विचारधाराएँ छाई हुई थी जिसके फलस्वरूप 19वीं सदी के आरंभ में स्थायी बंदोबस्त को त्यागकर रैय्यतवाड़ी व महालवाड़ी व्यवस्था को अपनाना पड़ा। रंजीत गुहा स्थायी बंदोबस्त का आधार ब्रिटेन की वाणिज्यवादी विचारधारा तथा फ्रांसीसी विचारधारा में अच्छे और स्थिर समान का आधार संपत्ति की सुरक्षा में देखा गया। रंजीत गुहा के अनुसार इसी विचारधारा को फिलिप फ्रांसिस द्वारा 1776 में एक योजना के रूप में प्रस्तुत किया गया जिसमें इंग्लैंड के स्थायी न्भू-स्वामी वर्ग के अनुभव भी शामिल थे। कुल मिलाकर विद्वानों की आम राय है कि स्थायी बंदोबस्त को लाने के पीछे चाहे जो भी परिस्थितियाँ हो, लेकिन यह अधिकतम राजस्व की प्राप्ति के सिद्धांत पर ही प्रेरित था।

नये स्थायी बंदोबस्त के संबंध में दो मुख्य प्रश्न थे-

(1) लगान की अवधि कितनी होनी चाहिये?

(2) समझौता किसके साथ किया जाना चाहिये?

लगान की अवधि के प्रश्न पर ब्रिटिश नीति निर्धारकों व प्रशासनिक अधिकारियों में एक मत नहीं था, लेकिन बहुमत इस पक्ष में था कि इसे लंबी अवधि के लिये ही किया जाना चाहिए। मुख्य विवाद इस प्रश्न पर था कि समझौता किससे किया जाए? जमींदारों से या किसानों से। ब्रिटिश अधिकारी जॉन शोर जमींदारों के पक्ष में था क्योंकि उनका यह अधिकार वंशगत था वहीं दूसरी ओर गर्ल्स ग्रांट जैसे कुछ अधिकारी किसानों के पक्ष में थे। क्योंकि ग्रांट का मानना था कि समस्त

भूमि राज्य की है जमींदार कर संग्रहकर्ता से अधिक नहीं हैं, इसलिये जमींदारों को भूमि-स्वामित्व नहीं दिया जाना चाहिए। लार्ड कार्नवालिस, जो स्वयं एक जमींदार परिवार से संबंध रखता था, सर जॉन शोर के विचारों से सहमत था। स्वाभाविक रूप से लाखो किसानों के साथ बंदोबस्त करने के बजाय कुछ जमींदारो से बंदोबस्त कर राजस्व वसूलना अपेक्षाकृत सरल था। लंबे विचार विमर्श के बाद कार्नवालिस ने 1790 में 10 वर्षीय बंदोबस्त लागू किया। इसी बंदोबस्त को उसने 1793 में स्थायी बंदोबस्त में तब्दील कर दिया।

(1) जमींदार एवं भू-राजस्व संग्रकर्त्ताओं को जमीन का वास्तविक स्वामी बना दिया गया। उनके स्वामित्व के अधिकार को वंशानुगत और स्थानांतरणीय बना दिया गया।

(2) किसानों को अधीनस्थ रैयतों में तब्दील कर दिया गया और जमीन पर उनके दीर्घकालिक अधिकारों को छीन लिया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य प्रकार के पैतृक अधिकारो से भी वंचित होना पड़ा।

(3) इसके तहत किसान अपने उन अधिकारों से भी वंचित हो गये जो उन्हें परंपरा में मिले थे। जैसे-चारागाह भूमि, जंगल की भूमि, सिंचाई के लिये तालाब और नहरें, मछली पालन के लिये तालाब और पोखर तथा झोपड़ी डालने के लिये परती पड़ी जमीनों के उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

(4) इस व्यवस्था में भू-राजस्व की राशि स्थायी रूप से निर्धारित कर दी गई। इस निर्धारण के लिये 1790-91 के वर्ष में की गई वसूली को आधार बनाया गया। इसमें 10/11 भाग कंपनी का अंश था तथा 1/11 भाग जमींदार का अंश निर्धारित कर दिया गया।

(5) स्थायी बंदोबस्त में सरकार का अंश सदा के लिये निश्चित हो गया था। आमदनी बढ़ने पर वह जमींदारों के हिस्से में जाती थी। इस व्यवस्था के सुचारू-संचालन के लिये 1793 के रेग्यूलेशन के अनुसार जमींदारों को रैयती जल संपत्ति पर कब्जा करने का अधिकार दे दिया गया तथा आगे 1799 व 1812 में लाए गए बंगाल रेग्यूलेशन के आधार पर जमींदारों को रैयतों की अचल संपत्ति पर कब्जा करने का अधिकार दे दिया गया। दूसरी तरफ जमींदारों के विरुद्ध सरकार की स्थिति सुरक्षित करने के लिये तथा भू-राजस्व की वसूली को नियमित बनाए रखने के लिये 1794 में ‘सूर्यास्त कानून’ लाया गया। इस कानून के अनुसार अगर निश्चित तिथि को सूर्यास्त तक जमींदार भू-राजस्व की रकम को चुकता नहीं करता तो संबंधित जमींदार की पूरी जमींदारी नीलाम हो जाती थी।

(6) मालगुजारी का निर्धारण मनमाने तरीके से किया जाता था और इस क्रम में जमींदारों से कोई परामर्श नहीं लिया जाता था। परिणामस्वरूप इसकी राशि बहुत अधिक तय कर दी गयी। 1765-66 एवं 1713 के बीच मालगुजारी संबंधी मांग लगभग दो गुनी हो गयी।

11.3.1.1 स्थानीय बंदोबस्त का प्रभाव/मूल्यांकन

स्थायी बंदोबस्त के प्रभाव की परीक्षा की जाये तो इसके कुछ नकारात्मक पहलू सामने आते हैं तो कुछ सकारात्मक पहलू भी सामने आते हैं। भारतीय हित की दृष्टि से देखा जाये तो जमींदारों का संपत्ति पर पैतृक अधिकार होने से उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति मजबूत हुयी और इसने कालांतर में नये पढ़े लिखे वर्ग को जन्म दिया जो आगे चलकर ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों को उद्घाटिक कर रहा था।

इस व्यवस्था को ब्रिटिश हित की दृष्टि से देखा जाये तो सरकार को एक निश्चित आय की प्राप्ती हुयी और उत्पादन की कमी का राज्य की आय पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। इसके साथ-साथ एक समर्थक जमींदार वर्ग सामने आया जो 1857 के विद्रोह में सरकार के साथ रहा।

स्थायी बंदोबस्त का ग्रामीण समाज पर सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। भूमि का उपसामंतीकरण स्थायी बंदोबस्त की ही देन है। जमींदार और किसानों के बीच अनेक उप-सामंत पैदा हो गए जिससे भूमि-किराए का तेजी के साथ विकास हुआ जिसका मार किसानों पर पड़ा अतः किसानों का जीवन स्तर गिरता चला गया। अंततः इस बंदोबस्त के कारण पूरे क्षेत्र में गरीबी फैली।

अनुपस्थित जमींदारी व्यवस्था भी स्थायी बंदोबस्त की देन है। मालगुजारी की रकम अत्यधिक होने के कारण पुराने जमींदारों को उनकी जमीनों से वंचित किया जाने लगा उनकी जगह नए बिचौलिये वर्ग का उदय जिसमें अधिकतर ऐसे व्यापारी या बनिया थे जिनका उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना था उनका गांव से कोई सीधा संबंध नहीं था न ही उनकी दिलचस्पी उत्पादन बढ़ाने में थी।

स्थायी बंदोबस्त के प्रभाव का आकलन करते हुये हाल के कुछ दशकों में निरंतरता के तत्वों पर बहुत अधिक बल दिया जाने लगा तथा ऐसा स्थापित करने का प्रयास किया गया की स्थायी बंदोबस्त के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र में जो भी परिवर्तन आया वह महश ऊपरी ओर सतही या किंतु सूक्ष्म विश्लेषण के पश्चात परिवर्तन के तत्वों को अस्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है। वस्तुतः इसी बंदोबस्त ने ऊपरी स्तर पर सामंतवाद व निचले स्तर पर कृषि दासता को प्रोत्साहन दिया। स्थायी बंदोबस्त ने संपत्ति के संबंधों में परिवर्तन लाया पहली बार भूमि को एक वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया गया। इस बंदोबस्त के परिणामस्वरूप बंगाल का ग्रामीण समाज तीन वर्गों में बंट गया - जमींदार, किसान, मजदूर। यह तीन स्तरीय ढोंग इस बंदोबस्त से पूर्व बंगाली समाज में नहीं था। इसमें से प्रथम व तृतीय अंग्रेजी व्यवस्था की ही देन है।

स्थायी बंदोबस्त लाने के पीछे ब्रिटिश कंपनी के वित्तीय, प्रशासनिक, राजनीतिक व आर्थिक कारण थे। वित्तीय कारण संभवतः सर्वप्रथम था क्योंकि युद्ध के इस दौर में और अव्यवस्था के माहौल में

कंपनी आर्थिक सुरक्षा चाहती थी जो स्थायी बंदोबस्त से ही संभव था प्रशासनिक तौर पर इसकी आवश्यकता इसलिये पड़ी क्योंकि लाखों किसानों से राजस्व वसूलने के लिये वहुत अधिक प्रशासनिक अधिकारियों की आवश्यकता पड़ती जो काफी खर्चीली पड़ती। राजनीतिक कारक के रूप में यह इसलिये उपयोगी था क्योंकि 18वीं सदी के प्रारंभ में अनेक जनविद्रोह हो रहे थे और इस जनविद्रोह को रोकने में जमींदार तरंगरोध के रूप में कार्य कर रहे थे। 1857 के विद्रोह में भी जमींदारों का साथ उपयोगी रहा। आर्थिक रूप से कंपनी यह चाहती थी के राजस्व निर्धारित होने के बाद जमींदार प्रगतिशील जमींदार की भूमिका निभाएंगें जैसा ब्रिटिश जमींदारों ने किया था इससे वाणिज्य व व्यापार बढ़ेगा किंतु ऐसा हुआ नहीं।

कुल मिलाकर कार्नवालिस तथा कंपनी के ये सारे उद्देश्य आंशिक रूप से ही पूरे हुये। यह सही है कि सरकार को एक निश्चित रकम मिली किंतु इसका नकारात्मक पक्ष यह था कि जो रकम 1713 में निर्धारित की गई थी वही रकम प्राप्त होती रही कई वर्षों तक। अर्थात सरकार कृषि के विस्तार से होने वाले लाभ से वंचित रही। दूसरे, जमींदार भी प्रगतिशील जमींदार सिद्ध नहीं हुये उन्होंने कृषि विकास में रूचि नहीं ली, कृषि क्षेत्र में निवेश नहीं किया। सरकार को प्रशासनिक झंझटों से भी छुटकार नहीं मिला क्योंकि राजस्व की राशि अधिकतम होने के कारण कई जमींदारियाँ नीलाम होने लगी एवं प्रशासनिक अव्यवस्था ने जन्म ले लिया। यह बात सही है कि इस बंदोबस्त ने एक समर्थक जमींदार वर्ग को जन्म दिया जो 1857 में उपयोगी भी हुआ किंतु इस व्यवस्था में जमींदारों की शोषण मूलक नीति के कारण अधिसंख्य किसान ब्रिटिश शासन से अलग-थलग पड़ते चले गये जिसका परिणाम 19वीं व 20वीं सदी में जमींदारी क्षेत्र में होने वाले निरंतर आंदोलनों एवं विद्रोहों के रूप में दिखता है।

11.3.1.2 स्थायी बंदोबस्त का क्षेत्र

बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू किया गया था। यह समस्त भारत के 19 प्रतिशत क्षेत्र पर लागू किया।

11.3.2 रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त

जिस समय बंगाल में कार्नवालिस के अंतर्गत स्थायी बंदोबस्त की संरचना विकसित हो रही थी, उस समय मद्रास अनिश्चितता की स्थिति में था। मुख्य मुद्धा यह था कि मद्रास में भू-राजस्व के निर्धारण का आधार क्या हो? निर्धारण की अवधि क्या हो? तथा यह निर्धारण किसके साथ किया जाये? कार्नवालिस के पश्चात् मद्रास प्रेसीडेंसी में लार्ड वेलेशली तथा बोर्ड ऑफ कंट्रोल के सदस्य हेनरी डुंडस के द्वारा जमींदारी व्यवस्था के प्रसार का प्रयास विफल हो गया था क्योंकि मद्रास प्रेसीडेंसी में बंगाल के जमींदार वर्ग की तरह कोई स्पष्ट वर्ग नहीं था।

रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त का मूल आधार क्या था? इस संबंध में इतिहासकारों के बीच मतभेद है। ब्रिटिश प्रशासकों और विचारकों ने यूरोप में प्रचलित बौद्धिक विचारधारा को इस नीति का आधार बताया जो जैम्स मिल रिकार्डो और बेंथम के विचारधारा से प्रेरित था। इस संबंध में एरिक स्ट्रोक्स का मानना है कि 19वीं सदी के आरंभ मं इंग्लैंड के बौद्धिक वर्ग पर उपयोगितावादी, उदारवादी एवं लगान के सिद्धांत जैसी विचारधाराएँ शामिल थी। इन्हीं विचारधाराओं के संबंध में स्थायी बंदोबस्त की अपेक्षा एक नये बंदोबस्त को तरशीह दी गयी। इस व्यवस्था के प्रवर्तक मुनरों पहले लगान दर को नियंत्रित रखना चाहते थे बाद में उनका विचार बदल गया और भू-राजस्व बहुत ऊँचा रखा गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि रैय्यतवाड़ी व्यवस्था के विकास में विचारधारा तथा दृष्टिकोण की भूमिका रही किंतु सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि विचारधारा की तुलग में आर्थिक व वित्तीय कारक ज्यादा निर्णायक रहे। निरंतर युद्धों में उलझे होने के कारण मद्रास प्रेसीडेंसी को बेहतर राजस्व आधार की शरूरत थी जबकि जमींदारी व्यवस्था के विस्तार का अर्थ था सरकार का अंश कम हो जाना।

भारत में रैय्यतवाड़ी व्यवस्था अनेक प्रयोगों के दैर से गुजरकर सामने आया। मुनरो और रीड नामक दो ब्रिटिश अधिकारियों को मद्रास के नए जीते गए इलाके में प्रशासन संचालन हेतु भेजा गया। वे वहाँ जमींदारों से लगान वसूल करने के बजाए सीधे गाँवों से भू-राजस्व वसूलने लगे। उन्होंने किसानों और गाँव का अलग-अलग ब्यौरा प्राप्त करना शुरु किया, फिर खेतों का मूल्यांकन किया और प्रत्येक खेत की उत्पादकता को ध्यान में रखकर भू-राजस्व की एक राशि निर्धारित की गयी। निर्धारित राशि अदा न करने की स्थिति में किसान उस भूमि पर खेती नहीं कर सकते थे भले ही वह शमीन परती क्यों न रह जाए। इस प्रकार 'रैय्यतवाड़ी व्यवस्था' अस्तित्व में आयी। रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में प्रत्येक पंजीकृत किसान से रैय्ययत बंदोबस्त किया। इन क्षेत्रें में परती भूमि, बंजर भूमि, वन एवं सिंचाई को जमींदारों के बदले सरकार के अंतर्गत कर दिया गया। प्रत्येक किसान भू-राजस्व की अदायगी के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी था। अगर वे निश्चित तिथि को राजस्व नहीं चुकाते थे तो उनकी संपति नीलाम कर दी जाती थी। मुनरो ने राजस्व कुल उत्पादन का 1/3 या 2/5 निर्धारित किया था। यह इस नई व्यवस्था का सैद्धांतिक पक्ष था, लेकिन व्यावहारिक रूप में राजस्व आकलन अनुमान पर आधारित होता था। यह राशि इतनी अधिक होती थी कि किसान सामान्यतः इसे चुकाने में असमर्थ हो जाते थे।

भू-राजस्व संबंधि आरंभिक प्रयोंगों के पश्चात 1820 में मद्रास में रैय्यतवाड़ी व्यवस्था लागू की गई और इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये मुनरो को मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया। मुनरों का मानना था कि यह मूलतः भारतीय भू-व्यवस्था है जो भारतीय परिवेश के अनुकूल है। साथ ही इस व्यवस्था में कोई बिचौलिया नहीं होगा पूरा का पूरा राजस्व ब्रिटिश खजाने में जायेगा। उसका यह भी दावा था कि बढ़े हुये राजस्व पर जमींदारो के विपरीत ब्रिटिश सरकार का दावा होगा

जिससे राजकीय राजस्व में वृद्धि होगी। चूंकि यह बंदोबस्त किसानों के साथ था इसीलिये रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त कहा गया।

1820 के बाद यह व्यवस्था मद्रास के अधिकांश भागों में लागू की गई वह मुनरों की व्यवस्था से थोड़ी भिन्न था जहाँ मुनरों की व्यवस्था सर्वेक्षण व वर्गीकरण पर आधारित थी वहीं उसके बाद वाली व्यवस्था बिना सर्वेक्षण के कुल उत्पादन पर आधारित थी। यद्यपि रैय्यतों को खेतों को चुनने की स्वतंत्रता थी अर्थात वे कम लगान वाले खेतों को चुन सकते थे लेकिन व्यावहारिक रूप से उन्हें अधिक राजस्व वाली भूमि या परती भूमि पर खेती करने के लिये बाध्य किया जाता था। और इसके लिये ब्रिटिश अधिकारी दमन का अवैध तरीका भी अपनाते थे। किसानों के इस दमन का पता हमें 1854 में मद्रास यातना आयोग के रिपोर्ट से पता चलता है जिसके अनुसार मद्रास क्षेत्र में जितनी जमीन पर खेती की गई थी, उससे अधिक जमीन परती छोड़ दी गई थी। उदाहरण के लिये 1855 में मद्रास में जहाँ एक करोड़ 45 लाख एकड़ जमीन पर खेती की गई थी वहीं 1 करोड़ 80 लाख एकड़ जमीन परती छोड़ दी गई थी।

बंबई प्रेसीडेंसी में रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त का क्रियान्वयन मुनरों के शिष्य एलिफिन्सटन द्वारा किया गया। इस प्रेसीडेंसी के अंतर्गत गुजरात एवं पेशवा क्षेत्र शामिल थे। अर्थात लगभग संपूर्ण पश्चिमी भारत में परंपरागत व्यवस्था की जगह अब इस क्षेत्र में सीधे किसानों से राजस्व वसूल किया जाने लगा।

11.3.2.1 रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त का प्रभाव

(1) सैद्धांतिक दृष्टि से किसान स्वतंत्र स्थिति में क्योंकि भूमि पर उसका अधिकार था और सरकार से प्रत्यक्ष संबंध। किंतु व्यवहारिक दृष्टि किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ भू-राजस्व की अधिकतम दर होने से उसे साहूकारों से कर्ज लेना पड़ा। इस तरह वह ऋणग्रस्त हुआ और उसकी जमीन हाथ से निकलने लगी। अतः मालिक से मजदूर बन गया।

(2) इस व्यवस्था में महाजनी प्रथा का सर्वाधिक विकास हुआ।

(3) इस व्यवस्था में विभिन्न जमींदारों के बदले सरकार स्वयं एक बड़े जमींदार की भूमिका में आ गयी।

(4) इस व्यवस्था के अंतर्गत रैय्यतों को भूमि का मालिकाना हक दिया गया, जिसके द्वारा ये प्रत्यक्ष रूप से सीधे या व्यक्तिगत रूप से भू-राजस्व अदा करने के लिये उत्तरदायी थे।

11.3.2.2 रैय्यतवाड़ी व्यवस्था का क्षेत्र

यह व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 51 प्रतिशत भाग पर लागू की गई। मद्रास, बंबई के कुछ हिस्से, पूर्वी बंगाल, असम, कुर्ग पर लागू की गई।

11.3.3 महालवाड़ी बंदोबस्त

जमींदारी बंदोबस्त की व्यापक आलोचना के बाद 19वीं सदी के आरंभ में इस व्यवस्था के प्रति असंतोष उत्पन्न होने लगा। ब्रिटिश अर्थशास्त्री और ब्रिटिश अधिकारी इस बंदोबस्त का विकल्प तलाशने लगे। इस संबंध में एरिक स्टोक्स और एस.सी. गुप्ता जैसे इतिहासकारो ने महालवाड़ी बंदोबस्त के उदय में इंग्लैंड में उचित शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को श्रेय दिया है जो बाद में उपयोगितावादी अर्थव्यवस्था के रूप में स्वीकार की गई। साथ ही बेंथम, माल्थस और रिकार्डो के विचारों का प्रभाव भी इस नए बंदोबस्त पर पड़ा रिकार्डो ने अपनी पुस्तक में यह विचार व्यक्त किया है। कि लगान ऐसा होना चाहिये जिससे उत्पादन में वृद्धि की प्रेरणा हो किसानों का न्यूनतम शोषण हो। इस प्रकार कर लगाने पर उत्पादन एवं अर्थव्यवस्था पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। रिकार्डो शुद्ध अधिकशेष को भूमि लगाने के रूप में देखता है, जिसके एक हिस्से पर सरकार का अधिकार है। शास्त्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में इस बात की वकालत की गई थी कि किसानों के परिश्रम के मूल्य सहित कृषि पर जो खर्च हुआ था उसे निकालकर बची हुई आय पर भूमिकर निर्धारित किया जाए। इसका निर्धारण समय-समय पर किया जाए। इस तरह यह विचारधारा स्थायी बंदोबस्त वानी विचारधारा के विपरीत थी।

एरिक स्टोक्स की विचारधारा जिसमें ब्रिटिश शास्त्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांत और रिकार्डो के लगान सिद्धांत को महालवाड़ी व्यवस्था की उत्पत्ति का कारण माना गया है, का विरोध अनेक भारतीय इतिहासकारों द्वारा किया गया है। जिसमें प्रमुख है रवीन्द्र कुमार आशिया सिद्दीकी और इम्तियाश हुसैन। इन विद्वानों ने ब्रिटिश लगान नीति को समाजिक, आर्थिक परिवर्तनों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। उनका मानना है कि चूंकि उत्तर भारत की स्थानीय परिस्थितियाँ पूर्वी भारत से भिन्न थी, इसलिये एक नये बंदोबस्त की आवश्यकता थी। दूसरी ओर उत्तरी भारत पर नियंत्रण के समय तक उनकी उपनिवेशवादी आवश्यकताओं में परिवर्तन आ चुका था। इन्हीं सब कारकों को ध्यान में रखते हुये उत्तर भारत में 'महालवाड़ी बंदोबस्त लागू किया गया। महालवाड़ी बंदोबस्त की विशेषताः-

(1) इस बंदोबस्त में मालगुजारी का बंदोबस्त अलग-अलग गाँव (महाल) व जागीरों के आधार पर उन जागीरदारों या उन परिवारों के मुखिया के साथ किया गया जो सामूहिक रूप से उस गाँव या महाल का भू-स्वामी होने का दावा करते थे।

(2) चूंकि इस व्यवस्था में राजस्व की इकाई एक महाल (गाँव) थी इसलिये यह व्यवस्था महालवाड़ी व्यवस्था के नाम से जानी गयी। महालवाड़ी क्षेत्रें भी रैय्यलवाड़ी क्षेत्रें की तरह मालगुजारी का निर्धारण समय-समय पर पुनः किया गया।

(3) महालवाड़ी व्यवस्था में जहां जमींदार लगान एकत्र करते थे, वहाँ लगान कुल उत्पादन का 30 प्रतिशत रखा गया किंतु उन क्षेत्रें में जहाँ भूमि ग्राम समाज की सम्मिलित भूमि

थी वहाँ लगान कुल उत्पादन का 95 प्रतिशत तक तय किया। यह लगान बहुत अधिक था।

(4) महालवाड़ी बंदोबस्त कम से कम 10-12 वर्षों के लिये और अधिक से अधिक 20-25 वर्षों की अवधि के लिये किया गया। इसका उद्देश्य भविष्य में बढ़ने वाले लगान पर सरकार का हिस्सा बनाए रखना था।

(5) महालवाड़ी बंदोबस्त दूसरे ब्रिटिश भू-राजस्व बंदोबस्त से अपेक्षाकृत बेहतर था, क्योंकि इसमें भारतीय परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा गया था। लगान तय कराने के लिये इसमें पहली बार मानचित्र और पंजीयन का प्रयोग किया था। इस नई योजना को मार्टिन बर्ड व जेम्स टामसन के निजी प्रयत्नों से तैयार किया गया था।

11.3.3.1 महालवाड़ी व्यवस्था का प्रभाव

(1) महालवाड़ी व्यवस्था चूंकि जमींदारी व्यवस्था का ही संशोधित रूप था, इसलिये न चाहते हुये भी जमींदारी व्यवस्था की अनेक कमियाँ इसमें आ गई। जैसे-भूमि का कुछ विशेष हाथों में संग्रह। उदाहरण के लिये पंजाब के क्षेत्रों में बड़े-बड़े भू-स्वामियों के द्वारा किसानों का शोषण हुआ।

(2) भू-राजस्व की रकम काफी अधिक निर्धारित करने के कारण किसान धीरे-धीरे महाजनों व सूदरवोरों की चपेट में आ गए। उन्होंने बकाए ट्टण की वसूली शक्ति से की जिसमें ब्रिटिश शासन भी मददगार साबित हुआ। इससे किसान धीरे-धीरे भूमिहीन मजदूर बनते गए।

(3) महालवाड़ी बंदोबस्त वाले क्षेत्रों में कृषि का वाणिज्यीकरण तो हुआ लेकिन इस वाणिज्यीकरण का लाभ सामान्यतः बड़े किसानों व जमींदारों का मिला जबकि आप किसान वंचित रहे।

(4) यह बंदोबस्त मानचित्रों और पंजीयन पर आधारित था तथापि पूरा प्रशासन तंत्र के शोषण में लगा हुआ था।

(5) महालवाड़ी बंदोबस्त के क्षेत्र में आने वाले किसानों का शोषण जमींदारी और रैय्यतवाड़ी वाले क्षेत्रों के किसानों की तुलना में अपेक्षाकृत कम हुआ।

11.3.3.2 महालवाड़ी व्यवस्था के क्षेत्र

यह व्यवस्था संपूर्ण ब्रिटिश भारत के 30 प्रतिशत क्षेत्र पर लागू थी। जिसमें दक्कन के जिले, मध्यप्रांत पंजाब तथा उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रांत), आगरा एवं अवध शामिल थे।

11 .4 समग्र भू-राजस्व व्यवस्था का मूल्यांकन/प्रभाव

(1) ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों ने भूमि को खरीद-बिक्री के योग्य बना दिया फलतः ट्टण लेने की प्रवृत्ति में वृद्धि हुयी। मुकद्दमेबाजी का विकास हुआ, संयुक्त परिवार टूटे, ग्रामीण ट्टणग्रस्तता में वृद्धि हुयी, किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ फलतः वे निर्धन होते गये और कृषि का विकास अवरूद्ध हुआ फलतः उत्पादन में कमी आयी और भारतीय कृषि पिछड़ी कृषि बन गयी।

(2) कृषि क्षेत्र में नवीन वर्गों का उदय हुआ। जैसे जमींदार, साहूकार आदि। और इनका सरकार से गठबंधन बना और इन सबने मिलकर परंपरागत भारतीय कृषि में परिवर्तन कर दिया। अब परंपरागत जमींदार - किसान - साहूकार संबंध मधुर नहीं रहे तनावपूर्ण हो गये।

(3) अत्यधिक भू-राजस्व के कारण कृषकों को नगदी फसल उगाने पर बाध्य होना पड़ा फलतः खाद्यान्न उत्पादन में कमी आयी और अकालों की बारंबारता बढ़ी।

(4) कुल मिलाकर ब्रिटिश भू-राजस्व नीति ने भारतीय गांवों को प्रतिफल रूप से प्रभावित किया। चूँकि भू-राजस्व नीति का एकमात्र लक्ष्य अधिकतम राजस्व प्राप्त करना या जिससे ब्रिटिश हित पूरा हो सके।

अतः भू-राजस्व नीतियों की भिन्नता के बावजूद कृषकों निर्धनीकरण हुआ। चूँकि भारत गांवों में बसता था और गांवों में किसानों के निर्धनीकरण से गांव तो निर्धन हुये ही भारत भी निर्धन हुआ।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नलिखित पर प्रकाश डाले-

1. स्थायी/जमींदारी बंदोबस्त
2. स्थायी/जमींदारी का प्रभाव
3. रैयतवाड़ी बंदोबस्त
4. रैयतवाड़ी बंदोबस्त का प्रभाव
5. महलवाड़ी बंदोबस्त
6. महलवाड़ी बंदोबस्त का प्रभाव

11.5 सारांश

भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के साथ ही राजस्व व्यवस्था का एक नया दौर आरंभ हुआ। यह व्यवस्था यूरोप में प्रचलित विचारधाराओं, उपनिवेशवादी आवश्यकताओं और स्थानीय परिस्थितियों के समन्वय का परिणाम था। इस संबंध में विद्वानों की आम राय है कि ये बंदोबस्त अधिकतम राजस्व की प्राप्ति से प्रेरित था।

ब्रिटिश भारत के अलग-अलग भागों में अलग-अलग बंदोबस्त किये गये। पूर्वी भारत, जो कुल ब्रिटिश भारत का 19 प्रतिशत था, में स्थायी बंदोबस्त या जमींदारी बंदोबस्त लाया गया। यह

बंदोबस्त जमींदारो से किया गया और लगान की राशि हमेशा के लिए निश्चित कर दिया गया। दक्षिणी और पश्चिमी भारत जो कुल ब्रिटिश क्षेत्र का 51 प्रतिशत था, में रैय्यतबाड़ी बंदोबस्त लाया गया। यह बंदोबस्त रैयतो के साथ किया गया जिसमें समय-समय पर लगान के पुर्ननिर्धारण का प्रावधन था। उत्तरी भारत, जो कुल ब्रिटिश क्षेत्र का 30 प्रतिशत था, में महलवाड़ी बंदोबस्त लाया गया। यह बंदोबस्त महल (गांव) के प्रधान के साथ किया गया तथा इसमें भी लगान के पुर्ननिर्धारण का प्रावधान था।

भूमि बंदोबस्त का भारतीय समाज पर निर्णायक प्रभाव पड़ा। स्थायी बंदोबस्त ने परंपरागत ग्रामीण समाज के ढाँचे को बदल दिया। जमींदारो को भू-स्वामित्व दिये जाने के कारण किसानों का अधिकतम् शोषण हुआ। भूमि के उपसामंतीकरण का महाजन और सूदरवारो ने लाभ उठाया जिससे ग्रामीण ऋणग्रस्तता और ग्रामीण गरीबी फैली। रैय्यतवाड़ी और महलवाड़ी क्षेत्रों में बड़े-बड़े भूस्वामी ही जमींदारो की तरह व्यवहार करने लगे जिससे किसान भूमिहीन मजदूर में परिवर्तित होते चले गये। अंततः भारतीय किसान गरीबी के दुःश्चक्र में फंस गये।

11.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

देखिये

1. 11.3.1 स्थायी बंदोबस्त
2. 11.3.1 स्थायी बंदोबस्त का प्रभाव
3. 11.3.2 रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त
4. 11.3.2 रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त का प्रभाव
5. 11.3.3 महल वाड़ी बंदोबस्त
6. 11.3.3 महलवाड़ी बंदोबस्त का प्रभाव

11.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
2. ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था का भारतीय समाज पर पड़े प्रभाव की समीक्षा करें
3. स्थायी बंदोबस्त के गुण-दोष पर प्रकाश डालें।

11.8 संदर्भ ग्रंथ

*** David Rechards**

‘On the Principles of Political Economy and Taxation’, John Murray, London, 1817.

*** James Mill**

‘The History of British India’, Cradock and joy, Baldwin, London, (first edition), 1818.

*** Ramkrishna Mukherjee**

‘The Dynamics of a Rural Society : A study of the Economic Structure in Bengal Village’, Akademic – Verlag, Berlin, 1957.

*** Ranajit Guha**

‘A Rule of Property for Bingal : an essay on the idea of permanent settlement’, Mouton & Co.,Paris, 1963, New edition Duke University Press.

***Robert Eric Frykenberg**

‘Land control and Social Structure in Indian History,’ Madison, 1969, New Delhi 1978 Madison: University of Wisconsin Press, 1969.‘Land Control and Social structure in Indian History’Manohar, New Delhi, 1978.

***Rajat and Ratna Ray**

‘Dynamics of Continuity in Rural Bengal under the British Emporium : A Study of Quasi-Stable Equilibrium in Underdeveloped Societies in a Changing world’, Indian Economic & Social History Review, New Delhi, April, 1973.

*** Dharma Kumar**

‘Land ownership and inequality in Madras Presidency’, IESHR, 12(2), New Delhi, 1975.

*** David Arnold**

‘Police, Power Colonial Rule in Madrass’, (1859-1947),
Oxford University Press, New Delhi, 1986.

ईकाई बारह

वाणिज्यीकरण, ऋणग्रस्तता एवं अकाल

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 कृषि के वाणिज्यीकरण का क्षेत्रीय वितरण

12.4 वाणिज्यीकृत फसलें

12.4.1 सिल्क अथवा रेशम

12.4.2 चाय

12.4.3 अफीम

12.4.4 नील

12.4.5 गन्ना

12.4.6 कपास

12.4.7 जूट

12.5 कृषि के वाणिज्यीकरण की सीमाएं

12.6 कृषि के वाणिज्यीकरण का प्रभाव

12.7 भारतीय वाणिज्यीकरण की फ्रांसिसी वाणिज्यीकरण से तुलना

12.8 ऋणग्रस्तता

12.8.1 ऋणग्रस्तता के कारण

12.8.2 ऋणग्रस्तता का प्रभाव

12.9 अकाल

12.9.1 अकाल के लिये उत्तरदायी कारण

12.9.2 अकाल का प्रभाव

12.9.3 अंग्रेजों की अकाल नीति

12.9.4 ब्रिटिश अकाल नीति का मूल्यांकन

12.10 मूल्यांकन

12.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न

12.12 सारांश

12.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.15 संदर्भ ग्रंथ

12.1 प्रस्तावना

कृषि के वाणिज्यीकरण से हमारा तात्पर्य ब्रिटिश काल में नगदी फसलों के उत्पादन और वितरण से है। वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में फसलों का उत्पादन बाजार को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसमें खाद्यान फसलों के बजाए नगदी फसलों के उत्पादन और विनियम पर जोर दिया जाता है। भारत के संदर्भ में वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में मोटे तौर पर चार बातें शामिल होती हैं-

(1) नगदी फसलों का उत्पादन

(2) कृषि अधिशेष में वृद्धि

(3) ग्रामीण समृद्धि

(4) कृषकों के स्तर में बढ़ता विभेद

उपनिवेशवाद जो असमान आर्थिक व राजनीतिक संबंधों पर आधारित होता है, का अपना एक जटिल अर्थशास्त्र है और यह वाणिज्यीकरण उसी जटिल अर्थशास्त्र का एक रूप है। भारत में भी वाणिज्यीकरण इसी प्रक्रिया के तहत आया था। यही वजह है कि यह प्रक्रिया स्वतः स्फूर्त न होकर कृत्रिम और थोपी हुई थी। स्वाभाविक रूप से यह वाणिज्यीकरण अपनी स्वाभाविक गति में नही आया। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उपनिवेश्वाद के अंतर्गत यह प्रक्रिया कोई नई थी लेकिन मध्यकालीन भारत में जो वाणिज्यीकरण हुआ था वह स्वतः स्फूर्त था और भारतीय अर्थव्यवस्था की अपनी शरूरतों के अनुसार उपजा था।

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय कृषि-उत्पाद विश्व बाजार की मांग से कम प्रभावित होते थे। आमतौर पर यह भारतीय बाजार को ध्यान में रखकर उत्पादित होता था। इसके बावजूद भारतीयों के उत्पादों की विदेशों में काफी मांग थी, दूसरी ओर भारतीय बाजार में विदेशी उत्पादों की मांग अपेक्षाकृत कम थी। इससे व्यापार-संतुलन हमेशा भारत के पक्ष में होता था। ईस्ट-इंडिया कंपनी जो मूलतः एक व्यापारिक कंपनी थी और जिसका मुख्य उद्देश्य अधिकतम मुनाफ़ा कमाना था, ने पूर्वी व्यापार पर एकाधिकार करने का प्रयास किया। इसलिये उसने आरंभ में उन्हीं भारतीय वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित किया जिसकी ब्रिटेन सहित यूरोप में काफी मांग थी लेकिन दूसरी ओर भारत में ब्रिटिश वस्तुओं की मांग कम थी जिसके कारण कंपनी को भारतीय उत्पाद खरीदने के लिये बुलियन देना पड़ता था।

जब **18**वीं सदी के उत्तरार्द्ध में **1770** के दशक में ब्रिटेन में औद्योगीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। इस औद्योगिकरण में सबसे अधिक बल सूती वस्त्र उद्योग पर ही दिया गया। अतः ब्रिटेन के उद्योगपतियों और पूंजीपतियों ने ब्रिटिश संसद पर वह दबाव डाला कि वह कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दे ताकि अपने उत्पाद भारतीय बाजार में ला सके। इसी दबाव के मद्देनशर कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। **1813** में व्यापारिक एकाधिकार समाप्त होने के पश्चात

कंपनी ने अपना ध्यान कृषि उत्पादों के निर्यात पर केंद्रित किया। इसके पीछे प्रमुख कारण इस प्रकार थे।

(1) कृषि उत्पादों की मांग ब्रिटेन में अत्यधिक थी क्योंकि वे औद्योगीकरण में कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाये जाते थे।

(2) कृषि उत्पादों की ब्रिटेन में कोई व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता नहीं थी, जिससे भविष्य में इस पर प्रतिबंध लगाया जा सकता।

(3) विश्व व्यापी औद्योगीकरण के इस दौर में कृषि उत्पादों की विश्व बाजार में काफी मांग थी।

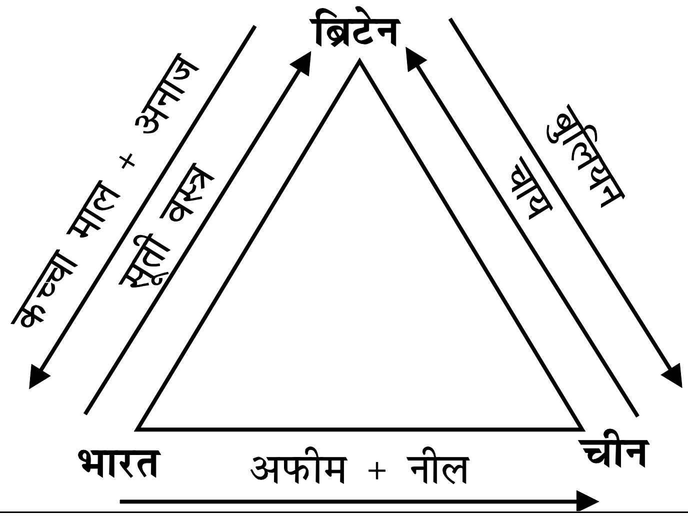

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में वाणिज्यीकरण तथा उसके विभिन्न आयामों से आपको अवगत कराया गया। है। कंपनी की रूचि नियंत्रित वाणिज्यीकरण में थी ताकि चीनी बाजार पर नियत्रण कायम किया जा सके। ब्रिटेन की यह नीति आगे भी जारी रही। जब अमेरिका में गृहयुद्ध (**1860** के दशक में) छिड़ा तो भारत में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित किया गया ताकि बाशार की मांग की पूर्ति की जा सके लेकिन ज्यों ही यह गृहयुद्ध समाप्त हुओ प्रोत्साहन की यह नीति वापस ले ली गई और कपास का आयात मेरिका से किया जाने लगा। दूसरे शब्दों में वाणिज्यीकरण विदेशी बाजार की मांग के अनुरूप किया गया न कि भारतीय बाजार की मांग के अनुरूप। दूसरे शब्दों में वाणिज्यीकरण की यह संपूर्ण प्रक्रिया स्वतः स्फूर्त न होकर उपनिवेशवादी प्रक्रिया का एक हिस्सा मात्र थी।

12.3 कृषि के वाणिज्यीकरण का क्षेत्रीय वितरण

कृषि के वाणिज्यीकरण में सबसे पहले पूर्वी क्षेत्र से पहल की गई और इसका सीधा संबंध पूर्वी भारत में स्थापित ब्रिटिश व्यापारिक तंत्र से था। इस काल में इस सेत्र में नील, रेशम और सीमित मात्रा में अफीम मुख्य नगदी फसल थी। बाद में चाय और कॉफी प्रमुख नगदी फसलें बन गइ। यही वह समय था जब बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा और उसकी काफी बड़ी जनसंख्या इसमें नष्ट हो गयी। इस संबंध में विद्वानों का मानना है कि नगदी फसलों के उत्पादन पर जोर देने के कारण खाद्यान फसलों की कमी हो गयी जिससे बंगाल अकाल की चपेट में आ गया।

यहाँ प्रश्न उठता है कि पूर्वी भारत में होने वाले इस वाणिज्यीकरण के लिये किसने आर्थिक सहायता प्रदान की। इस संबंध में इतिहासकार विनय-भूषण चौधरी का मानना है कि वैसे तो जमींदार वर्ग को परजीवी माना गया है और इस वाणिज्यीकरण का श्रेय छोटे किसानों को दिया गया है लेकिन यह तथ्य आंशिक रूप से ही सत्य है। यह सही है कि छोटे किसानों भूमिका कृषि-क्षेत्र के विस्तार में थी, तथापि वाणिज्यीकरण की वास्तविक प्रेरणा भारतीय जमींदारों और यूरोपीय बागान मालिकों से मिल रही थी, जो स्थायी बंदोबस्त के बाद बड़े भू-आंशिक छूट देकर इस प्रक्रिया को बढ़ावा दिया।

पश्चिम भारत में राजनीतिक एवं जलवायु संबंधी कारकों ने वाणिज्यीकरण के लिये आधार तैयार किया। रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त के अंतर्गत रैय्यतों को कानूनी सुरक्षा तो मिली लेकिन अत्यधिक भू-राजस्व के कारण वे नगदी फसलों के उत्पादन के लिये बाध्य हुए। यही वशह है कि **19**वीं सदी में गुजरात में तंबाकू का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा। इसी प्रकार चीन में अफीम की मांग को देखते हुए पश्चिम भारत विशेषक महाराष्ट्र एवं गुजरात के क्षेत्रों में कपास का उत्पादन काफी मात्रा में होने लगा। वस्तुतः काली मिट्टी वाला यह क्षेत्र कपास के उत्पादन के लिये उपयुक्त था। साथ ही समुद्री तट होने के कारण जो नमी इस क्षेत्र में थी उससे धागे टूटते नहीं थे। **1860** के दशक में अमेरीकी गृह युद्ध के कारण भारतीय कपास की विश्व बाजार में मांग अत्यधिक बढ़ गई। इसके कारण पश्चिम भारत में कपास का उत्पादन व्यापक पैमाने पर हुआ।

दक्षिण भारत की स्थिति पूर्वी तथा पश्चिमी भारत से अलग थी। वहाँ की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अन्य क्षेत्रों से अलग थी। यहाँ बड़े भूमिपतियों का अभाव भा और यातायात के साधन उन्नत अवस्था में नहीं थे। इसलिये इस क्षेत्र में कृषि के वाणिज्यीकरण में कोई नवीनता देखने को नहीं मिलती। यहां पर कंपनी ने मुख्य रूप से पहले से चले आ रहे मसालों के व्यापार पर अपना ध्यान केंद्रित रखा।

उत्तर-भारत की तस्वीर दक्षिण भारत से अलग थी। गंगा के किनारे व्यापार का अत्यधिक विकास हुआ था जो उस क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण पहलू था। गंगा के किनारे व्यापारिक मार्गों का विकास हो चुका था। वहीं दूसरी ओर सरकार के प्रयास से कानून और व्यवस्था तथा संचार के साधनों का भी विकास हुआ था। इस अनुकूल परिस्थिति में यूरोपीय और भारतीय उद्यमियों ने भूमि और कृषि में

निवेश करना प्रारंभ कर दिया। इस निवेश से संबंधित सबसे बड़ी विडंबना यह रही कि उन्होंने उत्पादन पद्धति में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया। इससे इस क्षेत्र में वाणिज्यीकरण तो हुआ लेकिन उसका लाभ भारतीय किसानों व उत्पादकों को नहीं मिल पाया। सीमित मात्रा में बंगाल व बिहार के क्षेत्रों में अफीम का उत्पादन आरंभ करवाया गया ताकि चीनी बाजार की मांग की पूर्ति की जा सके। इसी प्रकार पूर्वी बंगाल में जूट के उत्पादन को बढ़ावा दिया गया।

वाणिज्यीकरण की इस संपूर्ण प्रक्रिया में यूरोपीय निवेशकों ने निःसंदेह लाभ के सबसे बड़े हिस्से पर अपना कब्जा जमा लिया तथापि सीमित मात्रा में ही भारतीय किसानों और उत्पादकों को भी इससे लाभ प्राप्त हुआ। इस लाभ से जो आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ उसने सामाजिक विभेदीकरण को बढ़ावा दिया। यद्यपि भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में वाणिज्यीकरण का स्वरूप अलग-अलग रहा तथापि इस वाणिज्यीकरण का सामान्य स्वरूप यह था कि यह स्वतः स्फूर्त न होकर औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के दबाव में लाया गया था।

12.4 वाणिज्यीकृत फसलें

ब्रिटिश काल में जिन प्रमुख वाणिज्यिक फसलों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया, वे निम्नलिखित है।

12.4.1 सिल्क अथवा रेशम

ईस्ट-इंडिया कंपनी ने आरंभ से ही सिल्क के उत्पादन को प्रोत्साहित किया। **1770** ई. के बाद से ही निर्देशक-मंडल का यह मानना था कि ब्रिटेन में उपयोग होने वाली सिल्क भारत से आयात की जानी चाहिये इसलिये ब्रिटेन से सिल्क विशेषज्ञों को भारत में इसके उत्पादन की पद्धति में सुधार लाने के लिये भेजा गया। इस कार्य का सिल्क उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। इस क्रम मं बिहार में मलबरी सिल्क के उत्पादन में बृद्धि हुयी। लेकिन **19**वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इसके उत्पादन में कमी आई। इसके बावजूद ब्रिटिश काल में वाणिज्यीकरण से न सिर्फ सिल्क उत्पादकों को मुनाफा हुआ वरण् उन्हें विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ने का मौका भी मिला।

12.4.2 चाय

चीन से होने वाले व्यापार में जब विभिन्न राजनीतिक कारणों से गतिरोध पैदा होतने लगा तो कंपनी ने इसका विकल्प तलाशने का प्रयास किया। ब्रिटेन में चाय की मांग को देखते हुए असम और उत्तरी बंगाल में चाय का उत्पादन को न सिर्फ प्रोत्साहित किया गया वरन् निवेशकों द्वारा इस व्यवसाय में काफी मात्रा में पूंजी निवेश की गई। इसके लिये अनुबंधित मजदूरों की व्यवस्था की गई, जिसकी स्थिति एक प्रकार से दासों के समान थी। **1830** के बाद चाय के उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि

होती गयी। **1840** के दशक में इसमें काफी वृद्धि हुयी। **1850** और **60** के दशक में भारतीय उत्पादन उस स्तर पर पहुँच गया जहाँ इसका निर्यात सफलतापूर्वक किया जा सकता था।
चूँकि उस समय भारत में चाय की मांग अपेक्षाकृत कम थी इसलिये अधिकाँश उत्पादनों को विदेशों में निर्यात कर दिया जाता था। चाय के उत्पादन में लगभग सभी पूंजी ब्रिटिश निवेशकों द्वारा लगायी गयी थी, इसलिये लगभग पूरा ही लाभ ब्रिटिश निवेशकों को ही मिला। विदेशों में चाय के निर्यात का यह सिलसिला ब्रिटिश शासनकाल के अंत तक जारी रहा। कृषि के वाणिज्यीकरण में चाय एक मात्र ऐसा उत्पादन है जिसमें भारी मात्रा में ब्रिटिश पूंजी का निवेश किया गया।

12.4.3 अफीम

चाय के विपरीत इसका उत्पादन मजदूरों के द्वारा नहीं बल्कि छोटे किसानों के द्वारा किया गया। यह मुख्य रूप से मालवा के क्षेत्रों और गौण रूप से पूर्वी क्षेत्रों में उगायी जाती थी। चीन के साथ ब्रिटिश व्यापार को संतुलित करने के लिये कंपनी को अफीम की आवश्यकता थी क्योंकि चीन में अफीम की अत्यधिक मांग थी। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर कंपनी ने भारत में न सिर्फ अफीम के उत्पादन को प्रोत्साहित किया बल्कि उसके उत्पादन व वितरण को भी निंत्रित करने का प्रयास किया।
वारेन हेस्टिंग्स ने **1773** में अफीम के व्यापार पर सरकारी नियंत्रण लाने का प्रयास किया, क्योंकि वह उसके उत्पादन व वितरण पर नियंत्रण प्राप्त कर अफीम के मूल्य को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में गिरने नहीं देना चाहता था और इस ऊँचे मूल्य की बदौलत चीनी व्यापार को संतुलित करना चाहता था। स्वभाविक रूप से इससे व्यापार संतुलन ब्रिटेन पक्ष में हो गया। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि स्वयं ब्रिटेन में अफीम के उत्पादन और वितरण पर प्रतिबंध लगा हुआ था तथापि ब्रिटिशवासी भारत में इसका उत्पादन कर रहे थे और चीन में इसका व्यापार कर रहे थे। इस तरह अफीम का उत्पादन भी भारतीय बाजार के बजाय अंतर्राष्ट्रीय बाजार के अनुरूप विकसित किया गया था।

12.4.4 नील

प्रारंभिक दौर में ब्रिटेन में नील का आपात कैरीबियन देशों से की जाती थी जो ब्रिटिश कपड़ा उद्योग में रंगाई के काम में आता था लेकिन जब कैरिबियाई देशों से आपूर्ति में कमी आई तो इसका विकल्प तलाशा जाने लगा। परिणामतः **1709** के बाद भारत में नील का व्यावसायिक उत्पादन किया जाने लगा। **1825** तक आते-आते नील भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में एक प्रमुख वस्तु बन गयी। चूंकि नील का उत्पादन एक लंबी प्रक्रिया के तहत होता था इसलिये उसे ब्रिटिश संरक्षको की आवश्यकता थी, यही कारण है कि नील का उत्पादन तो भारतीय किसानों द्वारा किया जाता रहा लेकिन उसमें निवेश ब्रिटिशवासियों द्वारा किया जाता रहा।

12.4.5 गन्ना

यह भारतीय किसानों की एक परंपरागत फसल थी। **1830** के दशक के बाद नील के उत्पादन में प्रौद्योगिकी का विकास होने लगा था। अतः इस कमी की भरपाई के लिये गन्ने के उत्पादन को प्रोत्साहित किया गया क्योंकि ब्रिटेन में चीनी की काफी मांग थी। कंपनी ने गन्ने के उत्पादन को न केवल प्रोत्साहित किया बल्कि चीनी के निर्यातकों को ब्रिटेन में काफी कम चुंगी देनी पड़ती थी। परिणामस्वरूप उ.प्र. और उ. बिहार में व्यापक पैमाने पर गन्ने की खेती की जाती थी।

12.4.6 कपास

जिस तरह पूर्वी भारत में नील एक प्रमुख वाणिज्यिक फसल थी उसी तरह पश्चिमी भारत में कपास एक प्रमुख वाणिज्यिक फसल थी। ब्रिटेन में कपास की अत्यधिक मांग को देखते हुए भारत में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाने लगा। काली मिट्टी वाला क्षेत्र**,** 'जो कपास के उत्पादन के लिये उपयुक्त है'**,** के क्षेत्रों में इसके उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया। इन क्षेत्रों में कपास के उत्पादन का यह प्रयास **1770** के दशक से ही प्रारंभ हो गय था लेकिन इसमें तेजी **19**वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में आई।

12.4.7 जूट

ब्रिटिश शासन के आरंभिकि काल में जूट रूस से आयात किया जाता था लेकिन इस प्रक्रिया में बाधा तब पड़ी जब दोनों देशों के बीच क्रीमिया का युद्ध **(1853-56)** लड़ा गया। परिणामस्वरूप रूसी जूट की जगह भारतीय जूट के आयात के लिये भारत में जूट के उत्पादन को बढ़ावा दिया गया। इसका उत्पादन मुख्य रूप से बंगाल के क्षेत्रों में हुआ। दूसरे फसलों की तरह इसमें कंपनी को भारतीय किसानों पर कोई विशेष दबाव नहीं डालना पड़ा क्योंकि बंगाल के किसानों ने स्वयं ही इसके उत्पादन को अपना लिया। इसकी मुख्य वजह यह थी कि ये किसान जूट के विश्व-बाजार से जुड़कर मुनाफा कमाना चाहते थे। इस समय बंगाल में जूट का उत्पादन चावल से भी अधिक होता था।

12.5 कृषि के वाणिज्यिकरण की सीमाएँ

भारत में औपनिवेशिक काल में जो वाणिज्यीकरण हुआ उसकी कुछ अपनी सीमाएँ थी जो निम्नलिखित हैं-

(1) भारतीय कृषि का वाणिज्यीकरण स्वतः स्फूर्त न होकर औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के दबाव में लाया गया था।

(2) वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में निवेश मुख्यतः ब्रिटिशों द्वारा किया गया था इसलिये अधिकांश मुनाफे पर भी इन्ही निवेशकों का नियंत्रण हो गया।

(3) वाणिज्यीकरण की प्रेरणा चूंकि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था से मिल रही थी इसलिये वाणिज्यीकरण की दशा और दिशा ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की ओर रही।

(4) वाणिज्यीकरण में नगदी फसलों पर तो जोर दिया गया, लेकिन खाद्यान फसलों को इससे बाहर रखा गया। भारत में बार-बार पड़ने वाले अकालों का संभवतः यही प्रमुख कारण था।

(5) वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया के कारण मोटे अनाजों का उत्पादन बाधित हुआ क्योंकि आर्थिक दृष्टि से ये लाभदायक नहीं थे। लेकिन दूसरी ओर आम भारतीय या गरीब भारतीय का मुख्य भोजन था। इससे इनका जीवन प्रभावित हुआ।

(6) भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था से तो जुड़ गयी लेकिन इससे संबंधित अधिसंरचना का विकास नहीं हो सका। इस अधिसंरचा पर ब्रिटिश निवेशकों का ही दबदबा रहा।

(7) बैंकिंग कंपनियाँ, बीमा कंपनी, आयात-निर्यात एवं जहाजरानी उद्योग पर ब्रिटिश निवेशकों का नियंत्रण था जिससे मुनाफे का एक बहुत बड़ा हिस्सा इनके पास चला गया।

(8) भारत में वाणिज्यीकरण तो हुआ लेकिन इसी के साथ भूमि बाजार और मजदूर-बाजार का विकास नहीं हो सका।

(9) वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में भारतीय किसानों का व्यापक पैमाने पर शोषण किया जाने लगा। इस शोषण ने ग्रामिण गरीबी और ग्रामीण गरीबी में ग्रामीण ट्टणग्रस्तता को जन्म दिया। यह ग्रामीण ट्टणग्रस्तता भारतीय समाज की एक प्रमुख समस्या बनकर उभरी। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'गोदान' में इसका जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है।

(10) आमतौर पर वाणिज्यीकरण औद्योगिक विकास का आधार बनता है लेकिन भारतीय वाणिज्यीकरण भारतीय उद्योगों के लिये वह आधार तैयार नहीं कर पाया, जिसकी इससे अपेक्षा थी।

(11) वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया से उत्पादन एवं निर्यात तो बढ़ा लेकिन उत्पादन पद्धति एवं उत्पादन संगठन में बदलाव नहीं आया। इसकी मुख्य वजह यह थी कि यह वाणिज्यीकरण भारतीय अर्थव्यवस्था के बजाय ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुरूप उपजा था।

12.6 कृषि के वाणिज्यीकरण का प्रभाव/परिणाम

कृषि के वाणिज्यीकरण का भारतीय अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, लेकिन इसके प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। कुछ प्रभावितनिम्न हैं-

(1) भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में पहली बार पूंजीवादी तथ्यों का प्रवेश हुआ।

(2) भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पहली बार पूंजी ने सक्रिय भूमिका निभाई।

(3) इससे उत्पादन-अधिशेष की संभावना बढ़ी।

(4) पहली बार भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था विश्व-अर्थव्यवस्था से जुड़ी अर्थात उत्पादन विश्व बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए किया गया।

(5) वाणिज्यीकरण के फलस्वरूप कुछ क्षेत्रों और लोगों में समृद्धि आई जिससे आर्थिक विभेदीकरण पैदा हुआ।

(6) यह आर्थिक विभेदीकरण सामाजिक विभेदीकरण का कारण बना। वर्ण और जाति पर आधारित इस भारतीय समाज में अब वर्ग के आधार पर भी विभेदीकरण हुआ।

(7) स्वनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था अखिल भारतीय अर्थव्यवस्था में तब्दील हो गयी।

(8) मुद्रा अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

12.7 भारतीय वाणिज्यीकरण की फ्रांसिसी वाणिज्यीकरण से तुलना

भारतीय वाणिज्यीकरण की तुलना फ्रांस में हुए वाणिज्यीकरण से की जा सकती है। यद्यपि दोनों ही देशों में इसकी परिस्थितियाँ अलग-अलग थी, तथापि कुछ समानता के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। यदि फ्रांसिसी वाणिज्यीकरण की बात हम करें तो पाते हैं कि फ्रांसिसी **(1789)** क्रांति के पश्चात प्रफांस छोटे-छोटे किसानों का देश बन गया था। इससे जहाँ फ्रांस में सामाजिक समानता आई, वहीं दूसरी ओर बड़े फार्म हाउस या भूखंडों के अभाव के करण वहाँ ब्रिटेन की तरह बड़ी मात्रा मं पूंजी का निवेश संभव नहीं हो सका। इसके कारण प्रफांस के वाणिज्यीकरण का वह स्तर नहीं आ पाया जो ब्रिटेन में वाणिज्यीकरण के पश्चात् आया था। यही वजह है कि औद्योगिक क्रांति की दौड़ में प्रफांस, ब्रिटेन से पिछड़ गया।

वाणिज्यीकरण की इस सीमा के बावजूद इस प्रक्रिया से होने वाले लाभ वहाँ के किसानों को वास्तविक रूप में मिले, लेकिन यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह लाभ सिर्फ बड़े किसानों को ही मिला क्योंकि वे ही पंजी-निवेश करने में सक्षम थे। इन सबों का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि प्रफांस में इससे न केवल उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन आया वरन् उत्पादन संगठन में भी परिवर्तन आया। भारतीय वाणिज्यीकरण में भी प्रफांस की तरह प्रभावशाली लोगों और बड़े किसानों को ही इस प्रक्रिया से आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ लेकिन भारत में प्रफांस के विपरीत अधिकशेष पर विदेशी निवेशकों का नियंत्रण हो गया, जिससे न तो उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन आया और न ही उत्पादन संगठन में परिवर्तन आया। शायद ही ऐसा कभी हुआ कि ब्रिटेन की बेहतर तकनीक का प्रयोग भारतीय कृषि के विकास में किया गया हो।

उपरोक्त विशलेषण के आधार पर हम देखते हैं कि औपनिवेशिक काल में भारत में कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ। यह वाणिज्यीकरण स्वतः स्फूर्त न होकर औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के दबाव में लाया गया था। इसमें अधिकांश पूंजी ब्रिटिश निवेशकों ने निवेश की थी इसलिये लाभ का बड़ा हिस्सा उन्हें प्राप्त हुआ। सहयोगी संगठनों पर भी अंग्रेजों के नियंत्रण के कारण लाभ का एक ओर हिस्सा ब्रिटेन चला गया। भारतीय उत्पादकों को इससे नाममात्र का लाभ हुआ। खाद्यान्न फसलों की अवहेलना के कारण में बार-बार अकाल पड़ा। भारतीय किसानों की क्रय शक्ति बढ़ने की बजाय घटी। यहाँ तक कि इससे भारतीय उद्योगों को वह आधार नहीं मिल पाया जो ब्रिटिश उद्योगों को मिला था। इन सीमाओं के बावजूद स्वनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था, अखिलभारतीय अर्थव्यवस्था में तब्दील हो गई और भारतीय अर्थव्यवस्था, विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ गयी।

12.8 ऋणग्रस्तता

ब्रिटिश शासन तथा उसकी नीतियों का जो आर्थिक प्रभाव सामने आया उसमें ऋणग्रस्तता एवं महत्वपूर्ण ठहराव बिंदु है। यह ट्टणग्रस्तता पूर्णतः आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बुनियादी बनावट में नकारात्मक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न हुयी। अंग्रेजी शासन के पूर्व भारतीय ग्रामीण समाज स्वालंबी ग्राम अर्थव्यवस्था को धारण किए हुए था। परंतु, ब्रिटिश नीतियों की औपनिवेशिक महत्वाकांक्षा ने इसके स्वरूप में आमूल-जूल परिवर्तन कर दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय कृषि का व्यावसायीकरण कर दिया तथा दूसरी तरफ लगान की राशि इतनी ज्यादा रखी गयी जिसे अदा कर पाने में भारतीय किसान असफल रहा। कृषि के स्वरूप में परिवर्तन के साथ-साथ परंपरागत उद्योगों का भी ह्रास हो रहा था क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुये थे। ग्रामीण दस्तकारी उद्योगों की बर्बादी रेलवे के बनते ही काफी तेज हो गयी क्योंकि रेलवे के विकास ने ब्रिटिश औद्योगिक माल की सूदूर गांवों तक पहुंच को आसान कर दिया। इसके पूर्व **1813** में लायी गयी एकतरफा मुक्त व्यापार की नीति भारत पर लाद दी गई थी और ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं, विशेष्कर सूती वस्तों की तुरंत बड़ी भरमार हो गयी। आदिम तकनीकों से बनी भारतीय वस्तुएं भाप से चलने वाली शक्तिशाली मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर बनाई गई वस्तुओं की प्रतिद्वंदिता में नहीं टिक सकी। इस सवों का मिलाजुला परिणाम यह हुआ की भारतीय किसान व ग्रामीण दस्तकारी व शिल्पकारी उद्योग पूरी तरह कमशोर होते गये और ग्रामीण गरीबी का विकराल स्वरूप सामने आया जिसने ग्रामीण ऋणग्रस्तता को जन्म दिया। भारत के स्वालंबी गांवों की स्थिति पर अमेरिकी लेखक डी.एच. बुकानन ने लिखा है-

''अलग-थलग रहने वाले स्वालंबी गांव के कवच को इस्पात की रेल ने बेध दिया, तथा उसकी प्राण शक्ति को क्षीण कर दिया।''

ग्रामीण उद्योगों के ह्रास और विऔद्योगीकरण की प्रक्रिया ने कृषि पर लोगों की निर्भरता को बढ़ाया किंतु कृषि क्षेत्र अंग्रेजों की भू-राजस्व नीतियों एवं निवेश के अभाव के कारण इस बढ़े हुये दबाव

को सह पाने में असमर्थ रहा और ग्रामीण गरीबी का तथा ग्रामीण ऋणग्रस्तता का यह दुस्चक्र गहराता ही गया।

12.8.1 ग्रामीण ऋणग्रस्तता के उत्तरदायी कारण

1. लगान की राशि अत्यधिक होने के कारण किसान उसे दे पाने में असमर्थ थे। अतः वे महाजनों से कर्श लेने के लिये विवश थे और एक बार महाजनों के चंगुल में फंसने के बाद निकलना मुश्किल हो गया।
2. कृषि के व्यावसायीकरण ने महाजनी प्रथा को प्रोत्साहित किया क्योंकि महाजन, व्यापारी भी थे अतः ये नगदी फसलों पर नियंत्रण कायम करना चाहते थे।
3. निवेश के अभाव से कृषि सुविधाओं का विकास न हो सका जिसके कारण प्राकृतिक आपदाओं को सहन करने की क्षमता भी भारतीय कृषि में न थी। इसके अलावा भूमि का विखंडन भी उत्पादन को हतोत्साहित करता था।
4. भूमि में वैयक्तिक स्वामित्व और बिक्री के अधिकार स्थापित करने की वशह से महाजनों के लिये किसानों से धन की वसूली करना आसान हो गया था वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश दीवानी विधियों के द्वारा महाजनों को सुरक्षा प्रदान की गयी और इससे सूदखोरी को प्रोत्साहन मिला।
5. भारतीय किसानों में फिजूलखर्ची की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है जो उनके सामाजिक व धार्मिक समारोहों में देखी जा सकती थी इसके अलावा मुकदमों की भी भरमार रहती थी। जिससे उन्हें कर्श लेना पड़ता था और आर्थिक स्थिति बदहाल हो जाती थी।

12.8.2 ग्रामीण ऋणग्रस्तता का प्रभाव

ग्रामीण ऋणग्रस्तता ने कृषि निवेश को हतोत्साहित किया जिससे उत्पादन पर नकारात्मक असर पड़ा। दूसरी तरफ ट्टणग्रस्तता की वशह से कृषक व महाजनों का संबंध तनावपूर्ण बना यही वशह है कि **1857** की क्रांति के समय कंपनी के अधिकारियों के अतिरिक्त महाजन भी विद्रोहियों के आक्रोश के शिकार हुये थे। ग्रामीण ऋणग्रस्तता के परिणामस्वरूप कृषि श्रमिकों को संख्या में काफी वृद्धि हुयी क्योंकि छोटे कृषक अपनी जमीनें बेचने लगे और मजदूरों की शमात में शामिल हो गए। इस प्रकार किसान वर्ग को सरकार, जमींदार और महाजन के तिहरे बोझ से कुचल दिया गया। इन तीनों द्वारा अपने हिस्से ले लेने के बाद इतना नहीं बचता था कि खेतिहर तथा उसके परिवार का निर्वाह हो सके। परिणामस्वरूप किसान वर्ग की गरीबी बढ़ती गई साथ ही अकालों की बारंबरता तथा भयंकरता भी बढ़ गयी। जब भी सूखे या बाढ़ के कारण फसले खराब हो गईं तथा अभाव की स्थिति आयी तब लाखों की संख्या में लोग मरे।

12.9 अकाल

'अकाल' से तात्पर्य खाने पीने की वस्तुओं का अत्यधिक अभाव। भारत में अकाल का अतिहास काफी पुराना रहा है किंतु इस अकाल के उत्तरदायी कारण अलग-अलग रहे हैं। साधारतः अकाल को एक प्राकृतिक आपदा मानते हुये पानी या वर्षा की कमी को इसके लिये प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना जाता है। किंतु जब हम ब्रिटिशकालीन अकाल की बारंबारता पर दृष्टि डाते हैं तो यह प्राकृतिक आपदा कम औपनिवेशिक नीतियों का ज्यादा सटीक परिणाम लगता है। यह ब्रिटिश सुशासन के दावे की पोल खोल देता है।

भारत में जनता के दरिद्रता की पराकाष्ठा अकालों की एक शृंखला में हुई, जिन्होंने **19**वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत के सभी हिस्सों में अपनी विनाशलीला दिखाई। भारत में **1765** से **1865** तक **12** अकाल पड़े और चार बार खाद्यन्न का भीषण अभाव हो गया।

12.9.1 भारत में पड़ने वाले अकालों के उत्तरदायी कारण

(1) कृषि के व्यवसायीकरण की प्रक्रिया ने अकाल की बारंबरता को बढ़ा दिया क्योंकि वाणिज्यिक फसलों को दी जाने वाली प्राथमिकता ने खाद्यान्न तथा मोटे अनाज की उपलब्धता को कम कर दिया। व्यवसायीकरण की प्रक्रिया में भारतीय कृषि ब्रिटिश उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराने का साधन मात्र रह गयी।

(2) अकाल की स्थिति में भी भारत से अंग्रेजों द्वारा अनाज का निर्यात किया जाता था क्योंकि अनाजों के निर्यात के बिना गृह व्यय की रकम चुकाना संभव नहीं था। इसके अलावा भारत से ब्रिटेन भी अनाज का निर्यात किया जाता था जिससे वहां के औद्योगिक श्रमिकों को सस्ते खाद्यान्न की उपलब्धता हो सके।

(3) उत्पादन में उतनी कमी नहीं हुई थी लेकिन अधिसंख्य जनता के पास रोजगार के अभाव था। अतः अनाज खरीदने के लिये उनके पास क्रय शक्ति नहीं थी।

(4) रेलवे ने अकाल की स्थिति को और भी तीव्र कर दिया उसने गैर खाद्यान्न फसलों को एक बड़ा बाजार देकर उसके महत्व को बढ़ा दिया जिससे खाद्यान्न उत्पादन को धक्का लगा। **1875** तथा **1895** के बीच कुल फसल क्षेत्र गैर खाद्यान्न फसल का विस्तार **13.42** प्रतिशत से बढ़कर **15** प्रतिशत हो गयी। इसके अलावा रेलवे ने मुख्य भूमि को बंदरगाहों से जोड़कर अनाजों के निर्यात को प्रोत्साहन दिया।

12.9.2 अकाल का प्रभाव

(1) अकाल की बारंबरता ने करोड़ों की संख्या में जनसमुदाय को नष्ट कर दिया। **1769-70** में बंगाल का अकाल, जिसके कारण बंगाल की एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गयी। **1781** तथा **1782** में मद्रास में अकाल की स्थिति देखी गयी, फिर **1984** के भीषण अकाल ने

संपूर्ण उत्तरी भारत को प्रभावित किया। **1833** में गुंटूर क्षेत्र के अकाल में **5** लाख में से **2** लाख लोग मर गये। **1860-61** में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अकाल में **2** लाख लोग मारे गये। **1865-66** में अकाल ने उड़ीसा, बंगाल, बिहार व मद्रास को अपने शिकंजे में ले लिया और **20** लाख लोगों की जानें ले ली। उस समय तक का शायद सबसे भयंकर अकाल **1876-78** में मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, महाराष्ट्र, पश्चिमी उ.प्र. तथा पंजाब में पड़ा। महाराष्ट्र में **8** लाख लोग मरे, मद्रास में लगभग **35** लाख की जानें गई, मैसूर को अपनी **20**ः जनसंख्या से हाथ धोना पड़ा तथा उ.प्र. में **12** लाख से अधिक लोग मारे गये। **1896-97** में सूखे के कारण देशव्यापी अकाल पड़ा साढ़े नों करोड़ से अधिक लोग प्रभावित हुए तथा **45** लाख लोग मारे गये। इसके तुरंत बाद **1899-1900** के अकाल में व्यापक तबाही हुयी। एक ब्रिटिश लेखक विलियम डिग्बी ने अकाल में मरने वाले लोगों का हिसाब लगाया। उनके अनुसार **1854** से **1901** तक कुल मिलाकर **2,88,25,000** से अधिक लोग मारे गए। एक और अकाल **1943** में बंगाल में पड़ा जिसमें **30** लाख लोग मर गए। ये अकाल और उनमें मरने वालों की भारी संख्या इस बात का संकेत देती है कि गरीबी और भुखमरी की जड़े भारत में कितनी हो गई थी।

(2) लगातार पड़ने वाले अकालों ने ग्रामीण जनसंख्या को मुख्यतः दो प्रकार से प्रभावित किया-खाने के अभाव तथा चारे के अभाव द्वारा। चारे का अभाव कृषकों के लिये अत्यधिक नुकसानदायक था क्योंकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा निवेश पशुओं पर ही आधारित था। फिर ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में ऊँची लगान दरों ने अधिकांश किसानों को दोहरा झटका दिया। ऐसे समय में किसान से बड़ी संख्या में भूमि का हस्तांतरण महाजनों की ओर हुआ तथा ज्यादातर किसान भूमिहीन मजदूर में तब्दील हो गये।

(3) ये भूमिहीन मजदूर रोजगार की तलाश में सक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन करने लगे जिससे ग्रामीण सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसने सामाजिक तनावों तथा राजनीतिक असंतोष को जन्म दिया। जिसकी अभिव्यक्ति कृषक विद्रोहों के रूप में हुयी। जैसे **1875** में दक्कन खेतिहर दंगे, **1894** में असम खेतिहर दंगे आदि।

(4) अकाल के इसी दौर में भूख से पीड़ित तथा रोजगार की खोज में असंख्य भारतीय दूसरे देशों जैसे अप्रफीका तथा कैरिबियाई देशों में अनुबंधित श्रमिक बनने को बाध्य हुए।

12.9.3 अंग्रेजों की अकाल नीति

कंपनी के शासन के समय अंग्रेजों को कोई अकाल नीति नहीं थी इस समय कंपनी को अकाल के प्रति संवेदनशीलता बहुत ही निराशापूर्ण रही। **1769-70** के अधिकारियों ने कम भाव पर चावल

को खरीदकर ऊंचे भाव में उसे बेचकर मुनाफा कमाया। यद्यपि **1792** के मद्रास दुर्भिक्ष तथा **1803** के उ.प्र. के अकाल में सरकार द्वारा कर में छूट तथा ट्टण देने की व्यवस्था की गई परंतु यह नाकाफी थी। प्रारंभिक दौर में धर्मार्थ संस्थाओं ने ही अकाल राहत का कार्य किया।

भारत का शासन ब्रिटिश क्राउन के हाथ में जाने के बाद सरकार की प्रशासनिक नीति में थोड़ा परिवर्तन देखा जा सकता है जिसमें सरकार ने सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, कृषि संबंधी कानून बनाना तथा एक निश्चित अकाल नीति के लिये अपने दायित्व का स्वीकार किया। गवर्नर जनरल लारेन्स के समय **1866** में गठित कैम्पवेल अकाल आयोग ने सर्वप्रथम सिफ़ारिश की कि सरकार सिंचाई तथा कृषि विकास के लिये व्यापक ट्टण व्यवस्था करे तथा प्रत्येक संभावित मृत्यु को रोकने की जिम्मेदारी स्थानीय प्रशासन की होनी चाहिये। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अकाल पर गठित सबसे महत्वपूर्ण आयोग स्ट्रेथी आयोग था। जिसका गठन **1880** में लार्ड लिटन के समय किया गया। इसी आयोग की रिपोर्ट के आधार पर **1883** में अकाल संहिता लायी गयी। इस आयोग का गठन **1876-78** के उस भीषण अकाल के पश्चात किया जिसमे मद्रास, बंबई, उ.प्र. तथा पंजाब में अत्यधिक जनसंख्या नस्ट हो गयी। आयोग ने सुझाव दिया कि भूख से प्रभावित होने से पूर्व ही लोगों को समुचित रोजगार प्राप्त हो तथा न्यूनतम मजदूरी इतनी हो जिससे के खाने की वस्तु प्राप्त कर सकें। आयोग ने यह भी कहा कि जिन निर्धनों का कोई सहारा नहीं उनको भोजन देना सरकार का कर्तव्य होना चाहिये, अन्न भण्डारण पर सरकार को ध्यान देना चाहिये, अनाजों की उपलब्धता पर्याप्त सुनिश्चित हो जाने के बाद ही अनाज का निर्यात किया जाना चाहिये। आयोग ने भूमि कर तथा लगान में छूट की सिफ़ारिश करते हुए कहा कि अकाल सहायता पर व्यय को प्रांतीय सरकार के खाते से पूरा किया जाना चाहिये अपेक्षित होने पर केन्द्रीय सहायता भी ली जा सकेगी। इस आयोग की सिफारिश में दूधारू पशुओं को हरे-भरे क्षेत्रों में स्थानांतरित करने का भी सुझाव दिया गया था। इसी आयोग की सिफारिश पर अकाल संहिता का निर्माण किया गया जिसके आधार पर **1883** तथा **1896** में अकाल राहत उपाय चलाए गये जो कारगर साबित हुए।

1886 में डफरिन के समय कॉकटेल आयोग तथा **1896** में एल्गिन द्वितीय के समय पंजाब के गवर्नर जेम्स लॉयल की अध्यक्षता में लॉयल आयोग का गठन किया गया। लॉयल आयोग ने स्ट्रेनी आयोग की सिफारिशों पर ही सहमति व्यक्त की तथा कुछेक परिवर्तन किए जिसे राहत कार्यों को और भी सरल व सुचारू बनाया जा सके। **20**वीं शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश अकाल नीति एक ठोस स्वरूप को धारण कर चुकी थी। सन् **1900** में लार्ड कर्ग के समय मैकडॉनल अकाल आयोग का गठन दिया गया था। इस आयोग ने अकाल राहत को सरकार का नैतिक कर्तव्य बताया तथा सरकारी सहायता के तहत पशु तथा बीजों के लिये शीघ्रता से धन बाँटने तथा अस्थाई हुँए रगेदने की व्यवस्था पर बल दिया। प्रभावित क्षेत्रों में अकाल आयुक्त की नियुक्ति का सुझाव दिया। आयोग ने एक महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि बारंबार पड़ने वाले अकालों को रोकने के लिये अच्छी

परिवहन सुविधाओं, कृषक बैंको, सिंचाई व्यवस्था तथा उत्तम साधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर बल दिया जाए।

1943 में बंगाल का भीषण अकाल पड़ा जिसमें **30** लाख लोग मारे गये। इस अकाल का मूल कारण **1938** के पश्चात लगातार फसल खराब होना था। द्वितीय विश्व युद्ध की व्यस्तता के कारण कसरकार के राहत कार्य भी देर से प्रारंभ हुये। वेवेल ने इस अकाल पर **1943** में कडहेड आयोग का गठन किया।

12.9.4 ब्रिटिश अकाल नीति का मूल्यांकन

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान जो अकाल नीति बनायी गयी उसमसे व्यवहारिकता का घोर अभाव था। उदाहरण के लिये अकाल संहिता में यह प्रावधान था कि यदि **3/4** फसल नष्ट हो जाये तो भू-राजस्व में माफी कर दी जाएगी, परंतु व्यवहारतः इसका क्रियान्वयन कठिन था तथा इस मांग को पूरा करवाने के लिये किसानों को एक बड़ा संघर्ष करना पड़ता था। जैसे सन् **1896-97** में दक्कन के मामले में पूना सार्वजनिक सभा ने हस्तक्षेप किया और फिर सन् **1918** में खेड़ा के मामले में गांधी जी द्वारा हस्तक्षेप किया गया। उपर्युक्त के अलावा सरकार ने किसानों की सुरक्षा के लिये कुद अधिनियम बनाये जैसे **1881** पश्चिमोत्तर प्रांत लगान अधिनियम, **1883** मध्य प्रांत काश्तकारी विधेयक, **1885** का बंगाल व पंजाब काश्तकारी कानून इन सुधार अधिनियमों का वास्तविक उद्देश्य किसानों का कल्याण करना कम, बल्कि राजनीतिक असंतोष की धार को कम करना अधिक था। साथ ही उनका उद्देश्य किसानों में यह भ्रम फैलाना था कि सरकार उनकी भलाई के लिये काम कर रही है। ब्रिटिश काल में अकालों का जो अनवरत सिलसिला नहीं रूका उसका मूल कारण यह था कि इन्होंने जो अकाल नीति बनायी उसमें अकाल के मूल कारणों को दूर करने के उपायों पर बल नहीं दिया गया था बल्कि राहत उपायों पर बल दिया गया था। यही कारण है कि भारत को आजादी मिलने तक अकाल की महामारी से जूझना पड़ा।

12.10 मूल्यांकन

इस संपूर्ण इकाई में ब्रिटिश शासन के आर्थिक प्रभावों को तथा उनकी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षा से परिपूर्ण नीतियों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं के दुष्चक्र को बताया गया है। अंग्रेजों ने अपने उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति बनाये रखने के लिये भारत में कृषि का वाणिज्यीकरण किया इस वाणिज्यकरण की प्रक्रिया में भारतीय परंपरागत उद्योग नष्ट हुये भारतीय दस्तकार व शिल्पकार ट्टणग्रस्त हुये तथा अंग्रेजों का मुनाफा निरंतर बढ़ता गया। चूंकि यह वाणिज्यीकरण स्वतः स्फूर्त न होकर औपनिवेशिक दबाव में लाया गया था जिससे भारतीय कृषक समुदाय इसके लाभ से पूर्णतः वंचित रहा। इस प्रक्रिया में भू-राजस्व की ऊँची दरों ने भारतीय कृषकों को भूमिहीन मजदूरों में

तब्दील कर दिया तथा वे ऋणग्रस्तता के दुष्चक्र से निकलने में असमर्थ हो गये। इसके अतिरिक्त वाणिज्यीकरण ने खाद्यान्न फसलों के उत्पादन को हतोत्साहित किया तो ऊँची जगान दरों ने नगदी फसलों के उत्पादन को बजबूर किया जिससे प्रथम के कारण अकाल की बारंबारता बढ़ी तो द्वितीय के कारण ऋणग्रस्तता । इस प्रकार भारतीय ग्रामीण समुदाय अकाल व ऋणग्रस्तता के बीच पिसता चला गया। जो खाद्यान्न भारतीय किसानों के द्वारा पैदा भी किया जाता था उसका बड़ा हिस्सा ब्रिटेन के औद्योगिक श्रमिकों को सस्ता खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिये ब्रिटेन चला जाता था। इस प्रकार कच्चे माल के साथ-साथ खाद्यान्न की आपूर्ति भी भारत से ही होती थी बदले में भारत दरिद्रता व अकाल को सह रहा था। संपूर्ण इकाई में ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप आये वाणिज्यीकरण, ऋणग्रस्तता व अकाल के अंतर्संबंधों को प्रकाशित किया गया है।

12.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नलिखित पर प्रकाश डालें-

1. कृषि का वाणिज्यीकरण और उसका उद्देश्य

2. वाणिज्यीकृत फसलें

3. वाणिज्यीकरण की सीमाएं

4. वाणिज्यीकरण का प्रभाव

5. फ्रांसीसी वाणिज्यीकरण से तुलना

6. ऋणग्रस्तता

7. ऋणग्रस्तता का प्रभाव

8. अकाल

9. अकाल का प्रभाव

10. ब्रिटिश अकाल नीति

12.12 सारांश

कृषि के वाणिज्यीकरण का तात्पर्य ब्रिटिश शासन काल में नगदी फसलों के उत्पादन तथा वितरण से है। इस काल में फसलों का उत्पादन बाजार को ध्यान में रखकर किया जाता था तथा खाद्दान फसलों के बजाय नगदी फालों के उत्पादन और विनिमय पर बल दिया गया। विश्व बाजार में नगदी फसलों की अत्यधिक मांग थी तथा साथ ही इसकी ब्रिटिश उत्पादों से कोई सीधी प्रतिद्वंदिता भी नहीं थी। कंपनी ने जिन फसलों के वाणिज्यीकरण पर अपना ध्यान केंद्रित किया उसमें अफिम, नील, रेशम, कपास, चाय, कॉफी, जूट और गन्ना प्रमुख थे।

वाणिज्यीकरण के कारण पहली बार भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ी तथा इसमें पूंजीवादी तत्वों का प्रवेश हुआ। इससे स्वनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था अखिल भारतीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई। लेकिन दूसरी ओर इससे सामाजिक और आर्थिक विभेदीकरण

बढ़ा तथा खाद्दान फसलों का उत्पादन प्रभावित हुआ, जो संभवतः भारत में बार-बार पड़ने वाले अकालों का सर्वप्रमुख कारण था।

ब्रिटिश भू-राजस्व बंदोबस्त के कारण ग्रामीण समाज में ऋणग्रस्तता एक महत्वपूर्ण समास्या के रूप में उभरी। जमींदारों, महाजनो और सूदखोरों ने नवीन व्यवस्था का लाभ उठाकर भारतीय किसानों के शोषण में अंग्रेजों का पूरा साथ दिया। इस ऋणग्रस्तता ने भारतीयों को अनततः गरीबी की दुःश्चक्र में फंसा दिया।

ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के कारण भारत में बार-बार अकाल पड़े। भू-राजस्व व्यवस्था कृषि का वाणिज्यीकरण, विऔद्दोगिकरण और धन का निष्कासन इसके लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी था। इस अकाल के कारण जहाँ लाखों लोग मरे वहीं दूसरी ओर इसकी प्रतिक्रिया में अनेक कृषक विद्रोह एवं बलवे हुए। अंग्रेजों ने अपनी अकाल नीति के तहत अनेक आयोगों का गठन किया और उसके सुझावो को क्रियान्वित करने का प्रयास किया। लेकिन यह प्रयास ना काफी था क्योंकि समस्या व्यवस्था की जड़ में थी दूसरे शब्दों में वाणिज्यीकरण, ऋणग्रस्तता एवं अकाल में संबंध अंतर्निहित थे।

12.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

देखिये

1. 12.1 और 12.2
2. 12.4
3. 12.5
4. 12.6
5. 12.7
6. 12.8
7. 12.8.2
8. 12.9
9. 12.9.2
10. 12.9.3

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश शासनकाल में कृषि के वाणिज्यीकरण का आलोचनात्मक परीक्षण करें?

2. ब्रिटिश औपनीवेशिक भारत में ऋणग्रस्तता के कारण एवं प्रभाव का मूल्यांकन करें?

3. ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों की अकाल नीति की समीक्षा करें?

12.15 संदर्भ ग्रंथ

* David Washbrook, 'The Commercialization of Agriculture in Colonial India : Production, subsistance and Reproduction in the 'Dry South', c. 1870-1930

Modern Assia Studies Vol. 28, No.1 Feb, 1994, Published by Cambridge University Press.

इकाई तेरह

ग्रामीण समाज : परिवर्तन और निरंतरता

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 **18**वीं सदी का भारत
13.4 परिवर्तन व निरंतरता
  13.4.1 राजनीति में परिवर्तन व निरंतरता
  13.4.2 अर्थव्यवस्था में परिवर्तन व निरंतरता
  13.4.3 समाज व संस्कृति में परिवर्तन व निरंतरता
13.5 ग्रामीण समाज के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन व निरंतरता का मूल्यांकन
13.6 स्वमूल्यांकित प्रश्न
13.7 सारांश
13.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
13.9 निबंधात्मक प्रश्न
13.10 संदर्भ ग्रंथ

13.1 प्रस्तावना

चिंतन की नई लहरों का पुरांन दृष्टिकोणों से हमेशा टकराव होता रहा है। जहां तक भारतवर्ष की बात है तो यहां यह प्रक्रिया और भी ज्यादा रही है क्योंकि यह प्राचीन काल से ही विदेशी आक्रांताओं के आकर्षण का केन्द्र रहा है। यहां हम अंग्रेजों के आगमन के बाद भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तन तथा विद्यमान निरंतरता की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करेंगें। किंतु इस विश्लेषण से पूर्व एक बात स्पष्ट करनी होगी कि ये परिवर्तन और निरंतरता किन-किन क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। इन सभी बातों को समझने के लिये मुगलकालीन समाज, उस समय की राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक अवस्था तथा सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति पर भी सिंहावलोकन करना होगा।

किसी भी समाज में परिवर्तन व निरंतरता के तत्वों को गहराई से समझने के लिये उस समाज के संक्रमणकालीन दौर को समझना अत्यंत आवश्यक होता है। आधुनिक भारत के संदर्भ में यह संक्रमणकालीन दौर मुख्य रूप से **18**वीं शताब्दी तथा **19**वीं शताब्दी के मध्य तक रहा। यह वह समय था जब मुगल साम्राज्य अपने अवसान की ओर बढ़ रहा था तो अनेक क्षेत्रीय साम्राज्य शक्तिशाली हो रहे थेऋ दूसरी तरफ यूरोपीय कंपनियां अपनी नई सोच व वैज्ञानिकता के साथ भारत

में अपनी पकड़ मजबूत बनाने का प्रयास कर रही थी। संक्रमण का दौर हमेशा ही ऊर्जा से परिपूर्ण होता हे और इस अवधारणा पर यह दौर भी रखरा उतर रहा था लेकिन दुर्भाग्यवश भारत के संदर्भ में यह दौर इतना सकारात्मक नहीं था क्योंकि इस दौर में भारत के क्षेत्रीय राज्यों ने आपस में ही लड़कर अपनी ऊर्जा का नाश कर दिया और इसका तात्कालिक फायदा अहमदशाह अब्दाली व नादिरशाह ने लिया तो दीर्घकालिक फायदा अंग्रेजों ने उठाया।

13.2 उद्देश्य

इस संपूर्ण इकाई में अंग्रेजो के आगमन के बाद होने वाले परिर्वनों को तो दिखाया ही जायेगा साथ ही साथ यह भी स्पस्ट किया जायेगा की वे कौन से तत्व थे जो अपनी निरंतरता के साथ इस युग में भी भारतीय समाजमें बने रहे। यह संपूर्ण विश्लेषण भारतीय समाज को तो केन्द्र में रखेगा ही किंतु ग्रामीण समाज को इस विश्लेषण में विशेष तरशीह दी जायेगी क्योंकि इस संक्रमण के दौर का भारत मुख्यतः गांवों में ही बसता था। ग्रामीण समाज की आर्थक व सामाजिक स्थिति ने आगे चलकर संपूर्ण भारतीय समाज की नियति को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अर्थात परिवर्तन व निरंतरता के इन तत्वों को ग्रामीण समाज में ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है। संपूर्ण **18**वीं शताब्दी तथा **19**वीं शताब्दी के मध्य तक परिवर्तन व निरंतरता की यह प्रक्रिया अत्यंत तीव्र थी अतः इसे केन्द्र में रखते हुये इस कार्य का किया गया।

13.3 18वीं सदी का भारत

18वीं शताब्दी में धार्मिक प्रकृति वाला मुगल साम्राज्य खत्म हो रहा था और इसका स्थान लेने के लिये वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी प्रकृति वाली ब्रिटिश सत्ता दरवाजे पर दस्तक दे रही थी। इस सदी में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही राजनीतिक दृष्टि से अराशकता की स्थिति रही। भारतीय समाज में अनेक कुरीतियां विद्यमान थी। आर्थिक दृष्टि से इस सदी के संबंध में इस तथ्य पर बल दिया गया कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने व्यापार एवं आर्थिक संबंधों में कोई भी परिवर्तन नहीं किया। आर्थिक संबंधों पर विचार करते हुये सी.ए. बेली ने उत्तरी गंगा क्षेत्रों और वाशब्रुक ने कोरोमंडल तटीय क्षेत्रों के अध्ययन पर यह विचार प्रकट किया है कि भारतीय व्यापारिक वर्गों का प्रभाव बना रहा और **18**वीं सदी के उत्तरार्ध में व्यापार का और अधिक विकास हुआ। एरिक स्टाक्य ने यह स्पष्ट किया कि अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में अंग्रेजों ने जिस प्रशासनिक ढाँचे की स्थापना की उसमें पूर्वस्थापित व्यवस्था का समावेश भी किया गया। इस तरह निरंतरता के तत्वों पर विशेष बल दिया गया। कैंब्रिज इकानॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया खंड प्प् से संबंधित इतिहासकारों का यह विचार सही है कि **18**वीं शदी के भारतीय अर्थव्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं हुए थे। उदाहरणार्थ विदेशी व्यापार में भारतीयों की भागीदारी बनी रही। किंतु**,** इसी के साथ यह स्पस्टीकरण भी जरूरी है कि अंग्रेजो ने इसी शताब्दी में यहाँ पर अंग्रेजी उपनिवेश की स्थापना की। इससे आय के अधिकांश

ड्डोत अंग्रेजों के अधीन चले गये। यहां एक बात और सही है कि साम्राज्यवाद तुरंत विजित प्रदेश को पूर्णतः परिवर्तित नहीं कर सकता किंतु पूरी सदी में ऐसा नहीं किया गया यह बात मानना असंभव है।

13.4 परिवर्तन व निरंतरता

अंग्रेजों के आगमन के साथ भारतीय समाज विशेषतः ग्रामीण समाज में होने वाले परिवर्तन तथा विद्यमान निरंतरता को समझने के लिये इसे निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) राजनीतिक दशा

(2) आर्थिक दशा

(3) सामाजिक दशा व सांस्कृतिक दशा

13.4.1 राजनीति में परिवर्तन व निरंतरता

मुगलों के पतन के साथ अनेक स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। दूसरी ओर व्यापार के लिये आई ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरु कर दिया। दक्कन में फ्रांसीसियों को तीन कर्नाटक युद्धों में हराया जब **1763** ई. में पेरिस की संधि हुयी तो भारत से फ्रांसीसियों को बाहर का रास्ता देखना पड़ा। बंगाल में प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक अधिकारों को और अधिक स्पष्ट करने का फैसला किया। **18**वीं सदी की राजनीति में तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ देखी गईं ------

(1) मुगल साम्राज्य का विघटन

(2) क्षेत्रीय राज्यों का उदय

(3) अंगेजों द्वारा भारत में उपनिवेशवाद की स्थापना

इन्हीं तीन प्रवृत्तियों के अंतर्गत इस शताब्दी में राजनीतिक परिवर्तन व निरंतरता के तत्वों का अध्ययन किया जा सकता है।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य को अयोग्य उत्तराधिकारियों, आर्थिक कठिनाइयों, दरबारी राजनीति, विदेशी हमलों और स्वतंत्र राज्यों की स्थापना जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा और मुगल साम्राज्य सिमट कर दिल्ली तक रह गया। इसके बाद अब्दाली के हमलो ने इस साम्राज्य को सफल चुनौती दे दी। बाद में मराठों ने उत्तरी भारत पर कब्जा करने के उद्देश्य से

अब्दली द्वारा नियुक्त अधिकारियों को हटा दिया, तब युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। **14** जनवरी **1761** को पानीपत का तीसरा युद्ध अब्दाली व मराठों के बीच हुआ जिसने भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका अदा की। इस युद्ध में मराठों की हार हुयी तथा इन्हें क्षेत्रीय राज्यों का समर्थन भी नहीं मिला क्योंकि इनके संबंध अच्छे नहीं थे इन राज्यों से दूसरी ओर इस युद्ध में मुगल साम्राज्य की भी भूमिका शून्य थी। इस युद्ध से न तो विजेता का लाभ मिला न पराजित को। इससे भारतीय राजनीति में एक शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस युद्ध से यह तो स्पष्ट नहीं हो सका की भारत का भावी शासक कौन होगा लेकिन एक बात अवश्य स्पष्ट हो गयी कि कौन भावी शासक नहीं होगा? और मराठा शक्ति मुख्य भूमिका से हट गयी तथा इसका अप्रत्यक्ष लाभ अंग्रेजों को मिला। अंग्रेजों ने बंगाल को अपने अधिकार में करने के बाद एक के बाद एक भारतीय राज्यों को हराना शुरु कर दिया।

इतिहासकार सतीशचंद्र ने उत्तराधिकारी राज्यों का विश्लेषण करते हुये स्पष्ट किया है कि इन राज्यों में अनेक ऐसे तत्व पाए गये जो मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के ही स्सिा थे। जो इस परिवर्तनवादी दौर में निरंतरता का सूचक है। इन राज्यों की स्थापना की प्रक्रिया के आधार पर इन्हें तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता हैः

(1) मुगलों द्वारा नियुक्त प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना

(2) मुगल सत्ता को सफल चुनौती देते हुए अनेक व्यक्तियों व समुदायों द्वारा स्वतंत्र राज्य की स्थापना

(3) सर्वथा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना

बंगाल, अवध आर हैदराबाद के अलावा अनेक स्वतंत्र राज्यों की स्थापना भी इस शताब्दी में हुई। जैसे केरल, अंबर तथा सबसे महत्वपूर्ण मैसूर राज्य जिसकी स्थापना हैदर अली ने की थी। इन सभी राज्यों में मुगल व्यवस्था के अनेक तत्वों का समावेश किया गया था परंतु इसी के साथ नए परिवर्तन भी देखे गये। कमजोर हो चुकी मुगल सत्ता के प्रति सम्मान की भावा बनी रही। मुगल सत्ता के द्वारा नियुक्त अधिकारियों का सम्मान किया जाता था। अधिकांश शासक स्वयं को नवाब ही कहते थे केवल मैसूर के शासक ने स्वयं को सम्राट घोषित किया।

सी.ए. बेली ने स्पष्ट किया है कि सभी उत्तराधिकारी राज्यों की स्थापना में स्थानीय वर्गों ने निर्णायक भूमिका निभाई। मुगल शासन की तरह इन राज्यों के लिये सेना आवश्यक थी किंतु इस दिशा में मराठा महादजी सिंधिया तथा मैसूर राज्य ने ही विशेष प्रयास किये थे। इन सभी राज्यों में मुगलों की तरह आमदनी का प्रमुख साधन भूमिकर ही था तथा इससे किसानों का शोषण पहले की तरह ही हुआ। जिससे ग्रामीण समाज में एक निराशा व्याप्त रही शासक वर्ग के प्रति।

18वीं सदी के राजनीति की तीसरी प्रवृत्ति भारत में अंग्रेजी उपनिवेश की स्थापना से जुड़ी है। अंग्रेजी उपनिवेश की स्थापना में जितना योगदान अंग्रेजों की कुशलता का था उतना ही योगदान सभी क्षेत्रीय भारतीय राज्यों में परस्पर सहयोग की भावना के अभाव का भी था। अंग्रेजी उपनिवेश की स्थापना के पीछे पी.जे. मार्शल ने यह तर्काधार खोजने का प्रयास किया कि कंपनी केवल अपने व्यापार को सुरक्षित रखना चाहती थी और अपने स्थापित व्यापारिक क्षेत्रों में संतुष्ट थी, परंतु स्थानीय राजनीति में वह हस्तक्षेप करने को तब बाध्य हो गई जब उसका व्यापार सुरक्षित नहीं रहा। इस तरह मार्शल ने कंपनी की गतिविधियों को स्थानीय परिस्थितियों और स्थानीय शक्तियों के साथ उसके संबंधों के संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। दूसरे अर्थों में, मार्शल ने यह निषकर्ष निकाला है कि कंपनी साम्राज्यवादी उद्देश्यों से प्रेरित नहीं थी।

किंतु, तत्कालीन ऐहितासिक तथ्यों का विश्लेषण करने पर हम यह पाते हैं कि कंपनी व्यापारिक मुनाफे से प्रेरित थी साथ ही साथ बहुत जल्छ ही कंपनी ने अपने राजनीतिक उद्देश्यों को भी स्स्पष्ट कर दिया। फ्रांसीसी व्यापारियों की गतिविधियाँ और उनके राजनीतिक उद्देश्य पेरिस की संधि **(1763)** के साथ ही समाप्त हो गए। बंगाल में अंग्रेजो ने प्लासी (**1757**द्ध और बक्सर (**1764**द्ध के युद्धों के बाद स्वयं को राजनीतिक शक्ति घोषित किया। क्लाइव ने **1765-1772** के बीच द्वैध शासन-व्यवस्था अपनाई। इसमें कंपनी ने दीवानी अपने अधीन कर ली और निजामत का भार नवाब पर ही छोड़ दिया। **1772** में बारेन हेस्टिंग्स ने इस व्यवस्था को समाप्त कर बंगाल पर अपना अधिकार घोषित कर दिया **1773** में प्रशासन पर ध्यान केंद्रित करते हुये रेग्युलेटिंग एक्ट लाया गयाऋ न्याय-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा नौकरशाही का विकास किया गया, वह भी पूरी तरह यूरोपीय नौकरशाली का।

प्रारंभ से ही अंग्रेजों ने भूमिकर व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। शुरु में वारेन हेंस्टिग्स ने पंचवर्षीय और सालाना योजनाएं लागू की। लार्ड कार्नवालिस ने स्थायी बंदोबस्त **1793** लागू कर भूमिकर व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन किएऋ इसी प्रक्रिया में आगे चलकर रैय्यतवाड़ी एवं महालवाड़ी व्यवस्थाओं का प्रयोग किया गया।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से ग्रामीण समाज में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। यही वजह है कि तत्कालीन ग्रामीण समाज भारत में हो रहे इस सत्ता हस्तांतरण के प्रति उदासीन ही रहा। मुगल काल तथा उसके बाद क्षेत्रीय राज्यों और यहां तक कि ब्रिटिश राज्य में भी कृषक शोषण जारी ही रहा , परिवर्तन हुआ तो लगान वसूली की व्यवस्थाओं में तथा शोषण करने की प्रक्रिया में तथा शोषण की तीव्रता में। अंग्रेजों के समय ग्रामीण समाज तथा कृषकों का अधः पतन अत्यधिक तीव्रता से हुआ क्योंकि अंग्रेजों की प्रकृति मुगलों से बहुत भिन्न थी। मुगल जहां भारतीय समाज का

अंग हो चुके थे वहीं अंग्रेज हमेशा भारतीय समाज से प्रथकता रखे हुये थे। यद्यपि चाहे मुगल हों या अंग्रेज दोनों के समय शासक व शासित का द्वैत बना रहा किंतु अंग्रेजों के द्वैध शासन व भू-राजस्व व्यवस्था ने भारतीय ग्रामीण समाज को तेजी से निर्धन बना दिया।

13.4.2 अर्थव्यवस्था में परिवर्तन व निरंतरता

अंग्रेजों के आगमन के बाद अर्थव्यवस्था में जो परिवर्तन देखे गये उनका आधार अंग्रेजों द्वारा स्थापित उपनिवेशवाद था। यद्यपि साम्रज्यवादी इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि अर्थव्यवस्था में कोई मूलभूत अंतर नहीं आया। किंतु अनेक शोध-कार्यों से यह ज्ञात होता है कि उस समय की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं में मूलभूत अंतर आया। तत्कालीन अर्थव्यवस्था में निरंतरता व परिवर्तन के तत्व को जानने के लिये मुगलकालीन अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को जानना आवश्यक है। इतिहासकार इरफान हबीब ने स्पष्ट किया है कि मुगल अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी तत्व विद्यमान थे। कृषि व गैर - कृषि दोनों ही क्षेत्रों में बाशार के लिये उत्पादन होता था। श्रम का प्रयोग दोनों ही क्षेत्रों में वेतन देकर किया जाता था। इस प्रकार मुद्रा अर्थव्यवस्था विकसित हो चुकी थी। आय का प्रमुख साधन भूमिकर था। विदेशी व्यापार भी विकसित था और मुगलकालीन अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिक पूँजी भी उपलब्ध थी। अद्यपि इस अर्थव्यवस्था में औद्योगिक पूँजीवाद को जन्म देने की क्षमता न थी। बहुत से साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने अंग्रेजी उपनिवेशवाद में अंतर्निहित शोषण को नकारने का प्रयास भी किया। किंतु इरफ़ान हबीब सहित अनेक इतिहासकारों ने इस अवधारणा को सिरे से खाजिर कर दिया। वास्तव में मुगलकालीन अर्ध सामंती अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद का विकास ही इसलिये नहीं हो पाया क्योंकि भारत को उपनिवेश में तब्दील कर दिया गया। 'वाणिज्यिक पूँजीवाद' के दौर में भारत का अंग्रेजों ने जो शोषण किया, उससे यहाँ की अर्थव्यवस्था का स्वरूप ही बदल गया। भारत से 'धन के निष्कासन' की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी।

'वाणिज्यिक पूँजीवादी' चरण में भारत एक निर्यातक देश बन गया। भारत से प्राप्त होने वाली भू-राजस्व की रकम से भारत से वस्तुएँ खरीदकर उसे निर्यात किया जाता था और मुनाफा कमाया जाता था। भारत 'पेट्रोपोलियन अर्थव्यवस्था' का एक सहायक हिस्सा बन गया। आयात की तुलना में निर्यात में वृद्धि कर अतिरिक्त धन उपनिवेश से बाहर भेजा जाने लगा। उपनिवेशवाद के अगले चरणों में भी धन के निष्कासन की प्रक्रिया अनवरत चलती रही। 'औद्योगिक पूँजीवादी चरण' में भारत कच्चे माल का निर्यातक तथा औद्योगिक क्रांति से उत्पादित होने वाली वस्तुओं को आयातक देश बन गया। इससे जहां एक तरफ भारतीय कृषि का स्वरूप बदला तथा बागवानी फसलों को प्रोत्साहन दिया गया ताकि उद्योगों को सस्ते कच्चे माल की आपूर्ति की जा सके तो दूसरी और तैयार माल की खपत के लिये विऔद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाया गया तथा इन सबके साथ मुक्त व्यापार की नीति ने आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक

अर्थव्यवस्था में बदल दिया। आगे चलकर 'वित्तीय पूँजीवादी' चरण में ब्रिटिश पूंजीपतियों ने अपने धन का सुरक्षित निवेश भारत में किया जिससे एक तरफ तो उन्हें मुनाफा कमाने की गारंटी प्राप्त हुयी तो दूसरी और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को रेलवे आदि के विकास से मजबूती भी प्राप्त हुयी। उपनिवेशवाद के प्रत्येक चरण में अंग्रेजों की नीतियां अवश्य परिवर्तित होती रहीं हैं किन्तु इन नीतियों से 'धन के निष्कासन' में निरंतरता भी बनी रही।

अंग्रेजों की नीतियों के परिणामस्वरूप दिल्ली, आगरा, लाहौर जैसे शहरों का पतन हुआ तो अंग्रेजों के अधीन बंगाल, मद्रास व बंबई प्रमुख प्रशासनिक और व्यापारिक केन्द्र बने। अंग्रेजों की आमदनी का भी प्रमुख साधन कृषि था किंतु इसके विकास पर इन्होंने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इनका उद्देश्य अधिक से अधिक भूमिकर प्राप्त करके उसे अपने व्यापार में ही लगाना था। कार्नवालिस के स्थायी बंदोबस्त ने किसानों को किराएदारों की स्थिति में ला दिया। जमीन एक ऐसी वस्तु बन गई जिसे खरीदा या बेचा जा सकता था।

18वीं सदी में ऐसा भारतीय वर्ग भी था जिसका जातीय पेशा व्यापार था। जैसे मद्रास के चेट्टी, गुजरात के जैन, बोहरा व्यापारी, राजस्थान के मारवाड़ी, पंजाब के खत्री, केरल के सीपला आदि प्रमुख व्यापारी वर्ग थे। आरंभ में ईस्ट-इंडिया कंपनी ने अपनी व्यापारीक गतिविधियों के विस्तार में इस वर्ग का भी सहयोग प्राप्त किया था। ये साधारण व्यापारी नहीं थे इनके पास अपनी पूँजी थी अर्थव्यवस्था में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। ये फसलों को किसानों से खरीदकर उन्हें धन उपलब्ध करवाते थे जिससे राज्य का नकद राजस्व प्राप्त होता था। सर्राफ भी मुद्रा विनिमय का महत्वपूर्ण कार्य करते थे। जब ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में आई तो प्रारंभ में उसने भी मुद्रा विनिमय और कर्ज के लिये इन व्यापारियों की सहायता ली।

किंतु जैसे ही कंपनी को राजनीतिक शक्ति प्राप्त हुयी अंग्रेजों ने पूरे तंत्र को ही नष्ट कर दिया। अंग्रेजों को टकसाल का अधिकार मिल गया, भारतीय व्यापारियों के बैंकिंग संबंधी कार्य समाप्त हो गये। वे व्यापारी जो कभी कंपनी को सूती वस्त्र खरीदकर देते थे और दयनी व्यापारियों के रूप में प्रसिद्ध थे, उनका स्वतंत्र अस्तित्व अब समाप्त हो गया। अंग्रेज 'प्रत्यक्ष ऐजेंसी' व्यवस्था के माध्यम से स्वयं सामान खरीदने लगे। इस प्रकार भारतीय व्यापारियों की स्थिति कमीशन प्राप्त करने वाले दलालों की रह गई, व्यापारिक गतिविधियाँ अंग्रेजों के अधीन हो गई और भारतीय व्यापारियों को 'अधीनस्थ' स्थिति में रहकर कार्य करना पड़ा।

अंग्रेजों के आगमन तथा उनके स्थापित होने तक भारत का विदेशी व्यापार भी विकसित था। अंग्रेजों ने भी अपने मुनाफे के लिये इस व्यापार का विकास किया परंतु इससे प्राप्त लाभ केवल

अंग्रेजों को मिला। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी वहां सूती वस्त्रों के आयात पर इंग्लैंड में रोक लगा दी गई साथ ही अंग्रेजी सत्ता की स्थापना से पहले विदेश व्यापार से जो मुद्रा भारत को प्राप्त होती थी, वह बंद हो गई। अंग्रेजों ने सूती वस्त्र के निर्यातक देश को सूती वस्त्रों के आयातक देश में तब्दील कर दिया। व्यापार को इससे विपरीत दशा क्या हो सकती थी जो अंग्रेजों ने भारत को प्रदान की। अंग्रेजों ने 'कारीगरों' की उत्पादन प्रक्रिया पर भी दबाव डाला। अंग्रेजों ने सूती हथकरघा उद्योग में लगे कारीगरों को अपने द्वारा निर्धारित कीमतों पर सामान बेचने के लिये बाध्य किया। इससे उद्योग-धंधाँ के नष्ट होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। हस्तशिल्प उद्योगों के पतन से श्रमिक कृषि कार्यों की ओर मुड़ने लगे जिससे कृषि पर भी बोझ बढ़ा तथा ग्रामीण समाज गरीबी के दुष्चक्र में फँसता चला गया। हस्तशिल्प उद्योग का पतन होता रहा किंतु कुछ उद्योग जैसे बढ़ईगीरी, लोहारगीरी, कुम्हारगीरी अपना निरंतरता को ग्रामीण परिवेश में कायम किये हुये थे।

13.4.3 समाज व संस्कृति में परिवर्तन व निरंतरता

18वीं शताब्दी में भारतीय समाज विभिन्न परंपराओं एवं मान्यताओं से आबद्ध था। भारतीय समाज में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद कुछ नए वर्गों का जन्म हुआ। इन नये वर्गों का उल्लेख सी.ए. बेली ने निम्नलिखित रूपों में किया है-

(1) प्राचीन कुलीन वर्गों ने अपनी स्थिति को और अधिक मजबूत बनाने के लिये जमीन पर अथवा अधिपत्य स्थापित किया और वे जमींदार बन गए।

(2) मुसलमानों और हिंदुओं में अनेक व्यापारी ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ व्यापार और वित्तीय गतिविधियों में भागीदार बन गए। इससे उन्होंने जो मुनाफा कमाया, उसका उपयोग जमीन खरीदने के लिये। इस प्रकार उन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति सुधारी।

(3) ग्रामीण स्तर पर स्थानीय कुलीन वर्गों ने जमीन पर अपने अधिकार को और भी मजबूत कर लिया। जब अंग्रेजों ने स्थायी बंदोबस्त लागू किया तो यह व्यवस्था परंपरागत जमींदारों के साथ ही लागू की गई, परंतु अनेक जमींदार भूमिकर देने में असमर्थ रहे। इस कारण उनकी जमीनें नीलाम कर दी गई। इनकों खरीदने वाले नए जमींदार शहरों में रहते थे।

इस प्रकार के नए जमींदारों ने उपजमींदारी प्रक्रिया को जन्म दिया जिससे किसानों का शोषण और अधिक हुआ। **18**वीं शताब्दी के समाज में **'वर्ग-संरचना'** की प्रक्रिया भी देखी जा सकती है तथा साथ ही साथ परिवार और समुदाय अपना सामाजिक स्तर सुधारने में भी सफल रहे। एम.एन. श्रीनिवासन ने इस प्रक्रिया को **'संस्कृतिकरण'** कहा। संस्कृतिकरण की इस प्रक्रिया के साथ भारतीय समाज को जड़ नहीं कहा जा सकता था।

हिंदू समाज वर्णव्यवस्था तथा अनेक जातियों पर आधारित थी। मुसलमानों में भी सामाजिक स्तर पर विभेद था। हिंदू धर्म में मूर्ति पूजा, जादू-टोना और अनेक कुरीतियों जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं की खराब स्थिति, शिशु बध, स्त्री शिक्षा का अभाव आदि का बोलबाला थाऋ इसी तरह इस्लाम धर्म में भी अनेक अंधविश्वास घर कर चुके थे। इसके बावजूद यह देखा गया कि जनसंस्कृति सशक्त थी और धर्म के आधार पर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच झगड़ा नहीं होता था। बंगाल में काली पूजा का प्रचलन इस बात का घातेक था कि स्थानीय स्तर पर इस देवी को सभी पूजनीय मानते थे। ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ समाज सुधार की भी प्रक्रिया प्रारंभ हुयी क्योंकि अभिजात्य भारतीय समाज पाश्चात्यतर्कवाद के संपर्क में मानवतावादी दृष्टिकोण के संपर्क में आया जिसके अंतर्गत सती प्रथा, दास प्रथा, बाल विवाह, शिशु बध आदि का विरोध किया। **19**वीं शताब्दी के इन प्रमुख सुधार आंदोलनों के प्रति प्रारंभ में ब्रिटिश दृष्टिकोण तटस्थ का रहा किंतु जैसे-जैसे ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति हुये तथा एक बड़े बाजार का आवश्यकता हुयी तो उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इन सुधारों के प्रति अंग्रेजों का उपयोगितावादी दृष्टिकोण उभरा जिस पर ब्रेंथम व मिल का प्रभाव साफ़ नशर आता है। इसीलिये समाज सुधार के प्रति अंग्रेजों का सक्रिय समर्थन **1813** के बाद ही नशर आता है। इसी प्रकार भारतीय समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को भी अंग्रेजों ने सीमित रूप में ही स्वीकार किया। **1857** के विद्रोह के बाद उन्हें यह विश्वास और भी गहरा हो गया की इन सुधारों के प्रति भारत का रुढ़िवादी समाज विद्रोहात्मक रवैया अपना आ रहा तो वे इन सुधारों के प्रति और भी उदासीन हो गये। जो भारतीय समाज के प्रति अंग्रेजों के उपयोगितावादी व औपनिवेशिक दृष्टिकोण को उद्धाटित करता है।

13.5 ग्रामीण समाज के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन व निरंतरता का मूल्यांकन

18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन और औपनिवेशिक शासन को स्थापना ने ग्रामीण समाज की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दशा में व्यापक परिवर्तन किये किंतु ये बात भी उतनी ही सही है कि ये परिवर्तन पूर्णतः नहीं हुये इनमें कहीं-कहीं निरंतरता भी विद्यमान रहीं। जैसे सती प्रथा, पर्दा प्रथा, तथा बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियां एवं महिलाओं के प्रति भारतीय समाज का दृष्टिकोण अकस्मात् परिवर्तित नहीं हुआ इसमें धीरे-धीरे परिवर्तन हुये किंतु फिर भी ये परिवर्तन पूर्ण रूप में नहीं हुये। इसी प्रकार ग्रामीण समाज की आर्थिक दशा में कृषि का हमेशा प्रमुख योगदान रहा है यद्यपि इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ जिसका परिणाम अकालों की बारंबारता व ट्टणग्रस्तता के रूप में सामने आया। इसी तरह भारतीय ग्रामीण समाज राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति उदासीन ही रहा क्योंकि भारत में हमेशा शासक के रूप में विदेशी मूल का बोलबाला रहा तथा किसानों का न्यूनाधिक शोषण हर युग में होता रहा।

कुल मिलाकर **18**वीं सदी में अंग्रेजों ने भारत को उपनिवेश में बदलने की प्रक्रिया युद्ध की। विजित प्रदेश की संस्कृति, सामाजिक और आर्थिक मूल्यों और संबंधों को वे पूर्णतः परिवर्तित नहीं कर पायेऋ उसमें परिवर्तन के साथ-साथ निरंतरता के तत्व भी विद्यमान रहे। किंतु, अपने आधिपत्य को मजबूत बनाने के लिये उन्होंने जो भी प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन किये उसके दूरगामी परिणाम निकले।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. ब्रिटिश कालीन भारतीय ग्रामीण समाज में परिवर्तन एवं निरंतरता

2. भारतीय ग्रामीण समाज में राजनीतिक स्थिति

3. भारतीय ग्रामीण समाज में आर्थिक स्थिति

4. भारतीय ग्रामीण समाज में सांस्कृतिक स्थिति

13.6 सारांश

किसी भी समाज में परिवर्तन एवं निरंतरता के तत्वों के गहराई से समझने के लिए उस समाज के संक्रमणकालीन दौर को समझना अत्यंत आवश्यक होता है। आधुनिक भारत के संदर्भ में यह दौर **18**वीं सदी के मध्य से **19**वीं सदी के मध्य तक का है। इस दौरान भारतीय समाज और ब्रिटिश समाज के बीच का संघर्ष महज सैम्य संघर्ष नहीं था, बल्कि यह दो व्यवस्थाओं का भी संघर्ष था। पहला समाज जहां सामंतवादी उत्पादन प्रणाली पर आधारित था, वहीं दूसरा समाज पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली पर।

परंपरागत भारतीय ग्रामीण समाज की जड़ता तब टूटी, जब भारत पर सतत् विदेशी आक्रमण हुए ग्रामीण समाज की राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति में रैडिकल (मूलभूत) परिवर्तन हुए। मुगल साम्राज्य के विघटन के दौर में अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। इसके कारण्दा पश्चिमी व्यापारिक कांपनियां की अप्रत्यक्ष रुप से सत्ता स्थापित हुई। भूराजस्व बंदोबस्त, धन का निष्कासन विऔद्योगीकरण और कृषि के वाणिज्यिकरण जैसी ब्रिटिश कंपनी की आर्थिक नीतियों ने पूरी सामाजिक संरचना परिवर्तित हो गयी। इसी प्रकार ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक संरचना में भी मूलभूत परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए मूल्य पद्धति में परिवर्तन और निरंतरता के चिन्ह देखे जा सकते हैं। जहां एक ओर संस्कृतिकरा की प्रक्रिया चलती रही वहीं दूसरी ओर विभिन्न विद्यानों द्वारा समाज का आधुनिकीकरण भी होता रहा।

13.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. 13.4
2. 13.4.1
3. 13.4.1

4. 13.4.1

13.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिशकालीन भारतीय ग्रामीण समाज में होने वाले परिवर्तन और निरतरता का मूल्यांकन कीजिए।

13.9 संदर्भ ग्रंथ

* A.R. Desai,'Rural Sociology in India', Popular Prakashan, Mumbai, 1978.
* Navaneeta Rath,'Women in Rural Society : A Quest for Development',M.D. Publication, New Delhi, 1996.
* Rao, K.G.,'Changing Rural Society in India', Saujanya Books, Delhi, 2010.
* Ramkrishan Mukherjee,'The Dynamics of Rural Society : A Study of the Economic Structure in Bengal Village', Akademic-Verlag Berlin, Germany, 1957.
* Peter Robb. (Ed.),'In Rural India : Land, Power and Society under British Rule',Curzon Press, Delhi, 1983,Oxford University Press, 1992 (Reprint).
* Manali S. Deshpande,'History of the Indian Caste System and Its Impact on India today',
California Polythechnic State University, San Luis Obispo, Fall, 2010.
* Puja Mandal,'Origin of Development of Rural Sociology in India'

ईकाई चौदह

व्यापार एवं राजकोषीय नीति, अव-औद्योगीकरण और महिला स्थिति

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 व्यापार एवं राजकोषीय नीति
14.3.1 ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरण
14.3.1.1 वाणिज्यिक चरण (**1757-1813**)
14.3.1.2 औद्योगिक पूंजीवादी चरण (**1813-1858**)
14.3.1.3 वित्तीय पूंजीवादी चरण (**1860** के बाद)
14.3.2 धन का निष्कासन
14.3.1.2 धन के निष्कासन से संबंधित वाद-विवाद
14.3.3 ब्रिटिश व्यापार व राजकोषीय नीति का मूल्यांकन
14.4 अव- औद्योगीकरण
14.4.1 अव- औद्योगीकरण का प्रभाव
14.5 महिला स्थिति
14.5.1 महिलाओं के प्रति व्याप्त सामाजिक कुरीतियां
14.5.1.1 सती प्रथा
14.5.1.2 विधवाओं की स्थिति
14.5.1.3 शिशु वध
14.5.1.4 स्त्री शिक्षा
14.5.2 महिला सुधार आंदोलन
14.5.2.1 महिला सुधार आंदोलन की सीमाएं
14.5.3 प्रमुख स्त्री-समाज सुधारक एवं प्रमुख महिला संगठन
14.5.4 राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की भूमिका
14.5.5 महिला स्थिति का मूल्यांकन
14.6 स्वमूल्यांकित प्रश्न
14.7 सारांश
14.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

14.9 निबंधात्मक प्रश्न
14.10 संदर्भ ग्रंथ

14.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश काल में भारतीय अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का एक ज्वलंत उदाहरण है। भारतीय अर्थव्यवस्था की इस तब्दील में अंग्रेजों को नीतियों का बहुत बड़ा योगदान था। ये नीतियां क्रमबद्ध रूप में आगे बढ़ती गयी हैं तथा एक का समापन नई नीति का प्रथम सोनान था। चूंकि अंग्रेजों का प्रवेश ही भारत में सर्वप्रथम व्यापार के लिये हुआ था अतः इनकी नीतियों के केन्द्र में मुनाफा व व्यापार ही थी। व्यापार की नीतियों में एक क्रमबद्धता देखी जाती है जो उपनिवेशवाद के तीन चरणों के रूप में व्यवस्थित की गयी है। इन्हीं व्यापार नीतियों के स्वाभाविक परिणाम के रूप में विऔद्योगिकरण की प्रक्रिया सामने आती है। ब्रिटिश व्यापार नीति की खास विशेषता यह थी थी कि यह ब्रिटिश राजकोषीय नीति की पूरक भी रही पूरे औपनिवेशिक काल में। ब्रिटिश व्यापारिक व राजकोषीय नीतियों में कल्याण की भावना का नितांत अभाव नशर आते हैं। इन नकारात्मकता के बीच ये नीतियां सीमित रूप में लाभकारी भी सिद्ध हुयी क्योंकि औपनिवेशिक नीतियों ने स्वनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को तोड़कर अखिल भारतीय अर्थव्यवस्था में बदल दिया और फिर इस भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया। किंतु विऔद्योगिकरण के कारण भारतीय लोगों को इस वैश्विक जुड़ाव का कोई लाभ नहीं मिल सका। अंग्रेजों की व्यापार नीतियों के परिणामस्वरूप धन का जो निष्कासन हुआ इससे पूंजी विकास की प्रक्रिया अवरूद्ध हो गयी तथा भारत औद्योगिकरण में पीछे रह गया।

औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत महिला स्थिति एक बड़ा प्रश्न है क्योंकि यह किसी देश की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती है जो व्यापारिक दृष्टि से किसी भी देश के लिये लाभ प्रदान कर सकती है क्योंकि यह आधे बाशार का भी प्रतिनिधित्व करती है। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिये अंग्रेजों ने काफी प्रयास किये किंतु ये सारे प्रयास औपनिवेशिक मानसिकता से ऊपर नहीं उठ पाये। **1813** के बाद अंग्रेजों को बड़े बाशर का आवश्यकता थी तो महिला सुधार में तेजी लायी कई कुप्रथाओं जैसे सती प्रथा आदि पर **1013** के बाद बड़ा रूख अख़्तियार किया तो दूसरी ओर परंपरावादी भारतीय समाज उनके इस सुधार कार्यक्रमों के प्रति विरोध जागृत हुआ विशेषतः **1857** के समय तो फिर महिला सुधारों पर अंग्रेजों ने तट्स्थ रूख अपना लिया जो उनकी औपनिवेशिक मानसिकता को इंगित करता है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य ब्रिटिश व्यापार व राजकोषीय नीति तथा विऔद्योगिकरण के आंतरिक संबंधो को स्पष्ट करना है। तथा यह बताना है कि किस प्रकार ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय समाज को एक निर्धन तथा द्दणग्रस्त समाज में तब्दील कर दिया तथा किस प्रकार से भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह कृषि का क्षेत्र हो, उद्योग का क्षेत्र हो या व्यापार का क्षेत्र हो सब में अपने हितों के अनुकूल आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। अंग्रेजों की इन नीतियों का उद्देश्य केवल अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करना नहीं था बल्कि भारतीय समाज में भी जैसे स्त्रियों की स्थिति में भी अपने फ़ायदे के अनुसार परिवर्तन करना था। इन सभी जटिलताओं को इस इकाई में स्पष्ट किया गया।

14.3 व्यापार एवं राजकोषीय नीति

मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत में अनेक ऐसे कारण सक्रिय हो गये, जिससे यहाँ के व्यापार-वाणिज्य में गिरावट का दौर प्रारंभ हो गया। प्लासी युद्ध के पश्चात बंगाल के अंतर्देशीय व्यापार में अंग्रेजों की भागीदारी बढ़ गई। कंपनी के कर्मचारियों ने उन वस्तुओं पर भी अधिकार कर लिया, जिनका व्यापार उनके लिये प्रतिबंधित था जैसे नमक, तंबाकू, सुपारी आदि। बक्सर युद्ध के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था एक तरह से सक्षम औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में तब्दील हो गई, क्योंकि कंपनी को दीवानी अधिकार तो मिले ही साथ-साथ असने वैध शासन के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था पर भी नियंत्रण प्राप्त कर लिये। ब्रिटिश व्यापार नीति को समझने के लिये भारत में इसके अपनिवेशवादी चरण को समझना होगा क्योंकि अंग्रेजों की व्यापार एवं राजकोषीय नीति ब्रिटेन की शरूरतों के अनुसार हर चरण में बदलती रही निश्चित थी तो केवल एक बात हर चरण में भारत का आर्थिक दोहन ब्रिटेन के फ़ायदे के अनुसार।

उननिवेशवादी ढाँचे के तहत किसी देश का आर्थिक शोषण एवं उत्पीड़न होता है। इस ढाँचे के अंतर्गत कई प्रकार के विचारों, व्यक्तित्वों एवं नीतियों को समाहित किया जा सकता है। उपनिवेशवाद का मूल तत्व 'आर्थिक शोषण' में निहित है परंतु इसका अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं है कि एक उपनिवेश पर राजनीतिक कब्जा बनाए रखना महत्वपूर्ण नहीं। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद तीन चरणों से गुजरा और प्रत्येक चरण में अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकतानुसार अपनी व्यापार व राजकोषीय नीति में बदलाव किये। प्रसिद्ध विद्वान सनीयाम दत्त ने अपनी कृति 'इंडिया टुडे' में भारतीय औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का उल्लेखनीय चित्रण किया, जिसमें उन्होंने मार्क्स के भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद और आर्थिक शोषण के तीन चरणों वाले सिद्धांतों को आधार बनाया। वे तीन चरण निम्न हैं-

(1) वाणिज्यिक चरण **(1757-1813)**

(2) औद्योगिक मुक्त व्यापार (**1813-1860**)

(3) वित्तीय पूँजीवाद (**1860** के बाद)

17वीं व **18**वीं शताब्दी में ब्रिटिश व्यापार व राजकोषीय नीतियों का उद्देश्य भारत के साथ व्यापार तथा भारत की लूट थी। **19**वीं शताब्दी में भारत का प्रयोग ब्रिटेन में बनी हुई औद्योगिक वस्तुओं के लिये मुख्य बाशार के रूप में किया गया। **19**वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और **20**वीं शताब्दी में भारत में स्थित ब्रिटिश उद्योगपतियों द्वारा भारत में पूँजीविनियोग की प्रक्रिया आरंभ हुई**,** जिससे भारतीय श्रमिकों का बड़े पैमाने पर शोषण आरंभ हुआ।

14.31 ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरण

14.3.1.1 वाणिज्यिक चरण (1757-1813)

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के इस चरण में संपत्ति का दोहन **1757** से आरंभ होता है। क्योंकि **1757** के बाद बंगाल पर अंग्रेजों की पकड़ बन गयी। **1757** से **1765** के बीच लगभग **60** लाख पौंड की धनराशि अंग्रेजों द्वारा ब्रिटेन भेजी गयी। इस दोहन में मुख्य बात यह है कि कंपनी के व्यापारिक मुनाफे शामिल नहीं थे। अंग्रेज पहले भारतीय वस्तुएं **'**बुलियन**'** से खरीदते थे किंतु इलाहाबाद की संधि (**1765)** के बाद वे बंगाल से प्राप्त राजस्व से ही भारतीय वस्तुएँ खरीदने लगे जिन्हें वे पूंजी निवेश कहते थे। फिर इन वस्तुओं को ब्रिटेन निर्यात कर भारी मुनाफा कमाते थे। इस तरह पूंजी निवेश के द्वारा बंगाल का धन इंग्लैंड भेजा जाता रहा और इसके बदले बंगाल को किसी प्रकार का आर्थिक या भौतिक प्रतिपादन नहीं मिला। **1765-70** के बीच कंपनी ने भारतीय वस्तुओं के रूप में **40** लाख पौंड का धन बाहर भेजा जो बंगाल राज्य के कुल राजस्व का **33**प्रतिशत था। **18**वीं सदी के अंत तक भारत की राष्ट्रीय आय का लगभग **9** प्रतिशत धन बाहर भेजा गया। इस निष्कासन से प्राप्त धन राशि कंपनी के शेयर धारकों में बांटी जा रही थी। जब धन और वस्तुएँ इंग्लैंड भेजी जाने लगी तो भारत मेट्रोपोलिटन अर्थव्यवस्था का एक सहायक हिस्सा बन गया और उसे अपने भेजे गए धन और वस्तुओं के बदले किसी प्रकार का आर्थिक**,** भौतिक का व्यवसायिक लाभ प्राप्त नहीं हुआ। इस प्रकार प्रथम चरण में वाणिज्यवादी दर्शन के फलस्वरूप आयात की तुलना में निर्यात में वृद्धि कर अतिरिक्त धन उपनिवेश से बाहर भेजा जाने लगा।

14.31.2 औद्योगिक पूंजीवादी चरण (1813-1858)

उपनिवेशवाद के इस चरण में मुक्त व्यापार की नीति अपनायी गयी तथा भारत को तेजी से मैनचेस्टर और लंकाशायर के तैरूार माल का खरीददार तथा कच्चे माल के विक्रेता के रूप में विकसित किया। इससे भारत के पारंपरिक हस्तशिल्प उद्योग विशेषकर सूती वस्त्र उद्योग नष्ट होते चले गये

तथा नये उद्योगों की स्थापना नहीं कि गयी। इस तरह विऔद्योगीकरण की प्रक्रिया अस्तित्व में आयी जिससे बेराजगारों की संख्या में वृद्धि कृषि पर बोझ बड़ा तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण र्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में तबदील हो गयी। परिणामतः भारतीय आवश्यकताओं के लिये भारतीय ब्रिटिश वस्तुओं पर निर्भर होते चले गये। इसी के तहत मार्क्स ने टिप्पणी की, कि सूती वस्त्र का निर्यातक देश सूती वस्त्र का आयातक देश बना दिया गया। इससे भारत के सामने विदेशी भुगतान की समस्या उत्पन्न हो गयी । इसके समाधान के लिये भारत से नील व अफीम के उत्पादन व निर्यात को प्रोत्साहित किया गया। दूसरी और चीन के साथ भी ब्रिटेन का भुगतान संतुलन उसके पक्ष में नहीं था इस भुगतान संतुलन को संतुलित करने के लिये इंग्लैंड ने भारत और चीन के साथ जिस व्यापार संबंध की रचना की वह **'**व्यापार-त्रिकोण**'** के नाम से जाना जाता है।

1850 के बाद नई फसलों के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिये बड़े पैमाने पर बागवानी कृषि प्रारंभ की गयी किंतु इस पर वास्तविक नियंत्रण भारतीय उत्पादकों या कृषकों का न होकर ब्रिटिश निवेशकों का था। दूसरी ओर इस प्रकार के कृषि तंत्र तथा भारत से अनाज निर्यात की प्रक्रिया ने भारत में अकाल की समस्या को बढ़ाया। इस प्रकार की संपूर्ण प्रक्रिया से व्यापार-संतुलन के पक्ष में होने लगा, किंतु भारत की ब्रिटिश सरकार ने कृत्रिम रूप से व्यापार-संतुलन भारत के पक्ष में दिखाया जिससे भारतीय विनिमय में एक रकम दिखाई जा सके जिसका उपयोग गृह-व्यय के रूप में किया जा सके।

हम देखते हैं कि इस संपूर्ण चरण में ब्रिटिश व्यापार नीति किस प्रकार उनकी राजकोषीय नीति को उनके फ़ायदे के अनुसार समर्थन दे रही है तथा भुगतान संतुलन तथा गृह व्यय जैसी राजकोषीय समस्याओं का समाधान भी उनकी व्यापार नीति से निकलकर सामने आ रहा है।

14.3.1.3 वित्तीय पूंजीवादी चरण (1860 के बाद)

1857 के विद्रोह तथा महारानी के घोषणापत्र के पश्चात भारत में उपनिवेशवाद तीसरे चरण में प्रवेश करता है जो वित्तीय पूंजीवाद के नाम से जाना जाता है। इस समय तक ब्रिटेन में औद्योगिक विकास एवं औपनिवेशिक बाशारों के शोषणा के फलस्वरूप विशाल पूँजी का संकेन्द्रण हो चुका था। इस धन को अब ब्रिटेन में ही निवेश करने से उसी अनुपात में मुनाफे की गुंजाईश कम थी। इसके अलावा उद्योगपतियों की बढ़ती हुई संपत्ति से मजदूर वर्ग को संगठित होने की प्रेरणा मिली तथा मजदूरों की बढ़ती हुई शक्ति से पूँजीवपतियों का आशंकित होना स्वाभाविक था क्योंकि मजदूरों की यह शक्ति उनकी सौदेबाजी की क्षमता को बढ़ा सकती है और इसका प्रभाव मुनाफे पर पड़ता। यही वशह है कि ब्रिटिश पूंजीपतियों ने काफी बड़ी मात्रा में भारत में अपनी पूंजी का निवेश किया। इस निवेश के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे-

(1) कच्चे माल की प्रचुरता

(2) बाशार की उपलब्धता

(3) ब्रिटिश पूंजी की सुरक्षा

इस चरण की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि अब बहुत सारे ब्रिटिश नियंत्रित बैंक, वित्तीय ऐजेंसियाँ, बीमा कंपनियाँ तथा आयात-निर्यात फर्म भारत में स्थापित होने लगी। भारत में जिस ब्रिटिश पूंजी का आयात हुआ उसमें से अधिकांश पूंजी रेलवे के क्षेत्र में निवेश की गइ। यही कारण है कि इस चरण में रेलवे का अत्यधिक विकास हुआ। भारत सरकार ने रेलवे में ब्रिटिश पूंजी को आकर्षित करने के लिये प्रतिशत ब्याज की गारंटी प्रदान की गई। रेलवे में पूंजी निवेश के निम्नलिखित कारण थे-

(1) भारतीय संसाधनों को बंदरगाहों तक पहुंचाना जहां से उसे ब्रिटेन भेजा जा सके।

(2) तैयार ब्रिटिश माल को भारतीय बाजार के आंतरिक भागों तक पहुंचाना

(3) सुरक्षा के दृष्टिकोण से सैनिकों को एक जगह से दूसरी जगह भेजना।

इस प्रकार उपनिवेशवाद के विभिन्न चरणों में उसकी नीतियाँ बदलती रही किंतु उसका मूल उद्देश्य यथावत बना रहा। नीतियों में परिवर्तन परिस्थितियों से सामंजस्य बनाने का प्रयास था, वहीं उद्देश्य की एकरूपता उसके आर्थिक औपनिवेशिक स्वरूप को दर्शाता है। उपनिवेशवाद के तीनों चरणों में जो सबसे सामान्य बात थी वह थी-धन का निष्कासन। प्रत्येक चरण का उद्देश्य मूलतः भारत से इंग्लैंड की ओर धन का निष्कासन था।

14.3.2 धन का निष्कासन

धन के निकासी से हमारा तात्पर्य है भारत की राष्ट्रीय संपदा अथवा कुल राष्ट्रीय उत्पादन का एक भाग इंग्लैंड निर्यातित किया जा रहा था जिसके बदले में भारत को कोई आर्थिक या भौतिक लाभ नहीं मिल रहा था। दूसरे शब्दों में भारत को धन के निष्कासन के माध्यम से परोक्ष रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये ‘खिराज’ या ‘नजराना’ देने के लिये बाध्य किया जा रहा था। धन का निष्कासन या आर्थिक निष्कासन शब्द का उदय वाणिज्यिक सोच के अंतर्गत हुआ जो निर्यात अधिशेष के परिप्रेक्ष्य में विवेचित की गयी। यह शब्द **19**वीं सदी के उत्तरार्द्ध में आया था जिसका अभिप्राय था ‘भारत से इंग्लैंड की ओर धन की निकासी। इस सिद्धांत का प्रतिपादन सर्वप्रथम दादा

भाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया में किया। नौरोजी ने अपने आरंभिक तीन लेखों में इस सिद्धांत पर प्रकाश डाला था।

नौरोजी के सिद्धांत का समर्थन रमेशचंद्र दत्त ने भी अपनी पुस्तक में किया है। रजनीपाम दत्त ने निकासी की इस पूरी प्रक्रिया को समझाने के लिये उसे तीन चरणों में विभाजित किया है। जिसे उपनिवेशवाद का तीन चरण कहा गया है जिसका विश्लेषण पहले ही किया जा चुका है। यद्यपि ये विभाजन अध्ययन की सुविधा के लिये किया गया था तथापि यह विभाजन उपनिवेशवादी भारतीय अर्थव्यवस्था की निरंतरता एवं परिवर्तन की जानकारी देने में भी सहायक रहा।

यहाँ होना यह चाहिए था कि जो पौंड-स्टर्लिंग बोर्ड ऑफ कंट्रोल / भारत सचित के कार्यालय में जमा हुआ था, उसे भारत सरकार को स्थानांतरित कर दिया जाना चाहिए लेकिन ऐसा नहीं हो सका और इसका समायोजन गृह-व्यय के रूप में कर लिया गया, अर्थात भारत में ब्रिटेन से कोई धन नहीं आया और भारतीय धन से ही भारतीय वस्तुओं को खरीदकर ब्रिटेन निर्यात कर दिया गया। यही धन का निष्कासन है। चाँदी पर आधारित भारतीय मुद्रा और सोने पर आधारित ब्रिटिश पौंड के विनिमय दर का निर्धारण ब्रिटिश सरकार हमेशा अपने पक्ष में करती थी जिससे उन्हें भारतीय वस्तुएं और भी अधिक सस्ते दर पर प्राप्त हो जाती थी। यह विनियम दर भी निष्कासन का एक रूप था।

भारत से धन के निष्कासन का एक और रूप या जो भारत में ब्रिटिश अधिकारी तथा ब्रिटिश व्यापारी के माध्यम से होता था। वे निम्नलिखित रेखाचित्र से समझा जा सकता है।

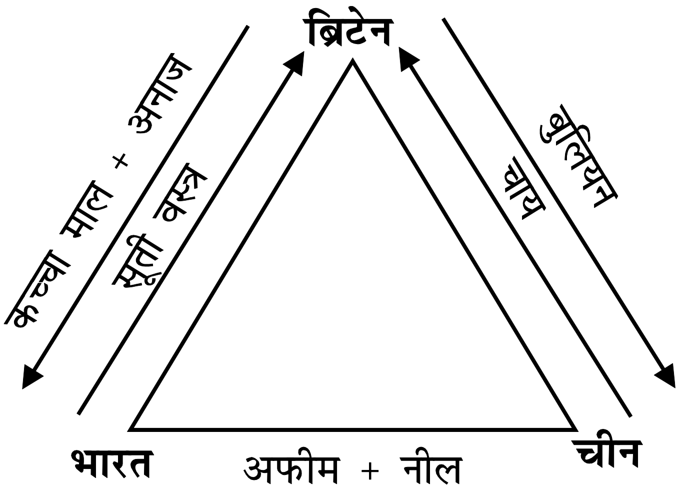

यदि भारत सरकार के पास जमा धन ब्रिटिश सरकार के पास जाता तो यह निष्कासन का एक सरल रूप होता, लेकिन इस धन के एवज में ब्रिटिश सरकार भारत से कच्चा माल तथा अनाज आयातित करती थी जिससे निष्कासन की वास्तविक मात्रा बढ़ जाती थी। विडंबना यह भी थी कि इन वस्तुओं

का मूल्य निर्धारण भी ब्रिटेन के हित में किया जाता था। यहाँ तक की इन वस्तुओं को जिस जहाज रानी कंपनियाँ, बैंकिंग कंपनियां, आयात-निर्यात फर्म, बीमा कंपनियों का प्रयोग किया जाता था उन सब पर ब्रिटिश पूंजीपतियों का नियंत्रण था और इस तरह ये मुनाफे भी उसी के खाते में जाते थे।

गृह व्यय की राशि वह राशि थी जो ब्रिटेन, भारत में अपने शासन के एवज में वसूलती थी। इसमें ब्रिटिश अधिकारियों का वेतन, पेंशन, सेना का खर्च, सैन्य सामग्रियों की खरीददारी रेलवे में लगी पूंजी पर दिया जाने वाला ब्याज और म्ब्ब् को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की रकम भी शामिल थी। यदि इस गृह व्यय की राशि निर्यात अधिशेष से अधिक होती थी तो इस अंतर को भारत सरकार पर कर्श मान लिया जाता था और इस कर्श पर ब्याज लगता था तो भी चक्रवृद्धि ब्याज। आगे ले जाने की यह स्थिति भी धन के निष्कासन का रूप था।

14.3.2.1 धन के निष्कासन से संबंधित वाद-विवाद

धन का निष्कासन ब्रिटिश कालीन भारत की एक महत्वपूर्ण सच्चाई थी। और इस सच्चाई को सभी विचारधाराओं के विद्वानों ने स्वीकारा भी केवल साम्राज्यवादी इतिहासकार इस सिद्धांत को पूरी तरह खारिश करते है। धन के निकासी की जो सच्चाई थी इसकी स्वीकार्यता को लेकर राष्ट्रवादी व साम्राग्रवादी विद्वानों में बहस होती रही। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इसे भारत की गरीबी का एक प्रमुख कारण माना है। इसी धन के निष्कासन के कारण गरीबी पनपी और इसी ग्रामीण ने ग्रामीण ट्टणग्रस्तता का रास्ता प्रशस्त कर दिया। दूसरे शब्दों में भारतीय गरीबी ब्रिटिश शासन की देन है न कि मुगलों की। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने आगे कहा है कि राष्ट्रीय धन का विदेशों में स्थानान्तरण का एक महत्वपूर्ण एवं नकारात्मक प्रभाव दे के अंदर भी अनाथ व रोजगार पर पड़ा परिणामस्वरूप भारत में औद्योगिकरण के लिये आवश्यक पूंजी का अभाव हो गया जिसके कारण औद्योगिकरण संभव नहीं हो सका। यही कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की निर्भरता ब्रिटिश पूंजी पर बढ़ती चली गयी।

राष्ट्रवादी चिंतक नौरोजी एवं आर.सी. दत्त एवं अन्य ने धन की निकासी की तीव्र आलोचना की और इसे उन्होंने भारत की दरिद्रीकरण का कारण माना। दूसरी तरफ मारिसन जैसे ब्रिटिश पक्षधर विद्वान धन के निकासी की स्थिति को अस्वीकार करते हैं। उनके द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है गृह व्यय की राशि बहुत अधिक नहीं थी और फिर यह रकम भारत के विकास के लिये आवश्यक थी। उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि ब्रिटिश ने भारत में अच्छी सरकार दी तथा यहाँ यातायात और संचार व्यवस्था तथा उद्योगों का विकास किया और फिर ब्रिटिश ने बहुत ही कम ब्याज पर अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बाशार से एक बड़ी रकम भारत को उपलब्ध करवायी। दूसरी तरफ़ राष्ट्रवादी विद्वानों का कहना था कि भारत को वह पूंजी की शरूरत नहीं थी

जो ब्रिटिश ने उस समय उसे उपलब्ध कराई। दूसरे अगर भारत में स्वयं पूंजी संचय हुआ होता तो फिर उसे कर्ज लेने की शरूरत नहीं होती। धन निकासी की व्याख्या में राष्ट्रवादियों ने इस बात पर भी जोर दिया कि निकासी के कारण भारत ने न केवल वर्तमान में रकम खो दी वरन् भारत उस लाभ से वंचित रह गया जो उस रकम को निवेशित करने से उसे प्राप्त होता।

धन की निकासी के संबंध में मार्क्सवादी इतिहासकारों का कहना है कि राष्ट्रवादियों की इस अवधारणा को सिद्ध करना कठिन है, क्योंकि, प्रथमता राष्ट्रवादियों ने निकासी को विशुद्ध पूंजी मान लिया लथा द्वितीय उस समय के भारतीय कुलीन तथा नवाब जो मुख्यतः इन संसाधनों पर आधिपत्य जमाए हुए थे, वे कर अधिशेष का उचित प्रयोग नहीं किए। अतः यह कहना कठिन है कि निकासी की धन राशि भारतीय कुलीन वर्ग द्वारा भी निवेश में ही प्रयोग की जाती। कुल मिलाकर राष्ट्रवादियों के आलोचना को मार्क्सवादियों ने एक सीमा बता दी लेकिन फिर भी मार्क्सवादी इस बात को मानते हैं कि धन की निकासी न होती तो बहुत ज्यादा न सही लेकिन फिर भी भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका सकारात्मक असर पड़ता है।

उपरोक्त विश्लेषन से यह बात स्पष्ट होती है कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर इस निकासी का नकारात्मक प्रभाव पड़ा और एक ऐसे समय इस धन का निष्कासन हो गया जब भारत में पूंजीवादी संभव हो सकता था। इस सिद्धांत का महत्व इस बात में है कि इसने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के स्वरूप को उशागर कर दिया जो संभवतः उदारवादी राष्ट्रवादियों का भारतीय आंदोलन में सबसे बड़ा योगदान था।

14.3.3 ब्रिटिश व्यापार व राजकोषीय नीति का मूल्यांकन

ब्रिटिश व्यापार व राजकोषीय नीति का भारतीय अर्थव्यवस्था पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव अत्यंत न्यूनरूप से सकारात्मक था तथा वृद्ध रूप से नकारात्मक था। सकारात्मकता यहीं थी कि इस नीति से भारतीय अर्थव्यवस्था एक बार चरण में प्रवेश की जबकि नकारात्मक बिंदुओं में प्रथमतः या धन का दोहन। यह दोहन भारत से किया गया तथा ब्रिटेन भेजा गया जिससे यहां पूंजी का अभाव तथा निर्धनीकरण हुआ दूसरी ओर ब्रिटेन में इसी से औद्योगिक क्रांति हुयी। इस दोहन से कृषि-उद्योग संबंध वाली परंपरागत आर्थिक संरचना का विघटन हुआ; शिल्पकार, दस्तकार बेरोजगार हुयेऋ विऔद्योगिकरण बढ़ा, कृषि पर बोझ बड़ा, बागवानी फसलों को प्रोत्साहन दिया गया तथा खाद्यान्न का अभाव हुआ जिससे अकालों की बारंबारता बड़ी, ग्रामीण ऋणग्रस्तता और ग्रामीण गरीबी में वृद्धि हुयी तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में ठहराव आया। ब्रिटिश व्यापार व राजकोषीय नीति का सत्य मद्रास के बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के अध्यक्ष जोन सुलविन के इस कथन से प्रकट होता है जिसमें उन्होंने कहा है कि ‘‘हमारी प्रणाली बहुत हद तक स्पंज का काम करती है जो गंगा के तट से सभी अच्छी चीजों को सोखकर टेम्स के मुहाने पर निचोड़ देती है।’’

14.4 अव-औद्योगिकरण

अव-औद्योगिकरण से तात्पर्य किसी भी राष्ट्र की औद्योगिक क्षमता में गिरावट से है। किसी भी अर्थव्यवस्था में यह स्थिति तब आती है जब उद्योगों का अंशदान कम होता जाता है और गैर औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान बढ़ता हाता है। दूसरे शब्दों में जब अर्थव्यवस्था में द्वितीयक क्षेत्र की भागीदारी कम होती जाती है और प्राथमिक क्षेत्र की भागीदारी बढ़ती जाती है तो स्थिति अव-औद्योगिकरण की होती है। ब्रिटिश भारत के काल में भारतीय अर्थव्यवस्था को भी एक ऐसी ही स्थिति से गुजरना पड़ा जिसके लिये अव-औद्योगिकरण शब्द का प्रयोग किया जाता है।

अव-औद्योगिकरण का विचार प्रथमतः दादा भाई नौरोजी ने **19**वीं सदी के अंत में दिया था, जिसका समर्थन बाद में रमेशचंद्र दत्त जैसे विद्वानों ने किया। नौरोजी और दत्त ने इस प्रक्रिया की तार्किक व्याख्या की है और आँकड़ों के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है की भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति का सीधा परिणाम था- अव-औद्योगिकरण। वहीं साम्राज्यवादी इतिहासकारों, जिसमें डी. थार्वट और माटिश-डी-मॉरिश प्रमुख हैं, इस विचार का खंडन करते हुये इसे एक मिथक बताया ओर कहा ‘‘भारत में उद्योगों का पतन अपरिहार्य था क्योंकि भारतीय उद्योग आधुनिकीकरण की कीमत चुका रहे थे।’’ इस प्रकार ब्रिटिश शासन के अधीन भारत की अर्थव्यवस्था के रूपांतरण को लेकर ब्रिटिश राज आलोचकों और उसके प्रवक्ताओं के बीच बहस होती रही है।

किंतु, भारतीय हस्तशिल्प उद्योग का विनाश ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का स्वाभाविक परिणाम था क्योंकि जब प्राक् उत्पादन प्रणाली पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से जुड़ती है तो इस परिवर्तन के क्रम उसका टूटना अनिवार्य है। इसकी खना के उपाय कृत्रिम और अप्राकृतिक होंगे, ऐसी मार्क्सवादी अवधारणा है। उदाहरण के लिये इंग्लैंड एवं अन्य यूरोपीय देशों को भी इस प्रक्रिया से गुजरना पड़ा, लेकिन यहाँ उल्लेखनीय तथ्य है कि उन देशों की स्थिति भारत से भिन्न थीऋ वहाँ हस्तशिल्प के विनाश के साथ-साथ फैक्ट्री प्रणाली विकसित हुई। इस फैक्ट्री प्रणाली से अधिक उत्पादन हुए और अधिक उत्पादन से अधिक रोजगार उत्पन्न हुए। अधिक रोजगार से अधिक आय और अधिक आय अधिक बचत हुई और इस बचत का उपयोग निवेश में किया गया। इस प्रकार यूरोपीय देशों में इस प्रक्रिया से एक सुचक्र बना यही कारण है कि इंग्लैंड एवं अन्य यूरोपीय देशों में हस्तशिल्प के विनाश के साथ ही आधुनिक उद्योगों की स्थापना हुई अर्थात पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की शुरुआत हुई, जिससे इन देशों में समृद्धि आई।

लेकिन भारत की स्थिति ब्रिटेन सहित अन्य यूरोपीय देशों से अलग थी। यहाँ हस्तशिल्प का विनाश तो हुआ किंतु उसकी क्षतिपूर्ति में फैक्ट्री प्रणाली का विकास नहीं हो पाया जो आधुनिक उद्योगों का

आधार बनते। स्वभावतः भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा। हस्तशिल्प उद्योगों के ह्रास से ग्रामीण मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुयी क्योंकि कारीगर एवं दस्तकार काम के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पलायन कर गए। परिणामस्वरूप व्यक्ति और कृषि को संतुलन बिगड़ गया क्योंकि जिस अनुपात में कृषि में लोगों की निर्भरता बढ़ी उसी अनुपात में कृषि की उत्पादकता में वृद्धि नहीं हुई। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि कृषि, जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ थी, टूट गई।

कार्ल मार्क्स से लेकर रमेशचंद्र दत्त तक सभी विद्वानों ने **18**वीं सदी के उत्तरार्द्ध और पूरी **19**वीं शताब्दी के दौरान भारत में हुए अव-औद्योगीकरण और उसके फलस्वरूप हुए विनगरीकरण के पक्ष में काफ़ी प्रमाण एकत्रित किए हैं। मार्क्स ने टिप्पणी की सूती वस्त्र के निर्यातक देश को सूती वस्त्र के आयातक देश में तब्दील कर दिया गया। वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश पक्षधर इतिहासकार इसका खंडन करते हैं और कहते हैं कि यदि भारतीय लोगों को सस्ता ब्रिटिश वस्त्र उपलब्ध होगा तो वे इसे और अधिक उपयोग में ला सकते हैं। यदि दस्तकार और शिल्पियों को रोजगार नहीं किलता है तो वे कृषि अर्थव्यवस्था से जुड़ सकते हैं और वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपी महत्वपूर्ण भागीदारी निभा सकते हैं।

साम्राज्यवादी इतिहासकार मॉरीस यह नहीं मानते कि कुटीर उद्योग विशेष कर दस्तकारी उद्योग में जो गिरावट आई, वह ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की देन है। वे इसके पतन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में देखते हैं जो निम्नलिखित हैं।

(1) भारत में राजनीतिक एकता व स्थिरता का अभाव था जिससे प्रशासनिक व्यवस्था का विकास नहीं हो पाया।

(2) भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का तकनीकि ज्ञान व उत्पादन का स्तर अत्यंत निम्न था।

(3) सिंचाई के साधन विकसित अवस्था में नहीं थे।

(4) परिवहन व संचार व्यवस्था नहीं थी।

(5) मुद्रा के रूप में धातुओं का प्रचलन सीमित था।

इन परिस्थितियों में भारत का उत्पादन स्तर मध्यकालीन सामंती यूरोप के समान था।

मॉरीस का यह भी मानना है कि जनसंख्या में वृद्धि और खपत की आदतों में परिवर्तन के कारण मांग में काफी वृद्धि हो रही और भारत का बाजार इतना बड़ा था कि वह एक ही साथ भारतीय हस्तशिल्प उत्पाद एवं मैनचेस्टर एवं लंकाशायर के उत्पाद की खपत कर सकता था। अतः भारतीय

बुनकरों को मैनचेस्टर या लंकाशायर के आयातित वस्त्रों ने बाजार से नहीं हटाया बल्कि वह अपनी अंतर्निहित कमजोरियों के कारण स्वयं बाजार से बाहर हो गया। साथ ही मॉरीस ने यह भी कहा है कि ब्रिटेन से आयातित धागों से भारतीय बुनकरों को लाभ प्राप्त हुआ और अब वे ब्रिटिश वस्तुओं का बेहतर मुकाबला करने में सक्षम थे।

प्रसिद्ध इतिहासकार सुमित सरकार ने मॉरीस सहित सभी साम्राज्यवादी इतिहासकारों के विचारों को अस्वीकार करते हुए कहा है कि उनका दिया गया तर्क संदिग्ध है क्योंकि उन्होंने अपने तर्कों को प्रमाणित करने के लिये कोई सांख्यिकीय आँकड़े प्रस्तुत नहीं किए हैं। वे सस्ते धागे के संबंध में करते हैं कि मॉरीस ने इस बात की अपेक्षा की है कि-

(1) सूत काटने वाले का धंधा बंद हो गया और वे बेरोजगार हो गये।

(2) बुने हुए वस्त्रों की कीमत में गिरावट के कारण बुनकरों को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि प्रौद्योगिकी के विकास में कमी के कारण भारतीय उत्पादन की लागत में इंग्लैंड की तुलना में अपेक्षाकृत कम कमियाँ हुई।

(3) सूत की तुलना में ब्रिटिश कपड़ों की कीमतें और ज्यादा कम हो गयी थी।

इन तर्कों के आधार पर सुमीत सरकार का मानना है कि जहाँ लंकाशायर और मैनचेस्टरों के उत्पादकों को कताई और बुनाई दोनों की लागत कम होने का लाभ प्राप्त हुआ वहीं दूसरी और भारतीय बुनकरो को यद्यपि सस्ते आयातित धागे का लाभ तो प्राप्त हुआ लेकिन उन्नत प्रौद्योगिकी का लाभ नहीं मिल पाया, जिससे भारतीय वस्त्रों की उत्पादन लागत ब्रिटिश वस्त्रों की उत्पादन लागत से अपेक्षाकृत अधिक थी यही कारण है कि वे आयातित ब्रिटिश वस्त्रों का मुकाबला नहीं कर सके।

प्रसिद्ध विद्वान विपिन चंद्रा का मानना है कि मॉरीस का यह तर्क गलत हे कि भारत में औद्योगिकरण की परिस्थितियाँ अस्तित्व में थी। औद्योगिकरण का ब्रिटिश मॉडल ब्रिटेन के लिये उपयुक्त था न कि भारत के लिये। यहाँ तक की रेलवे में भी जो भारी पूंजी निवेश किया गया और इस पूंजी निवेश द्वारा जिस रेलवे का विकास किया गया वह भारतीय जरूरतों की बजाय ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों की जरूरतों के अनुरूप था। यद्यपि इस समय ब्रिटेन के पास विश्व की सबसे अधिक अत्याधुनिक तकनीक थी लेकिन इस तकनीक का भारतीय उत्पादन प्रणाली में कोई योगदान नहीं था। कृषि के वाणिज्यिकरण से कुछ लाभ अवश्य मिला लेकिन यह लाभ भी विदेश भेज दिया गया। परिणामतः कृषि उत्पादकों को इस वाणिज्यीकरण से कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि यह स्वतः स्फूर्त नहीं था

और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के दबाव में लाया गया था। भारत की बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था भी ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के अनुरूप थी न कि भारतीय हितों के।

प्रसिद्ध विद्वान तपन राय चौधरी का विचार है कि भारत में वाणिज्य और व्यापार विकसित अवस्था में था। समुद्री तटों एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों जैसे कोरोमंडल तट, मालाबार तट तथा कोंकण तट आदि क्षेत्रों में पूंजी विकास की पर्याप्त संभावनाएं थी। उन्होंने मॉरीस के उस तर्क की आलोचना की है जिसमें कहा गया है राजनीतिक अस्थिरता औद्योगिकरण के मार्ग में बाधक थी क्योंकि कई प्रमुख यूरोपीय देश जैसे-जर्मनी, इटली, नीदरलैंड आदि देशों में राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद औद्योगिकरण हुआ। **1860** एवं **1870** के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था की विशालता उस समय के जापान के कुल उत्पादन और बाजार क्षेत्रों से रहीं आगे थी। अब भारत में भी जापान एवं अन्य यूरोपीय देशों की तरह तत्कालीन परिस्थितियों में मी औद्योगिकरण संभव था। राय चौधरी का मानना है कि भारतीय औद्योगिकरण की वास्तविक कठिनाई यह थी कि भारत में इसके लिये पूंजी का जमाव नहीं हो पाया क्योंकि औद्योगिकरण के लिये जिस पूंजी की आवश्यकता थी उस पूंजी का निष्कासन अंग्रेजों द्वारा उस समय कर लिया गया जिस समय भारत में इसकी सबसे ज्यादा आवश्यकता थी।

भारत में औद्योगिकरण के पक्ष में तर्क देते हुए राष्ट्रवादी इतिहासकारों विशेषकर दादा भाई नौरोजी एवं रमेशचंद्र दत्त ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि ब्रिटिश काल में भारत में काफी तेजी से अव-औद्योगिकरण हो रहा था। अपने विचारों की पुष्टि के लिये उन्होंने सांख्यिकीय आँकड़े प्रस्तुत किए हैं जो **1881** से **1931** तक के जनगणना पर आधारित है, जिसके अनुसार पुरुष कार्यशक्ति **65** प्रतिशत से बढ़कर **72** प्रतिशत हो गयी जबकि औद्योगिक क्षेत्र में यह **16** प्रतिशत से घटकर **9** प्रतिशत हो गयी। ऐसा ही आँकड़ा महिला-श्रमशक्ति के संबंध में भी प्रस्तुत किया गया।

डेनियल एवं एलिस थार्नर अपने लेख में कहा है कि उपरोक्त आँकड़े भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि श्रेणीबद्ध अस्पष्टता पर आधारित है क्योंकि कृषि कार्य को दूसरी श्रेणियों, सामान्य श्रमिकों और इसी तरह के अन्य श्रमिकों के साथ मिला दिया गया है, वहीं दूसरी ओर व्यापार से जुड़े श्रमिकों को औद्योगिक वर्ग के श्रमिकों के साथ नहीं रखा गया है। अगर ऐसा किया जाए तो पूरा परिदृश्य ही बदल जाएगा और औद्योगिक क्षेत्र में गिरावट मात्र **3** प्रतिशत हो जाएगी। आगे थार्नर ने महिला श्रम शक्ति से संबंधित आँकड़े को भी इसी आधार पर गलत बताया है और कहा है कि जनगणना अधिकारियों ने सही आँकड़े एकत्रित नहीं किए हैं। इस विश्लेषण के आधार पर थार्नर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनगणना संबंधी अव-औद्योगिकरण का कोई समुचित आधार प्रस्तुत नहीं करते।

कृष्णामूर्ति और आमिया बागची ने थार्नर के विचारों का खंडन किया है लेकिन इन दोनों विद्वानों के खंडन का आधार अलग-अलग है। जहाँ कृष्णमूर्ति ने तात्कालीन वितरणों को अपने अध्ययन का

आधार बताया है वहीं बागची ने अपन बात कहने के लिये सांख्यिकीय आँकड़े का प्रयोग किया है। कृष्णामूर्ति ने एक ब्रिटिश अधिकारी हेमितटन के विवरणों को उद्धत किया है जिसके अनुसार बिहार के गंगा के मैदान में सूती वस्त्र काफी विकसित अवस्था में थे। उच्च कोटि के रेशमी और सूती वस्त्र ढाका और मुर्शिदाबाद में निर्मित होते थे, लेकिन देशी रजवाड़ों के पतन और भारतीयों की क्रमशक्ति में कमी के कारण इन उद्योगों का पतन हो गया। कृष्णमूर्ति ने एक-दूसरे सर्वे को लिया है जो **1864** में पटना के तात्कालीन कमिशनर द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जिसमें कहा गया है कि सूती-वस्त्र अद्योग जो **20** वर्ष पहले अधिक विकसित अवस्था में था अब मैनचेस्टर एवं लंकाशायर के आयातित वस्त्रों के कारण पतन की ओर है। कृष्णामूर्ति ने तीसरा सर्वे लिया है जो **1874** की रिपोर्ट पर आधारित है जिसमें कहा गया है कि घरेलू उपयोग के लिये निर्मित वस्तुएँ बाशार से बाहर हो गयी है और उसका स्थान ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं ने लिया है। कृष्णामूर्ति ने चौथा सर्वे लिया है **1892** का, एक आकलन हे जिसके अनुसार इंग्लैंड में निर्मित वस्तुओं के कारण भारतीय वस्तुएँ हासिए पर चली गयी। उपरोक्त सर्वेक्षणों के आधार पर कृष्णामूर्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत न सिर्फ सूती व रेशमी वस्त्र उद्योग वरन् अन्य कूटीर उद्योगों में भी गिरावट आई और इस उद्योग में लगे लोग दूसरे व्यवसायों की ओर स्थानांतरित होते चले गय। इस पतन के लिये ब्रिटिश आर्थिक नीति सीधे तौर पर जिम्मेदार थी।

आमिया बागची ने अपने लेख (**1809-1901**द्ध में **19**वीं सदी के आरंभ में बिहार के अनेक जिलों के 'बुखान-हेमिल्टन सेंक्षण' एवं **1901** के जनगणना के आँकडों को सावधानीपूर्वक तुलना करने का प्रयास किया है। उन्होंने इन आँकड़ों के आधार पर यह दर्शाया है कि उद्योगों पर आश्रित जनसंख्या **18** प्रतिशत से घटकर **8** प्रतिशत रह गयी थी तथा सूत काटने वाले और बुनने वालों की संख्या में भारी कमी हुई थी। इन आँकडों के आधार पर बागची का मानना है कि ब्रिटिश शासनकाल में भारत में अव-औद्योगीकरण का दौर आया था।

अव-औद्योगीकरण के संबंध में एक रोचक तथ्य यह है कि इसका प्रभाव सभी परंपरागत उद्योगों पर एक समान नहीं पड़ा। कुछ ऐसे देशी उत्पाद व व्यवसायी थे जिसका विकल्प विदेशी आयात नहीं दे सकते थे। कुम्हार, लोहार एवं बढ़ई के शिल्प भी पूर्ववत् अस्तित्व में बने रहे। दूसरी ओर ग्रामीण इलाकों में बहुत से स्थानों पर एकीकृत बाजार उपलब्ध नहीं थे। इस वशह से बहुत से विदेशी उत्पाद गाँव तक नहीं पहुँच सके। इसके अतिरिक्त रोजगार का कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं होने के कारण अनार्थिक होने के बावजूद कुछ शिल्प उद्योग जबरन अस्तित्व में बने रहे। दूसरे शब्दों में, अव-औद्योगीकरण के दौर में भी कुछ शिल्पों का अस्तित्व बना रहा।

14.4.1 अव-औद्योगीकरण का प्रभाव

अव-औद्योगिकरण का भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत ही घातक प्रभाव पड़ा विशेषकर इसलिये भी कि इसके समानान्तर भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं हो सका जैसा कि ब्रिटेन सहित यूरोप के दूसरे देशों में हुआ था। अव-औद्योगिकरण के प्रभाव से भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन के चित्र दृष्टिगोचर होते हैं-

(1) हस्तशिल्प उद्योगों के पतन के कारण इस उद्योग से जुड़े तमाम शिल्पी और दस्तकार बेरोजगार हो गए। इस बेरोजगारी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये अनेक समस्याएँ खड़ी कर दी।

(2) कारीगर और दस्तकार कोई अन्य विकल्प न देखकर कृषि अर्थव्यवस्था की ओर मुड़ गए, लेकिन कृषि बहुत बड़ी जनसंख्या को आत्मसात करने में असफल रही। जिस अनुपात में कृषि से जुड़े लोगों में वृद्धि हुयी उसी अनुपात में उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई। इससे कृषि और जनसंख्या के बीच का संतुलन बिगड़ गया।

(3) कृषि पर जनसंख्या के अत्यधिक दबाव ने ग्रामीण गरीबी को जन्म दिया। इस ग्रामीण गरीबी ने ग्रामीण ट्टणग्रस्तता का मार्ग प्रशस्त किया।

(4) ग्रामीण ट्टणग्रस्तता ने ग्रामीण बचत को सीमित कर दिया। बचत में कमी के कारण ये विकास कृषि में निवेश करने में सक्षम नहीं रहे और निवेश के अभाव में नवीन-प्रौद्योगिकी का ये प्रयोग नहीं कर पाए।

(5) अव-औद्योगीकरण के कारण कृषि अर्थव्यवस्था ने भविष्य में होने वाले औद्योगीकरण के लिये वह आधार प्रदान नहीं किया जो आधार यूरोपीय देशों को मिला था।

(6) अव-औद्योगीकरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में मंदी या ठहराव का दौर आया। यही वशह है कि भारतीय उद्योगों में निवेश करने से बचते रहे।

(7) इन सबका सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि भारतीय अर्थव्यवस्था गरीबी के दुष्चक्र में फँस गयी जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का समुचित विकास नहीं हो पाया।

अव-औद्योगीकरण की इस प्रक्रिया के विश्लेषण से इसकी वृहद नकारात्मकता निकल कर सामने आती है। बहुत ही सीमित मात्रा में इसका एक ही सकारात्मक लक्षण था जो यह था कि हस्तशिल्प उद्योग पूंजीवादी उद्योगों का पूर्व रूप होते हैंऋ अतः इनका पतन आधुनिक उद्योगों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। इस तरह सैद्धांतिक दृष्टि से भारत में यह मार्ग प्रशस्त हुआ जो व्यवहार में

ब्रिटिश काल तक तो नहीं आया। विऔद्योगीकरण की इस प्रक्रिया में परंपरागत उद्योगों के पतन के साथ आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं हुआ। फलतः बेरोजगारी में वृद्धि हुई, जिससे कृषि पर बोझ बढ़ा, उत्पादन में कमी आयी, अकाल की संख्या में वृद्धि हुयी, भारत एक पिछड़े निर्धन कर्शदार देश के रूप में सामने आया जो भारतीय औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का प्रमुख अभिलक्षण बन गया।

14.5 महिला स्थिति

भारतीय समाज प्राचीन काल से एक परंपरावादी प्रवृत्ति को धारण किये हुये था। यहां की पारिवारिक व्यवस्था पित्सत्तात्मक थी। संपत्ति में दाय भाग पर सिर्फ पुरुषों का ही हिस्सा था। **18**वीं सदी का भारत भी इसी प्रवृत्ति के साथ आगे बढ़ रहा था परिवार में वरिष्ठ पुरुष सदस्य को विशेष स्थिति प्राप्त थी। केरल में नायर समाज ही एकमात्र मातृप्रधान समाज था इसके अलावा हर जगह औरतों पर पुरुषों का लगभग पूरा नियंत्रण था। उनसे आशा की जाती थी कि वे माताओं और पत्नियों की ही भूमिका निभाएं। इन रूपों में उनको काफी आदर-सम्मान दिया जाता था। यद्यपि **18**वीं सदी की राजनीति में कुछ महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिकाएं भी निभाई है। अहिल्या बाइ ने इंदौर पर **1766** से **1796** तक बड़ी सफलता के साथ शासन किया। इनके अलावा कई मुसलमान महिलाओं ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उच्च वर्ग की महिलाओं को घर से बाहर काम नहीं करना होता था मगर कृषक औरतें आम तौर से खेतों में काम करती थी और गरीब वर्गों की औरतें परिवार की आमदनी में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन करती थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन मुख्यतः उत्तर भारत में था इसके पीछे मूलतः यहां की तात्कालिक स्थिति जिम्मेदार थी जिसने निरंतर वाहय आक्रमणों का सामना किया थाः दक्षिण भारत में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। बाल विवाह प्रथा सारे देश में प्रचलित थी। दुलहन को दहेज देने की प्रथा भी व्यापकता के साथ प्रचलित थी जिसमें बंगाल व राजपुताना प्रमुख थे किंतु महाराष्ट्र में पेशवा ने इसे प्रभावशाली ढंग से दबा दिया गया था।

14.5.1 महिलाओं के प्रति व्याप्त सामाजिक कुरीतियाँ

18वीं सदी के भारत में दो बड़ी सामाजिक कुरीतियों में सती प्रथा व विधवाओं की खराब स्थिति थी। इसके अलावा शिशु वध व स्त्री शिक्षा भी भारतीय समाज के लिये चुनौती थी।

14.5.1.1 सती प्रथा

इस प्रथा के अंतर्गत एक विधवा अपने मृत पति के शव के साथ जल भरती थी। यह प्रथा मुख्यतः राजपुताना, बंगाल, उत्तरी भारत के अन्य हिस्सों में प्रचलित थी। यह प्रथा दक्षिण भारत में प्रचलित नहीं थी व मराठों ने इसे बढ़ावा नहीं दिया।

14.5.1.2 विधवाओं की स्थिति

भारतीय समाज में विधवाओं से यह आशा की जाती थी कि वह सांसारिक सुखों का त्याग कर दें और पति के परिवार के सदस्यों की निःस्वार्थ सेवा करें। इनका जीवन अत्यधिक कठोर था। हिंदु विधवा की अवस्था आमतौर पर बहुत दयनय होती थी। उसके कपड़े, भोजन, आने-जाने आदि पर सब प्रकार के प्रतिबंध थे।

14.5.1.3 शिशु वध

मध्यकालीन भारत से ही यह प्रथा विशेष रूप से बंगालियों एवं राजपूतों में प्रचलित थी। बचपन में ही बालिकाओं को आर्थिक व सामाजिक प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानकर उनकी हत्या कर दी जाती थी। हत्या का जो सामान्य प्रचलित तरीका था - वह शिशुओं को मादक पदार्थ देकर अथवा भूखा रखकर हत्या करना था। महाराजा रणजीत सिंह के पुत्र दिलीप सिंह ने उल्लेख किया है कि 'उसने स्वयं अपने नेत्रों के सामने अपनी बहनों को बोरी में बंद कर नदी में फेंकते हुए देखा हैं।

14.5.1.4 स्त्री शिक्षा

वैदिक काल के उपरांत ही स्त्रियों के शिक्षा स्तर में निरंतर ह्रास होता गया। 19वीं सदी आते-आते स्त्री शिक्षा की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गयी। इस काल में मनगढंत जनश्रुति प्रचलित थी कि हिन्दू शास्त्रों में स्त्री शिक्षा की अनुमति नहीं है और शिक्षित स्त्री को देवता लोग वैधव्य का दंड देते हैं।

14.5.2 महिला सुधार आंदोलन

19वीं सदी में नवीन विचारधारा तथा दृष्टिकोण से समाज सुधारकों का ध्यान सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न पक्षों की ओर गया। इसी प्रक्रिया में महिलाओं की दशा में सुधार का प्रश्न प्रमुख चुनौती के रूप में उभरा। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस विचारधारा को बल प्रदान किया। चेम्स मिल जैसे ब्रिटिश चिंतकों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि किसी भी समाज में महिलाओं की दशा उस समाज के विकास के स्तर को दर्शाती है। इसके अलावा ईसाई मिशनरियों ने भी महिलाओं की दयनीय दशा को सुधारने का प्रयास किया। किंतु इस दिशा में प्रथम सशक्त प्रयास राजा राममोहन राय ने किया।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध आरंभिक प्रभावशाली आंदोलन चलाया। यद्यपि मध्यकाल में अकबर व मराठा पेशवाओं ने भी इस क्रूर प्रभा पर रोक लगायी। ब्रिटिश राज्य में अंग्रेजों की नीति इसके प्रति तटस्थता की रही फिर भी लार्ड कार्नवालिस, लार्ड मिंटो, तथा लार्ड हेस्टिंग्स जैसे गवर्नर जनरलों ने सती प्रथा को सीमित करने का प्रयत्न किया। इन प्रयत्नों में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस क्रूर बलि के समय पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति आवश्यक बना दी गयी थी ताकि लोग सती होने के लिये विवश न कर सकें। किंतु, ये सारे प्रयत्न पर्याप्त थे। **1833** के चार्टर के नवीनीकरण पर संसद में होने वाली बहस पर कंपनी के डायरेक्टररों ने विलियम बैंटिक को यह सुझाव दिया की वे इस प्रथा की समाप्ति के लिये प्रभावशाली कदम उठायें। बेंटिक ने **1829** में अधिक नियम-**17** के अनुससार विधवाओं को जीवति जलाने की प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया और ऐसे मामलों में सती होने के लिये प्रेरित करने वाले व्यक्तियों को सदोष मानव हत्या का दोषी माना गया। यह नियम पहले बंगाल फिर **1870** में बंबई व मद्रास में लागू हुआ।

विधवा पुनर्विवाह के बारे में सबसे क्रांतिकारी एवं प्रभावशाली पहल ईश्वरचंद विद्यासागर ने की। उन्होंने विधवा विवाह को भारतीय संस्कृति के सम्मत सिद्ध करने का प्रयास किया। इन्हीं के प्रयासों से हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम **1856** बना जिसके नियम **15** के तहत विधवा विवाह को वैध माना गया और इस विवाह से उत्पन्न बालक वैध घोषित किए गए। विधवाओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करने वालों में अन्य प्रमुख व्यक्तित्व डी.के. कर्वे, बीरेशलिंगम पुंतलु एवं पारसी समाजसुधारक वी.एम. मालाबारी थ। मालावारी के प्रयास से **1891** में सम्मति आयु, अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा **12** वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया गया। **1930** के शारदा एक्ट में विवाह के लिये कन्या की न्यूनतम आयु **14** वर्ष तथा लड़के की न्युनतम आयु **18** वर्ष निश्चित की गयी। इन कानूनों ने बाल विवाह को हतोत्साहित किया।

इसी प्रकार **1795** के बंगाल नियम ग्प् तथा **1804** के नियम, प्प्प् से से शिशु हत्या को साधारण हत्या के बराबर मानते हुये इसे रोकने का प्रयास किया गया।

स्त्री शिक्षा पर प्रथम सशक्त प्रयास ईसाई धर्म प्रचारकों ने किया। इन्होंने **1819** में **'**कलकत्ता तरूपा स्त्री सभा**'** स्थापित की। **1849** में सरकारी शिक्षा परिषद के जे.ई.डी. बेटन ने कलकत्ता में बालिका विद्यालय स्थापित किया। स्त्री शिक्षा पर ईश्वरचंद विद्यासागर का योगदान अविस्मरणीय है इन्होंने कम से कम **35** बालिका विद्यालयों की स्थापना की। कालांतर में **1854** में तुड्स डिस्पैच में आधिकारिक तौर पर पहली बार स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया।

अंग्रेजी सरकार ने **1856** में **'**हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम**'** पारित किया और लड़के और लड़कियों को समान बताते हुये संपत्ति में बराबर का हकदार बताया। **1855** में हिन्दू विवाह अधिनियम में तलाक को स्वीकृति दी गयी तथा बहुविवाह को अवैध किया गया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने महिलाओं के लिये कई कानून बनायें।

14.5.9.1 महिला सुधार आंदोलन की सीमाएं

19वीं शताब्दी में प्रारंभ होने वाली सुधारवादी आंदोलनों ने महिलाओं के प्रति रूढ़िवादिता को कम करने का प्रयास किया। इसी संबंध में अंग्रेजी शासन ने भी प्रयास किये किंतु इस संबंध अंग्रेजों की बाशारवादी सोच भी उत्प्रेरक का कार्य कर रही थी क्योंकि भारत को एक बड़े बाशार में भी तब्दील करने का प्रयास कर रहे थे जो **1813** ई. के बाद स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस आंदोलन की कुछ सीमाएँ निम्न थी-

- यह प्रयास अभिजात्यवादी पुरुषों के द्वारा प्रारंभ किया गया जिससे वे पारिवारिक मर्यादा में रहते हुये कुछ ही कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे।
- **19**वीं सदी का प्रयास सुधारवादी था यह स्त्री स्वाधीनता के लिये मुरकर नशर नहीं आता।
- सुधार की संपूर्ण प्रक्रिया औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत चल रही थी। कानूनों का पालन कराने वाली नौकरशाही का प्रमुख कार्य शासन को सुदृढ़ता प्रदान करना था न की समाज सुधार।
- महिला दशा पर विभिन्न धर्म अलग-अलग विचार करते थी जिससे सुधार की प्रक्रिया में एकात्मकता का अभाव दृष्टिगत होता है।
- सती प्रथा के विरुद्ध कानून तो बने लेकिन सती प्रथा के प्रति लोगों में आदर का भाव बना रहा। इस प्रथा के प्रति आदर्शीकरण की प्रकृत्ति विद्यमान रही यही कारण है कि **1887** में देवराला नामक स्थान पर रूपकंवर नामक स्त्री सती हो गयी।

14.5.3 प्रमुख स्त्री - समाज सुधारक एवं प्रमुख महिला संगठन

महिलाओं की दशा में सुधार के लिये **19**वीं सदी में व्यक्तिगत व संगठनात्मक दोनों स्तरों पर प्रयास किया गया। इस कार्य में परुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी योगदान दि। पंडित रमा बाई ने स्त्री शिक्षा व महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता हाने का प्रयास किया। बहिन सुब्बालक्ष्मी मद्रास प्रेसीडेंसी की प्रथम हिन्दू विधवा थी। इन्होंने स्नातक स्त की शिक्षा ग्रहण की। इन्होंने बाल विधवाओं के लिये आई.सी.आई.सी. हाउस तथा वमस्क विधवाओं के लिये शारदा विद्यालय हाईस्कूल की स्थापना की। इसी क्रम में गंगा जी (महर्षि तपस्विनी) ने **1893** में कलकत्ता में

महाकाली पाठशाला की स्थापना की, जिसे अपनी अनेक शाखाओं के साथ महिला शिक्षा को विकसित करने का विशुद्ध भारतीय प्रयास कहा गया।

महिलाओं के लिय महिलाओं के अलावा पुरुषों ने भी प्रयास किये। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा विवाह हेतु लंबा आंदोलन चलाया। इनके अलावा पूना के फर्ग्युसन कालेज के प्राध्यापक डी.के. कर्ते का योगदान अप्रतिम है। इन्होंने **1893** में एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह किया तथा **1899** में पूना में विधवा आश्रम स्थापित किया। कर्वे का मानना था कि - 'विधवाओं को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे की वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सके और अपने बारे में सोचने के लिये सक्षम हो सके।' **1916** में इन्होंने प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। दक्षिण भारत में वीरेश लिंगम् ने महिला उद्धार का प्रयास किया। इन्होंने 'विवेक वर्द्धनी' नामक सामाजिक जागरूकता के लिये पत्रिका निकाली तथा **1878** वैश्याओं के कार्यक्रम के विरुद्ध 'सामाजिक सुधार समिति' की स्थापना की। महाराष्ट्र के विष्णु शास्त्री पंडित ने 'विधवा विवाह' नामक पुस्तक का मराठी में अनुवाद किया साथ ही **1850** में 'विधवा पुनर्विवाह सभा' की स्थापना की।

19वीं शताब्दी में कई महिला संगठन भी महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिये आगे आये। रमाबाई ने स्त्री शिक्षा के लिये 'आर्य महिला समाज' की स्थापना की। इसी प्रकार 'स्त्री जरथोस्ट्री मंडल' पारसी महिलाओं के लिये प्रशिक्षण मंच का कार्य करता था। **1910** में इलाहाबाद में सरला देवी चौधरानी ने 'भारत स्त्री मंडल' की स्थापना की, जो भारतीय महिलाओं के समान हितों को बढ़ावा देने का कार्य किया। **1915** में आयरिश थियोफिस्ट एवं प्रसिद्ध नारीवादी चिंतक डार्थी जिन्दासराय ने 'भारतीय महिला मंडल' की स्थापना की। यह यूरोपीय व भारतीय दोनों के लिये खुला था। ऐनी बेसेंट इसकी प्रथम अध्यक्षा थी।

इस संगठन ने महिला शिक्षा, व्यावसायिक कार्यक्रम महिलाओं के लिये, विधवा गृहों की स्थापना का कार्य किया। इस संगठन ने 'स्त्री धर्म' नामक पत्रिका निकाली जिसने स्त्रियों के विकास के लिये वैचारिक आंदोलन चलाया। इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुये भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद का गठन **1925** में किया गया। दोराव टाटा की पत्नी मेहरबाई टाटा इसमें प्रमुख भूमिका रही किंतु अभिजात्यवादी महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण इसकी जड़े शमीन से नहीं जुड़ पायीं। भारत में सबसे महत्वपूर्ण और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण वाला विशुद्ध भारतीय महिला संगठन 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' था। इसका प्रथम सम्मेलन **1927** में पुणे में हुआ। इस संगठन का विचार था कि बिना सामाजिक कुप्रथाएँ दूर किये महिलाओं की शैक्षिक प्रगति नहीं की जा सकती। **1941** में इस सम्मेलन ने 'रोशनी पत्रिका' पाक्षिक रूप से प्रकाशित की। इस सम्मेलन से जुड़ी दो प्रमुख घटनाएं थी - प्रथम **1927** में मुथुलक्ष्मी देवी को मद्रास विधान परिषद का सदस्य

मनोनीत किया गया। द्वितीय महिलाओं के लिये मतदान के अधिकार की मांग की यद्यपि इसमें सीमित सफलता मिली तथा **1935** के भारत सरकार अधिनियम में महिलाओं को मतदान का सीमित अधिकार मिला।

14.5.4 राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने स्त्रियों को घर की चारदीवारी से मुक्त कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश दिलाया। यद्यपि महिलाओं की यह भूमिका भी पूरी तरह से सीमाओं से परे नहीं थी किंतु सक्रिय राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति को सकारात्मक संदेश के रूप में समझा जाना चाहिये। गांधी जी के आगमन से निःसंदेह महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी में वृद्धि हुयी मगर पुरुषों के साथ समानता की नारीवादी मांग राष्ट्रवादी मांग के साथ कभी भी एकीकृत नहीं हो पाई, उस समय भी नहीं जबकि राष्ट्रवादी आंदोलन का महिलाकरण हुआ।

राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्री भागीदारी को दो चरणों में बांटा जा सकता है-पहला कांग्रेस की स्थापना से पूर्व तथा दूसरा कांग्रेस की स्थापना के बाद। कांग्रेस की स्थापना के पूर्व भी महिलाओं की भागीदारी को स्पष्टतः देखा जा सकता है। कित्तुर विद्रोह का नेतृत्व चेन्नमा ने किया तो **1857** के सैनिक विद्रोह को रानी लक्ष्मीबाई व बेगम हशरत महल ने नेतृत्व प्रदान किया। कांग्रेस की स्थापना के बाद **1889** में कांग्रेस के अधिवेशन में स्वर्णकुमारी घोषाल तथा कादंबनी गांगुली ने बतौर प्रतिनिधि माग लिया। **1905** के पश्चात राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी की दो प्रवृत्तियां विकसित हुई जिनमें एक तो मुख्य धारा से जुड़ी हुई थी तथा दूसरी क्रांतिकारी आंतंकवाद व वामपंथी विचारधारा के निकट थी। **1905** में बंगाल विभाजन के विरोध में हुए स्वदेशी आंदोलन बंगाल के भीतर महिलाओं की भागीदारी की दृष्टि से प्रमुख रही। मैडक कामा ने विदेशी धरती पर राष्ट्रीय ध्वज को फहराकर भारतीय राष्ट्र की अवधारणा को मूर्त रूप दिया तो ऐनी बेसेंट होमरूल लीग आंदोलन प्रारंभ कर राष्ट्रीय आंदोलन को नयी दिशा दो।

गांधी जी द्वारा अपनाई गई अहिंसा व सत्याग्रह की रणनीति ने भी महिलाओं की व्यापक भागीदारी को संभव बनाया व राष्ट्रीय आंदोलन को जन आंदोलन में तब्दील कर दिया। कांग्रेस ने **1921** में **6-13** वाले सप्ताह को सत्याग्रह सप्ताह घोषित किया तथा अपील की राजनीति में रूचि रखने वाली महिलाएं सभा आयोजित कर कांग्रेस के प्रति अपने समर्थन का इशहार करें। इस तरह के एक सम्मेलन में सरोजनी नायडू के नेतृत्व में स्वतंत्र महिला संगठन 'राष्ट्रीय स्त्री संघ' की स्थापना हुयी। सविनय अवज्ञा आंदोलन के आते-आते महिला भागीदारी का स्तर काफी बढ़ गया। गांधी जी की सभाओं में सर्वाधिक चंदा महिलाओं के आभूषण के रूप में ही होता था।

1930-32 के दौरान महिलाओं द्वारा किये गये पिकेटिंग और विरोध प्रदर्शनों ने देशी व विदेशी प्रेस का ध्यान अपनी ओर खींचा। धरासना नामक नमक भंडार पर सरोजनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं ने अदभ्य वीरता दिखलाई उसकी प्रशंसा वेब मिलर नामक अमेरिकी पत्रकार ने भी की। बंगाल में महिलाओं का रूझान गांधीवादी आंदोलन की ओर न होकर क्रांतिकारी गतिविधियों की ओर था। इनमें प्रीतिलता वाडेकर व कल्पना दत्त प्रमुख थी। दिसंबर **1931** में शांति तथा सुनीति चौधरी नामक बहनों ने स्टीवेंस नामक मजिस्ट्रेट की हत्या उस समय कर दी जब वह उनके प्रतिवेदन पढ़ रहा था। दूसरी तरफ मद्रास की महिलाओं ने क्रांतिकारी गतिविधियों में रूचि नहीं दिखायी किंतु राजनीतिक गिरफ्रतारियां दी जिनमें रुक्मिणी लक्ष्मीपति का नाम प्रमुख है। भारत छोड़ो आंदोलन में अग्रिम पंक्ति के नेताओं की गिरफ्रतारी के बाद अरूणा आसफ अली ने नेतृत्व प्रदान किया तो ऊषा मेहता ने गुप्त रेडियो प्रसारण के द्वारा आंदोलन को गति दी। वहीं दूसरी ओर आजाद हिंद फौज में रानी झांसी नामक ब्रिगेड का नेतृत्व कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने किया।

कुल मिलाकर स्वतंत्रता आंदोलन ने नारी अधिकारों के लिये चल रहे आंदोलन का स्वरूप भी निर्धारित किया। इससे महिलाओं ने अपनी सामाजिक परिस्थिति को सुधारने का काम भी किया। किंतु पतित नारियों की गतिविधियों को राष्ट्रीय आंदोलन के अंदर हतोत्साहित किया जो महिलावादी आंदोलन की दृष्टि से नकारात्मक संकेत था।

14.5.5 महिला स्थिति का मूल्यांकन

आधुनिक भारत में **18**वीं सदी में महिलाओं की जो स्थिति द्रष्टव्य होती है उसकी पृष्ठभूमि भारतीय सामाजिक संरचना में उत्तरवैदिक काल से मध्यकाल तक दिखाई पड़ती है जिस दौरान सती प्रथा, बाल विवाह, कन्या वध, स्त्री शिक्षा का अभाव जैसी अनेक कुप्रथाएं दिखाई पड़ती हैं। महिलाओं की यह दुर्दशा भारतीय समाज की दुर्बलता को इंगित करती है। अंग्रेजों के आगमन तथा पाश्चात्य विचारधारा व शिक्षा के संपर्क ने भारतीय समाज में प्रगतिशील तत्वों को बढ़ाया तथा वैज्ञानिक व आधुनिक चिंतन ने महिला सुधार की दिशा में अग्रगामी कदम उठाये। किंतु ये सभी सुधार प्रक्रियाएं अपनी अभिगत्यवादी व औपनिवेशिक परिस्थितियों से पूर्वतः मुक्त नहीं हो पायी। अपनी सीमाओं के बावजूद महिला सुधार आंदोलनों ने महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी का मार्ग प्रशस्त किया जिसकी परिणति राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी के रूप में सामने आती है। जो उनके सशक्त स्वरूप को परिभाषित करता है तथा जिसका परिणाम भारतीय संविधान में महिलाओं को समान अधिकार देकर स्पष्ट किया गया है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न
निम्नलिखित पर प्रकाश डाले-

1. व्यापार एवं राजकोशनीय नीति
2. ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण
3. धन का निष्कासन
4. विऔद्योगिकरण
5. विऔद्योगीकरण का प्रभाव
6. महिलाओं से संबंधित सामाजिक कुरीतियां
7. महिला सुधार आंदोलन
8. प्रमुख महिला संगठन
9. राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

14.6 सारांश

ब्रिटिश कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का एक रुप था जिसमें भारतीय संसाधनों का दोहन ब्रिटेन के हित में हो रहा था। इस दौरान ब्रिटिश उपनिवेशवाद पूंजीवाद और वित्तिय पूंजीवाद। उपनिवेशवाद के इस दौर में धन के निष्कासन की प्रक्रिया चलती रही। धन के निष्कासन से हमारा तात्पर्य भारत से ब्रिटेन जाने वाली वैसे धन से हे जिसके बदले भारत को कोई भौतिक या आर्थिक प्रतिदान नहीं मिल पा रहा था। दूसरे शब्दों में बिटेन अपने शासन के बदले भारत को खिराज/नज़राना देने के लिए बाध्य कर रहा था। इसका भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ा

विऔद्योगीकरण से हमारा तात्पर्य ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन काल में भारतीय कुटीर उद्योगो और हस्तकरघा उद्योगों के पतन से है। इस दौर में उद्योगो का अंशदान अर्थव्यवस्था में कम होता गया जबकि कृशि जैसे गैर औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान बढ़ता चला गया। इसके कारण परंपरागत कारीगर दस्तकार और शिल्पी बेरोजगार हो गये और वे कृशि व्यवस्था की ओर मुड़ गये। इससे व्यक्ति और भूमि का अनुपात टूट गया और उत्पादकता प्रभावित हुई। अंततः भारतीय गरीबी के दुःश्चक्र में फंस गये।

भारत में आरंभ में महिलाओं की स्थिति सामान्यतः अच्छी थी। लेकिन कालांतर में उसकी स्थिति में सापेक्षिक गिरावट आती चली गई। मध्यकाल में सती प्रथा, जौहर प्रथा, परदा प्रथा, कन्या शिशु हत्या, बाल विवाह, बहुविवाह, विधवा पुनः विवाह आरंभ हो गया। इसके विरुद्ध ब्रिटिश काल में अनेक समाज सुधारको ने आंदोलन चलाया, जिसके कारण तत्कालीन सरकार ने अनेक कानून बनाकर इसे नियंत्रित करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त महिलाओं ने सक्रिय भागादारी निभायी।

14.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. 14.3
2. 14.3.1

3. 14.3.2
4. 14.4
5. 14.4.1
6. 14.5.1
7. 14.5.1
8. 14.5.2
9. 14.5.3
10. 14.5.4

14.8 निंबधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरणों का विश्लेषण करें।

2. धन के निष्कासन की समीक्षा करें।

3. विऔद्योगीकरण क्या है**?** इसका भारतीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा।

4. ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डालें।

14.9 संदर्भ ग्रंथ

* Dadabhai Naoroji:‘Povert and UnBritish Rule in India’ London. 1901. Publication Division Ministry of Information and Broadcasting Government of India. Common Wealth Publishers 1988.

* R. C. Dutt:‘Economic History of India’. Under Early British Rule. Vol. I, London 1902.

* Mahadiv Govind Ranade:‘Ranadi’s Economic Writings’ ed. By Bipan Chandra Gyan Books Pvt. Ltd., New Delhi, 1990.

* David Clingengsmith & Jeffrey G Williamson:India’s De Industrialization Under British Rule: NewIdea,NewEvidence,NBERWorkingPaperNo.10586,Issued in June 2004.Harvard Economic History

*IndraniSen:‘Women and Empire : Representations in the Writings of British India, 1858
Orient Blackswan, Delhi, Jan 2002.